ISSN 2348-8425

सत्राची

SATRAACHEE

An International Registered Peer Reviewed Bilingual Research Journal

A UGC-CARE Enlisted
Peer Reviewed Research Journal

वर्ष 10, अंक 37, नं. 3
अक्टूबर-दिसम्बर, 2022

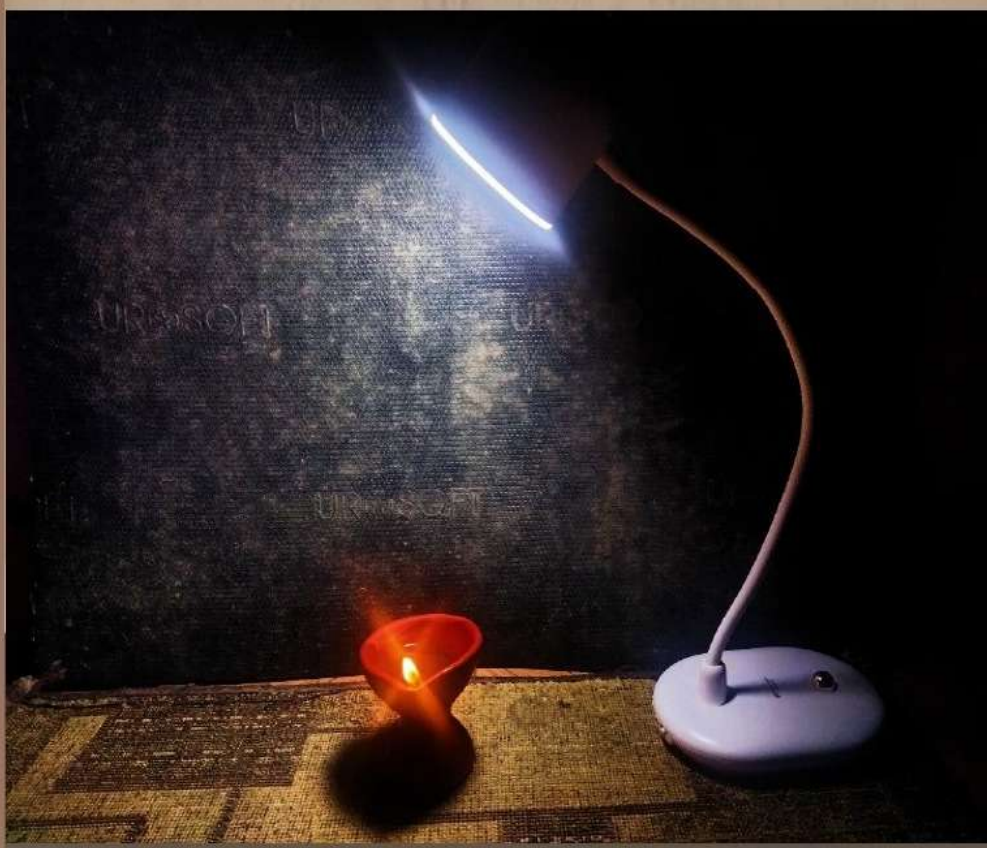

संपादक
आनन्द बिहारी

प्रधान संपादक
कमलेश वर्मा

SATRAACHEE

ISSN : 2348-8425

सत्राची

मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान की पूर्व समीक्षित त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष 10, अंक 37, नं. 3, अक्टूबर-दिसम्बर, 2022

प्रधान संपादक
कमलेश वर्मा

संपादक
आनन्द बिहारी

समीक्षा संपादक
आशुतोष पार्थेश्वर, सुचिता वर्मा,
प्रवीन कुमार यादव

सह-संपादक
अर्चना गुप्ता, जयप्रकाश सिंह,
हुस्न आरा

संहायक संपादक
भावना मिश्रा

सलाहकार समिति व समीक्षा मंडल

अनीता राकेश, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, जे.पी.विश्वविद्यालय, छपरा।
मुक्तेश्वर नाथ तिवारी, प्राध्यापक, शांति निकेतन, प.बंगाल।
ब्रज बिहारी पांडेय, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, ओरिएंटल कॉलेज, पटना सिटी।
पुष्पलता कुमारी, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, म.म.कॉ., पटना।
राजू रंजन प्रसाद, असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास, मुजफ्फरपुर।
नीरा चौधुरी, प्राध्यापक, संगीत, पटना विश्वविद्यालय, पटना।
अरविन्द कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

❑❑❑

SATRAACHEE

Peer Reviewed and Refereed Research Journal

A UGC-CARE Enlisted Journal

मूल्य : ₹ **250**

सदस्यता शुल्क :

पंचवार्षिक	:	4,000 रुपए (व्यक्तिगत)
	:	10,000 रुपए (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 रुपए (व्यक्तिगत)
	:	20,000 रुपए (संस्थागत)

बैंक खाते का विवरण :

SATRAACHEE FOUNDATION,
A/c No. 40034072172, IFSC : SBIN0006551,
State Bank of India, Boring Canal Rd.-Rajapool,
East Boring Canal Road, Patna, Bihar, Pin: 800001

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित रचनाओं से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपादन/प्रकाशन : अवैतनिक/अव्यावसायिक

प्रकाशक : सत्राची फाउंडेशन, पटना

आवरण चित्र : अंतरिक्ष

संपादकीय संपर्क :

आनन्द बिहारी
कला कुंज, दूसरा तल्ला
बाजार समिति रोड, बहादुरपुर, पटना, पिन : 800016

Website	: http://satraachee.org.in
E-mail	: satraachee@gmail.com
Mob.	: 9661792414, 9470738162 (A.Bihari.)
	: 9415256226 (Kamlesh Verma.)

❖❖❖

SATRAACHEE

इस अंक में...

संपादकीय

05 :: समाजवाद के सौ वर्ष और शोध का उद्देश्य — *आनन्द बिहारी*

आलेख

007 :: काशिकेय परंपरा के अल्पख्यात साहित्यशास्त्रवेत्ता आचार्य विश्वनाथदेव का काव्यशास्त्रीय अवदान — *- राजेश सरकार*

016 :: नब्बे के दशक की हिंदी कविता में जनपदीय चेतना व भाषाई स्वरूप — *- मनकामना शुक्ल*

025 :: मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास 'कर्मभूमि' पर गाँधी जी के विचारों का प्रभाव — *- रेखा यादव*

036 :: प्रेमचंद और दलित संवेदना — *- वीना सुमन*

044 :: प्रेमचंद के उपन्यासों में मुस्लिम स्त्री का जीवन — *- प्रियंका मौर्य*

049 :: छिन्नमस्ता : मिथकीय बिंब एवं स्त्री संघर्ष — *- अशोक कुमार मीना*

054 :: फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में आजादी से मोहभंग के स्वर — *- कुलभूषण मौर्य*

061 :: 'भिखारी ठाकुर' का जीवन संघर्ष और 'सूत्रधार' उपन्यास — *- मनीष कुमार*

064 :: मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में अभिव्यक्त पारिवारिक संघर्ष — *- अंकित अभिषेक*

072 :: कामायनी की भाषिक प्रतीकात्मकता — *- त्रिपुरेश गोंड*

077 :: 'शेखर : एक जीवनी' में शेखर के विद्रोह का स्वरूप — *- सर्वेश कुमार*

085 :: इतिहासबोध के निकष पर मोहन राकेश और सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन — *- अमित*

089 :: 'गिलिगडु' : बुजुर्ग जीवन के संघर्ष और संवेदनाओं की कहानी — *- प्रीति के.*

094 :: नेपथ्य राग : स्त्री अस्मिता के संघर्ष की अनसुनी गूंज — *- मीनु के. पी.*, *डॉ. प्रीति के.*

099 :: 'वेताल का जीवन कितना एकाकी' कहानी में अभिव्यक्त वृद्ध जीवन का यथार्थ — *- दिलना सी.*, *डॉ. प्रीति के.*

102 :: 'मंत्र' : सांस्कृतिक टकराव और मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति — *- वैष्णव पी. वी.*, *डॉ. प्रीति के.*

106 :: अखिलेश की कहानी 'बायोडेटा' में अभिव्यक्त आधुनिक राजनीति की नैतिक विडंबना — *- विनया एन.*, *डॉ. प्रीति के.*

110 :: आंबेडकर और गांधी के विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण : संविधान निर्माण के विशेष संदर्भ में — *- शशिकांत कुमार*

119 :: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रावधानों के प्रति बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के उच्च शिक्षा विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन — *– राहुल बाल्मीकि, दिग्विजय सिंह*

130 :: भारत की पंचायती संस्थाओं में महिला प्रतिनिधियों की स्थिति : एक समीक्षा — *– निराला कुमारी, डॉ. हुस्न आरा*

136 :: भारत में महिला अधिकार और लैंगिक समानता : नीतियों और कानूनों का विश्लेषण — *– शबनम कुमारी, प्रो. मुनेश्वर यादव*

145 :: भारत में पंचायतीराज व्यवस्था के आलोक में डॉ. अम्बेडकर के वैचारिक दृष्टिकोण के वैचारिक दृष्टिकोण की समीक्षा — *– विजय कुमार विश्वकर्मा, डॉ. रंजना श्रीवास्तव*

151 :: भूमि उपयोग में परिवर्तन का पर्यावरण पर प्रभाव : एक भौगोलिक अध्ययन — *– पुरुषोत्तम कुमार, डॉ. बिरेन्द्र कुमार सिंह*

157 :: भारत में जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव : एक अध्ययन — *– पूर्णिमा कुमारी, डॉ. मुनमुन शरण*

163 :: झारखंड में महिलाओं की आर्थिक उन्नति में स्वयं सहायता समूह की भूमिका : चुनौतियाँ एवं समाधान — *– मुन्नी कुमारी, डॉ. पुष्पा कुमारी*

170 :: ग्रामीण युवतियों का शिक्षा हेतु धनबाद शहर में पलायन : कारण, चुनौतियाँ और समाधान — *– रीना कुमारी, डॉ. मुनमुन शरण*

179 :: पुरुष कहानीकारों की लेखनी में स्त्री : परंपरा से आधुनिकता की ओर — *– श्रीजा एम., डॉ. प्रीति के.*

183 :: लोकनाट्य 'नाचा' : हबीब तनवीर — *– रवीना कुमारी मीना, डॉ. नीतू शर्मा*

188 :: स्त्री और प्रकृति का मिलन: नवजागरणकालीन कहानियों के परिप्रेक्ष्य में — *– जेस्ना रहीम*

192 :: उपभोक्ताओं की आय, शैक्षिक स्थिति एवं रोजगार का ऑनलाइन खरीदारी पर पड़ने वाले प्रभाव : धनबाद जिले के संदर्भ में एक अध्ययन — *– श्रधा श्रीवास्तव, डॉ रंजना श्रीवास्तव*

203 :: झारखंड में लैंगिक न्याय : निष्पक्ष, शैक्षणिक एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण — *– अनिता रंजन*

217 :: स्त्री रचनात्मकता का आरंभिक स्वर — *– सुधांशु कुमार*

●●●

संपादकीय

समाजवाद के सौ वर्ष और शोध का उद्देश्य

वर्ष 2017 महान अक्टूबर समाजवादी क्रांति का शताब्दी वर्ष था। इस अवसर पर दुनिया के सभी मजदूर संगठनों ने अपने-अपने तरीके से अक्टूबर क्रांति को याद किया। जो लोग एक सुंदर दुनिया का सपना देखते हैं और न्याय आधारित समाज की स्थापना करना चाहते हैं और उसके लिए संघर्ष करना चाहते हैं, उनके लिए रूस की अक्टूबर क्रांति किसी विजय दिवस से कम नहीं है। 1917 की बोल्शेविक क्रांति ने दुनिया को बदलाव की एक नई दिशा दी। इस दिशा में आगे बढ़ने पर यह उम्मीद की जा रही थी कि एक वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण नहीं कर पाएगा और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का शोषण नहीं कर पाएगा और पूरी दुनिया में न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने में सफलता मिलेगी। कहने की जरूरत नहीं कि इस दिशा में किए गए प्रयासों ने पूरी दुनिया को प्रभावित किया। रूस की मेहनतकश जनता ने जार की तानाशाही को खत्म कर सत्ता अभिजात वर्ग को सौंप दी। इस तरह रूस का सामंती शासन खत्म हो गया। हालांकि, जिस तरह से सत्ता का हस्तांतरण हुआ, उससे जनता निराश हुई। परिणामस्वरूप लेनिन के नेतृत्व में जनता ने दूसरी क्रांति की। इस क्रांति में समाजवाद का नारा बुलंद किया गया, जो काफी संघर्ष के बाद अक्टूबर में सफल हुआ। इस क्रांति के दौरान और उसके बाद समाजवादी नारों से संबंधित कई पोस्टर लोकप्रिय हुए। रूस की सबसे बड़ी समस्या उन लोगों से सत्ता बरकरार रखना था, जिनसे यह छीनी गई थी। इसके लिए नई सरकार ने चार साल तक खूनी संघर्ष किया। दूसरी समस्या एक नए आर्थिक ढांचे का निर्माण था। इस स्तर पर, नई शासन व्यवस्था ने नागरिक अधिकारों में कटौती की और दमन का सहारा लिया। यह नई सत्ता की अपेक्षाओं के विपरीत था, लेकिन क्रांति के आंतरिक और बाहरी शत्रुओं से निपटना भी आवश्यक था। इस तरह सोवियत सत्ता विभिन्न चुनौतियों का सामना करते हुए बची रही और यह साबित कर दिया कि सामंती जमींदारों, पूंजीपतियों और सूदखोरों के बिना भी समाज बेहतर ढंग से चल सकता है। सोवियत सत्ता ने समाजवादी क्रांति के माध्यम से रूस को एक नया आर्थिक ढांचा प्रदान किया, बाजार की शक्तियों और मुनाफाखोरों को हाशिए पर रखते हुए इसका योजनाबद्ध और व्यवस्थित तरीके से विकास शुरू हुआ। यह स्पष्ट था कि विकास का लक्ष्य लोगों की जरूरतों को पूरा करना था। नई अर्थव्यवस्था में रूस एक नई आर्थिक शक्ति के रूप में उभरा। आर्थिक विकास दर 35 प्रतिशत तक पहुंच गई। अशिक्षा, बीमारी, नशाखोरी और वेश्यावृत्ति जैसी समस्याएं लगभग समाप्त हो गई थीं। इस प्रकार रूस में एक मजबूत आर्थिक

व्यवस्था की स्थापना के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक जीवन में उच्च मानवीय मूल्यों की भी स्थापना हुई। रूसी क्रांति ने पूरे विश्व को रोशनी दी। भारत जैसे देश में भी औपनिवेशिक गुलामी से लड़ने के लिए मजदूर वर्ग की पार्टी का उदय हुआ। 17 अक्टूबर 1920 को सोवियत संघ के ताशकंद में एम.एन. रॉय ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का गठन किया था। बाद में हसरत मोहानी के साथ सत्यभक्त ने 26 दिसंबर 1925 को भारत की धरती पर कानपुर में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की। 1920 से 2022 तक भारतीय समाजवाद की यात्रा पूरी हो चुकी है। यह कहा जा सकता है कि उसने भारत में सौ साल की यात्रा की है। आप चाहें तो इसे और पुख्ता तौर पर पुष्ट करने के लिए 2025 तक इंतजार कर सकते हैं। लेकिन यह केवल वर्षों की गिनती होगी, उपलब्धियों में कोई खास अंतर नहीं आएगा। भारत में समाजवाद की सौ साल की यात्रा को देखते हुए यह आसानी से कहा जा सकता है कि भारतीय समाजवाद अपने लक्ष्य से बहुत दूर है। बल्कि यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि पिछले पच्चीस वर्षों में इसकी स्थिति में भारी गिरावट आई है। हाल के दिनों में उत्पादक वर्ग का प्रभुत्व बढ़ा है, सरकार ने उसके हितों को तरजीह दी है तथा नव-पूंजीवाद, साम्राज्यवाद और साम्यवाद सभी ने अपनी शक्ति में बेतहाशा वृद्धि की है। वर्तमान समय में समाजवाद पूंजीवाद के आगे घुटने टेक चुका है। लोकतंत्र की सारी शक्तियां पूंजीवाद की सेवा में लग गई हैं। इसका अनुमान वर्तमान में हो रही घटनाओं की प्रवृत्तियों से सहज ही लगाया जा सकता है। पिछले कुछ दशकों से राजनीति, समाज, धर्म, शिक्षा और व्यवसाय के क्षेत्र में जो भी घटित हो रहा है, उसे जनतंत्र के अनुकूल नहीं कहा जा सकता। तमाम घटनाएँ पूंजीवादी ताकतों के बढ़ते प्रभाव की ओर इशारा कर रही हैं। पूंजीवाद अपने खूनी पंजे तेजी से फैला रहा है, मनुष्यता सिकुड़ती जा रही है और व्यवस्था, राजनीति, धर्म, मीडिया आदि पूंजीवाद की सेवा में समर्पित हो चुके हैं। ऐसी स्थिति में लोकतंत्र को बचाने का एक ही तरीका है, जनचेतना का प्रसार। इसके लिए सभी क्षेत्रों में स्तरीय शोध की आवश्यकता है। जो शोध कार्य ईमानदारी, निष्ठा और साहस के साथ किए जाएंगे उससे पूंजीवाद के शक्तितंत्र को समझने व समझाने में मदद मिलेगी। अगर पूंजीवाद से लोकतंत्र एवं मनुष्यता की रक्षा करनी है तो स्तरीय शोधकार्य एक बेहतर विकल्प है।

सत्य की प्राप्ति शोध का लक्ष्य है और सत्य का प्रसार लोकतंत्र की स्थापना का आधार। अपने स्तर पर सत्राची यही प्रयास कर रही है...!

इति शुभम् !

– *आनन्द बिहारी*

काशिकेय परंपरा के अल्पख्यात साहित्यशास्त्रवेत्ता आचार्य विश्वनाथदेव का काव्यशास्त्रीय अवदान

❍ राजेश सरकार[1]

सनातन संस्कृति-सभ्यता, धर्म-दर्शन, कला-साहित्य के केन्द्र के रूप में काशी नगरी सदा से विख्यात रही है। भिन्न-भिन्न कालखण्डों में इसकी गौरव-गरिमा के दर्शन भारतीय-साहित्य के माध्यम से होते रहे हैं, न केवल भारतीय-साहित्य अपितु वैदेशिक यात्रियों के स्रोतों में भी इस नगरी के भव्य-दिव्य स्वरूप परिलक्षित होते हैं। 'काशी' शब्द स्वयं में ही एक महती ज्ञान-परम्परा को द्योतित करती है-

'काशते प्रकाशते ब्रह्मविद्या यस्यां नगर्यां पुर्यां सा काशी'

अर्थात् जिस नगरी में ब्रह्मविद्या प्रकाशित हो उसे काशी कहते हैं।

काशीपुरी उपनिषत्काल से ही विद्या की विश्रुतस्थली रही है। यहाँ विद्याध्ययन के लिए न केवल भारत के अनेक प्रान्तों से बल्कि विदेशों से विद्वान् आते थे, और उत्कृष्ट विद्वानों से विविधविध शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन कर अपनी विद्या को परिपुष्ट करते थे। धर्म एवं संस्कृति के केन्द्र के रूप में इसका उल्लेख वैदेशिकों के यात्रा-विवरणों में उपलब्ध होता है। चीनी यात्रियों फाहियान (चतुर्थ-पंचम शताब्दी ई.) एवं ह्वेनसांग (सप्तम शताब्दी ई.) के विवरणों में काशी का उल्लेख एक ख्यातिलब्ध नगर के रूप में प्राप्त होता है।

मध्य एशिया से आगत मुस्लिम यात्री अबू रेहान मुहम्मद इब्न अहमद अल्बीरूनी (973 ई.-1050 ई.) अपनी भारत विषयक प्रसिद्ध पुस्तक 'किताब अल् बीरूनी फी तहकीक माली अल् हिन्द (किताब अल् हिन्द) में काशी के विषय में लिखते हैं-

"हिन्दुओं के कुछ स्थान ऐसे हैं जो उनके राजनियम और धर्म के सम्बद्ध कारणों से पूजित हैं, उदाहरणार्थ बनारस (वाराणसी)। क्योंकि उनके तपस्वी वहाँ जाते हैं और सदा के लिए वहीं ठहर जाते हैं। जिस प्रकार काअबा के रहने वाले सदा मक्के में ठहरे रहते हैं। वे अपने जीवों की समाप्ति तक वहाँ रहना चाहते हैं ताकि मृत्यु के पश्चात् उनका इसके कारण अच्छा हो जाय।"[1]

---

1. असस्टिेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ.प्र.।

इसी क्रम में फ्रांस के प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. फ्रैंक्विस बर्नियर अपने मुगल शासित भारत की यात्रा के क्रम में काशी आते हैं और अनेक साधु संन्यासियों एवं विद्वानों से उनकी भेंट होती है उनसे वह अध्यात्म विषयक चर्चा भी करते हैं। उन विद्वानों में उसके द्वारा उल्लिखित नामों में से एक महत्त्वपूर्ण नाम सर्वविद्यानिधान कवीन्द्राचार्य सरस्वती का है, बर्नियर उनसे मूर्तिपूजा, आत्मा, मोक्ष, परलोक एवं पुनर्जन्म इत्यादि विषयों पर चर्चा करते हैं। पियरे बर्नियर ने कवीन्द्राचार्य सरस्वती की अध्ययन-परायणता एवं उनके विशालकाय पुस्तकालय का भी उल्लेख किया है। बर्नियर काशी के सन्दर्भ में लिखते हैं-

"काशी अथवा बनारस एक बहुत प्रसिद्ध और सुन्दर नगर गंगा के बायें किनारे पर बसा हुआ है। यह हिन्दुओं का बहुत प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। भारतवर्ष में यह स्थान वैसा ही समझा जाता है, जैसा यूनान में एथिन्सा। यहाँ प्राय: सारे भारतवर्ष के ब्राह्मण और पण्डित पढ़ने आते हैं। मेरी समझ में केवल यही लोग ऐसे हैं, जो अपना सारा समय पठन-पाठन में व्यतीत करते हैं। प्राचीन पद्धति पर यहाँ विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती है। विद्यार्थियों को संस्कृत भाषा में शिक्षा दी जाती है। संस्कृत भाषा की प्राय: सारी पुस्तकें पद्य में हैं और इस भाषा में पुस्तकें भी इतनी अधिक हैं कि जिनसे बनारस में एक बड़ा कमरा बिल्कुल भरा हुआ है।"[2]

धार्मिक-वैभव की दृष्टि से मध्यकाल में काशी का ऐसा उत्कट आकर्षण रहा है कि षोडश शताब्दी में फारस (ईरान) के इस्फहान नगर से काशी आए हुए सूफी सन्त शेख अली हजी भावुक शब्दों में कह उठते हैं-

'अज बनारस न रवम माबदे आम अस्त ईन्जा'।
हर बरहमन पिसरे राम ओ लक्षमन अस्त ईन्जा।।

अर्थात् अब मैं बनारस छोड़कर नहीं जाऊँगा यहाँ जगह-जगह मन्दिर हैं। यहाँ हर ब्राह्मण का बेटा राम और लक्ष्मण है। शेख अली हजी की समाधि आज भी वाराणसी के फातमान में स्थित है।

महाकवि मिर्जा असदुल्लाह खाँ गालिब (1797-1869 ई.) अपनी पेंशन के सम्बन्ध में कलकत्ता जाते समय काशी में रुकते हैं और यहीं पर उन्होंने काशी के वैभव, सौन्दर्य, आध्यात्मिक माहात्म्य को आधार बनाकर प्रसिद्ध फारसी मसनवी 'चिराग ए दैर' लिखी। जिसका अर्थ होता है- 'देवालय का दीप'।

एक सौ आठ पद्यात्मक इस फारसी रचना के कुछ पद्य इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य हैं-

तनासुख मुश्रुबाँ चूं लब कुशायिंद
ब-कीश-ए-खीश काशी रा सतायिंद।

अर्थात् पुनर्जन्म में विश्वास करने वाले (हिन्दू) सदा अपने धर्म के अनुसार काशी की प्रशंसा और उपासना करते हैं।

कि हर कस कांदराँ गुलशन व मीरद
दिगर पीवन्द ए जिस्मानी न गीरद।
जही आसूदगी बख्श ए रवान हा
कि दाग ए जिस्म भी शोयद ज जाँहा।

अर्थात् जो व्यक्ति इस नगर में मृत्यु प्राप्त करता है वह पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करता है। काशी आत्माओं को सुख शान्ति देती है और हृदय के समस्त दु:खों को धो देती है। अन्तिम क्रम में महाकवि गालिब कहते हैं-

सवादश पाय: तख्त ए बुतपरसताँ
सरापायश जियारतगाहे मस्ताँ।

इबादतखानः ए नाकूसियानस्त
हमाना काबा ए हिन्दूस्तानस्त।
बलन्द उफ्तादः तमकीन ए बनारस
बवद बर ओज ए अू अंदीशः नारस।

अर्थात् बनारस मूर्तिपूजकों की राजधानी है, यह नगर धर्म में लीन लोगों का तीर्थस्थान है। बनारस शंखध्वनि करने वालों का प्रार्थनागृह और भारतवर्ष का 'काबा' है। बनारस की प्रतिष्ठा अत्यन्त उच्च है, इसकी उच्चता और श्रेष्ठता पर हमारा चिन्तन भी नहीं पहुँच सकता है।

उपर्युक्त वैदेशिक एवं अहिन्दू महानुभावों के विवरणों से काशी की प्रतिष्ठा का सहज अनुमान किया जा सकता है। इन तथ्यों से यह ज्ञात होता है कि जहाँ प्राचीनकाल में काशी मात्र धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थी और विद्याकेन्द्र के रूप में कश्मीर की ख्याति थी, वहीं मध्यकाल आते-आते काशी तीर्थभूमि के साथ-साथ शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र के रूप में विकसित हो उठी। यही कारण है कि काशी में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से आकर निवास कर रहे मनीषियों द्वारा विरचित संस्कृत-साहित्य अपनी मौलिकता तथा प्रामाणिकता के कारण वैश्विक कीर्ति से मण्डित है। भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तीय विद्वानों ने काशी में निवास कर इसे अपनाया तथा विभिन्न शास्त्रों में अपनी रचनाओं द्वारा संस्कृत के भण्डार को अधिकाधिक समृद्ध किया। संस्कृत-वाङ्मय की ऐसी कोई शाखा नहीं है, जो काशी में पुष्पित-पल्लवित न हुई हो। इसी क्रम में ललित काव्यों की सर्जना एवं उसकी समालोचना-समीक्षण के प्रति काशी के पण्डितों की अभिरुचि कथमपि न्यून नहीं रही है। काव्यशास्त्र के क्षेत्र में काशी का अवदान अखिल भारतीय स्तर पर विख्यात है। अपने प्रौढ़ तार्किक विवेचन तथा गम्भीर समालोचना के कारण काव्यशास्त्र के इतिहास में काशी का अनुपम स्थान है।

यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से साहित्यशास्त्र के क्षेत्र में कश्मीर का अवदान महत्त्वपूर्ण रहा है। शारदा देश के नाम से विख्यात इस तुषारावच्छिन्न भूस्वर्ग में साहित्यशास्त्रीय विद्वानों की सुदीर्घा एवं समृद्धा परम्परा परिलक्षित होती है। जिनमें भामह, रुद्रट, उद्भट, लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, वामन, अभिनवगुप्तपाद, मम्मट, क्षेमेन्द्र, रुय्यक, आनन्दवर्द्धन कुन्तक इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इसी प्रकार सर्वविद्या की राजधानी शिवपुरी काशी के आचार्यों ने काव्यशास्त्र के संवर्द्धन एवं संरक्षण में अपनी महती भूमिका का निर्वाह किया है। इस प्रकार काशिकेय साहित्यशास्त्रीय आचार्यों की एक समृद्धशालिनी-परम्परा पुष्पित एवं पल्लवित होती रही है।

काशी की मध्यकालीन संस्कृत-काव्यशास्त्र की धारा में भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों से आकर ख्यात होने वाले आचार्यों की एक समृद्ध-परम्परा है। इसी सुदीर्घा परम्परा में अनेक नाम ऐसे भी हैं, जिनकी रचनाएँ महत्त्वपूर्ण होते हुए भी अज्ञात अथवा अल्पख्यात रह गयीं। इन्हीं अल्पख्यात किंबहुना अज्ञात विभूतियों में से एक नाम आचार्य विश्वनाथदेव का भी है। इनके द्वारा रचित कृतियाँ हैं-

(क) चित्रमीमांसा (ख) मृगाङ्कलेखा-नाटिका (ग) साहित्यसुधासिन्धु।

इसमें चित्रमीमांसा चित्रालंकारों की रचना है, जो अभी भी अनुपलब्ध है। इसका उल्लेख आपने अपने ग्रन्थ 'साहित्यसुधासिन्धु' के सातवें तरंग में चित्रकाव्य के प्रसंग में इस प्रकार किया है- 'चित्रान्तरोदाहरणान्यस्मत्कृत-चित्रमीमांसायां द्रष्टव्यानि (साहित्यसुधासिन्धु 7, 279 वृत्तिभाग)।

आचार्य विश्वनाथदेव ने अपना आत्मपरिचय स्वरचित 'मृगाङ्गलेखानाटिका' में सूत्रधार एवं पारिपार्श्विक के मुख से दिलवाया है-

सूत्रधार : (स्मृतिमभिनीय सहर्षम्) नन्विमामेव गोदावरीतीरपवित्रधारासुरनगरनिवासिनः साम्प्रत विरचित वाराणसी वसतेस्त्रिमल्लदेवतनूजस्य विश्वनाथशर्मणः कृतिं मृगाङ्गलेखाभिधानां नाटिकामभिनेतुमुद्युक्त एवास्मि।

पारिपार्श्विक : (प्रविश्य) भाव! अनतिप्रसिद्धस्य तस्यैव दाक्षिणात्यस्य कवेः कृतौ प्राचीनप्रबन्धानवधूय पर्युत्सुकः सामाजिकजनः।

उपुर्यक्त पंक्तियों से यह प्रतीत होता है कि आचार्य विश्वनाथदेव का जन्म दक्षिण भारत में गोदावरी नदी के किनारे पर स्थित धारासुर नामक नगर में हुआ था। इनके पिता का नाम त्रिमल्लदेव था। कुछ समय पश्चात् ये वाराणसी में रहने लगे थे। 'साहित्यसुधासिन्धु' इनके द्वारा रचित प्रौढ काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ हैं, जिसमें उन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है–

आस्ते धारासुराख्यं नगरमतिलसत्केशवोद्दामधाम
प्रभाजत्कीर्त्तिपूरं विलसति सविधे यस्य गोदावरी सा।
तत्रत्योऽनन्तदेवात्मज इह वसति मुक्तिपुर्यां सवर्यां
तस्याङ्गस्योल्लसति कृतिरियं विश्वनाथाभिधस्य।[3]

प्रबलकर्कशतर्कविचारणो–
ल्लसितकाव्यसुलक्षणलक्षिता
त्रिमलदेवतनूजविनिर्मिति–
र्मतिमतां वितनोतु मनोमुदम्।[4]

ग्रन्थकार के इस कथन के अनुसार गोदावरी के तट पर स्थित धारासुर नामक नगर में अनन्तदेव नामक विद्वान् निवास किया करते थे उनके पुत्र त्रिमलदेव जो दक्षिणदेश में जन्म प्राप्त थे, ने वाराणसी में निवास करना प्रारम्भ किया। यहीं त्रिमलदेव साहित्यसुधासिन्धुकार आचार्य विश्वनाथ के पिता हैं।

साहित्यसुधासिन्धुकार के तीन अभिधान प्राप्त होते हैं। इन्होंने अपने लिये तीन अभिधान प्रयुक्त किये हैं–

विश्वनाथ, विश्वनाथ शर्मा, विश्वनाथदेव ये तीनों ही नाम इन्होंने अपने लिये प्रयुक्त किये हैं। मृगाङ्कलेखानाटिका में इन्होंने 'त्रिमलदेवतनूजस्य विश्वनाथशर्मणः कृतिं' यह कहकर अपने विश्वनाथ शर्मा इस नाम उल्लेख किया है। मृगाङ्कलेखानाटिका के चतुर्थ अंक के अन्त में 'समाप्तेयं मृगाङ्कलेखाभिधाना नाटिका कृतिरियं विश्वनाथदेवकवेः' एवं अष्टम तरंग साहित्यसुधासिन्धु की पुष्पिका में 'कृतिरियं विश्वनाथस्य' कहा है। जिससे सिद्ध होता है कि विश्वनाथ शर्मा, विश्वनाथदेव एवं विश्वनाथ ये तीनों नाम कवि ने अपने लिये प्रयोग किये हैं। साहित्यसुधासिन्धु के आठ तरंगों में से छः तरंगों में विश्वनाथ और विश्वनाथदेव दो नाम प्रयुक्त हुये हैं।

तृतीय, षष्ठ एवं सप्तम तरंग में विश्वनाथदेव एवं चतुर्थ, पंचम एवं अष्टम तरंग में विश्वनाथ नाम का प्रयोग हुआ है।

आचार्य ने अपने लिये विश्वनाथ एवं विश्वनाथदेव दोनों ही नाम प्रयुक्त किये हैं इसलिये दोनों ही नाम प्रयुक्त किये जा सकते हैं। साहित्यसुधासिन्धु के अष्टम तरंग में अपने पितामह का नाम अनन्तदेव तथा पिता का नाम त्रिमलदेव बताया है। इससे प्रमाणित होता है कि इनके कुल में 'देव' पद नामों के अन्त में लगाया जाता था। इसी वंश में आगे चलकर 'न्यायसार' के प्रणेता माधवदेव हुये जिनका समय अट्ठारह वैक्रमाब्द माना जाता है। ये भी गोदावरी तटस्थ धारासुर ग्राम के निवासी थे। अतः विश्वनाथदेव संज्ञा मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

मृगाङ्कलेखनाटिका एवं साहित्यसुधासिन्धु में उपर्युक्त इतना ही परिचय उपलब्ध होता है। दोनों ही ग्रन्थों

का रचनाकाल सुनिश्चित् है। साहित्यसुधासिन्धु का रचनाकाल 1592 ई. मृगाङ्कलेखनाटिका का रचनाकाल 1607 ई. है। साहित्यसुधासिन्धु सदृश प्रौढ काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना यदि इन्होंने चालीस वर्ष की अवस्था में की होगी तो अनुमान किया जा सकता है कि इनका जन्मकाल सन् 1552 ई. के समीप हो सकता है। मृगाङ्कलेखा को 'साहित्यसुधासिन्धु' से पन्द्रह वर्ष बाद लिखी थी इस कारण यदि उनकी आयु इतनी ही मानी जाये तो इनका समय सन् 1552 ई. से 1607 ई. पर्यन्त माना जा सकता है। यदि यह माना जाये कि अत्यन्त प्रत्युत्पन्नमति होने के कारण इन्होंने अल्पायु में ही प्रौढ़ ग्रन्थों की रचना कर ली होगी यदि बीस वर्ष की आयु में यह ग्रन्थ लिखा होगा तब इनका जन्मकाल 1572 ई. माना जा सकता है। इस कल्पना के अनुसार इनका समय 1572 ई. से 1667 ई. निर्धारित किया जा सकता है। यह समय भारत में मुगल-शासन का रहा है।

साहित्यसुधासिन्धु का स्वरूपगत वैशिष्ट्य एवं रचनाकाल -

इसमें काव्यशास्त्र विषयक समस्त आवश्यक तत्त्वों का पुंखानुपुंख विवेचन उपस्थापित किया गया है। इसमें केवल नाटक प्रकरणादि रूपकों के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। किन्तु श्रव्यकाव्य विषयक रस, अलंकार, गुण, रीति, दोष आदि समस्त सामग्री अत्यन्त सुन्दर रूप में विवेचित है। आचार्य विश्वनाथदेव ने आचार्य भरत से लेकर षोडशशताब्दी के अन्त तक प्रचलित काव्यशस्त्रीय सिद्धान्तों को बुद्धिपूर्वक समाविष्ट किया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ आठ तरंगों में विभक्त है, जिनके प्रतिपाद्य विषय क्रमशः इस प्रकार हैं- प्रथम तरंग में सर्वप्रथम मंगलाचरण के श्लोकों में शिव की स्तुति की गयी है-

उत्तालतालस्फुरदङ्घ्रिपात-
प्रजातपालभुजङ्गकम्पम्।
अभ्रान्तविभ्रान्तकपर्दजालं
विस्रस्ततालं कलये नटं तम्।।

इसके अनन्तर काव्यप्रयोजन एवं काव्यलक्षण का प्रतिपादन किया गया है। काव्य का सामान्य लक्षण बताकर उसका एक परिनिष्ठित काव्यलक्षण बताया गया है। सरस्वतीकण्ठाभरण में प्रतिपादित लक्षण का समर्थन किया गया है।

ग्रन्थकार ने केवल शब्द को काव्य मानने वाले तथा शब्दार्थ दोनों को काव्य मानने वाले आचार्यों के पक्ष और विपक्ष में दी जाने वाली उक्तियों को उपस्थित किया है। काव्य के उत्तम, मध्यम और चित्र त्रिधा भेदों के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत करते हुये, इस प्रकार के वर्गीकरण को युक्तिपूर्वक अनुचित बताया है।

काव्यलक्षण- जायते परमानन्दो ब्रह्मानन्दसहोदरः।
यस्य श्रवणमात्रेण तद्वाक्यं काव्यमुच्यते।

'वस्तुतस्तु अनुचितोऽयं ध्वनित्वादिना विभागः। तथाहि एतेषु त्रिषु रसादिकं न प्रतीयते प्रतीयते वा।

द्वितीय तरंग -

इस तरंग में वाचक, लक्षक एवं व्यंजक शब्द के त्रिधा भेद करते हुये लक्षण दिये गये हैं। इनके अर्थों को क्रमशः वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य नाम से अभिहित किया है, जिनका बोध अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना व्यापार से होता है लक्षणा को परिभाषित करते हुए छः एवं आठ भेद बताये हैं। किन्तु बाद में चार प्रकार की लक्षणा को नवीन आचार्यों ने माना है, ऐसा बताया गया है। इनके उदाहरण भी दिये गये हैं।

भट्टलोल्लट, कुमारिलभट्ट तथा प्रभाकर मिश्र आदि मीमांसकों तथा अनुमानवादी महिमभट्ट के मतों को

पूर्वपक्ष में रखकर युक्तिपूर्वक खण्डन किया गया है। तदनन्तर एक ही व्यंजनावृत्ति को स्वीकार कर लेना चाहिये क्योंकि अभिधा और लक्षणा की पृथक् सत्ता नहीं होती-नवीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित मत का विवेचन किया गया है। अन्त में अतिनवीनों का अनुमान में ही व्यंजना का अन्तर्भाव हो जाता है यह मत दिखाया गया है।

तृतीय तरंग -

तृतीय तरंग में ध्वनि के लक्षणामूल एवं अभिधामूल नामक भेदद्वय अर्थान्तर सङ्क्रमित, अत्यन्ततिरस्कृत, असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य और संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य ये चार भेद दिखाये गये हैं। लक्षणामूलध्वनि के भेदों के उदाहरण प्रस्तुत करने के उपरान्त अभिधामूलध्वनि के असंलक्ष्यक्रम (रसध्वनि) के भेदों का सविस्तार वर्णन है। विभाव, अनुभाव, सात्विकभाव एवं व्यभिचारीभाव के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। प्रसिद्ध शृंगारादि नौ रसों में प्रेयान् दान्त और उद्धत को जोड़कर बारह रस माने गये हैं। सभी बारहों रसों के स्थायीभावों को लक्षण और उदाहरण दिखाकर उपस्थित किया गया है। शृंगारवीरहास्याद्भुत् ये चार रस ही प्रमुख न होकर सभी रस प्रधान होते हैं- ऐसा प्रतिपादित है। तैंतीस व्यभिचारी भावों का निरूपण किया गया है। इस प्रकार असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनि के सभी भावों का विवेचन करने के उपरान्त संलक्ष्यक्रमङ्ग्यध्वनि के सभी भेदों को गिनाते हुये 51 भेद दिये गये हैं।

चतुर्थ तरंग -

इसमें आठ प्रकार के गुणीभूतव्यङ्ग्यकाव्य को सोदाहरण दिखाकर शब्दचित्र एवं अर्थचित्र नामक दो प्रकार के चित्रकाव्यों का उल्लेख किया गया है।

पंचम तरंग-

इस तरंग में दोषसामान्य का लक्षण दिखाकर तेरह पददोष और तेरह समासदोष बताये गये हैं। बीस वाक्यदोष, तेईस अर्थदोष एवं तेरह अर्थदोष बताया गया है। इस तरंग में दोषों की साङ्गोपाङ्ग चर्चा है।

षष्ठ तरंग-

इसमें गुणसामान्य के लक्षण, माधुर्यादि गुणत्रय के लक्षण बताते हुये उससे सम्बन्धित रसों की चर्चा है। इन गुणों के व्यंजक वर्णों की सोदाहरण विवेचना की गयी है। गुणाधारित गौडी, पांचाली, और वैदर्भी रीति को समझाया गया है। गुण एवं अलंकारों में भेद प्रदर्शित करते हुये दण्डीप्रोक्त दस शब्दगुण एवं दस अर्थगुणों के लक्षण सोदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। वामन सम्मत गुणों के प्रतिपादन के उपरान्त गुणत्रय में समस्त गुणों के अन्तर्भाव वाले मम्मटानुमोदित सिद्धान्त के प्रति ग्रन्थकार ने अपनी असहमति प्रकट की है।

सप्तम तरंग-

सप्तम तरंग में शब्दालंकारों का वर्णन है। यमकालंकार के भेदों को दिखलाकर आठ प्रकार के श्लेष को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है। मधुरा, प्रौढा, परुषा, ललिता और भद्रा इन पाँच वृत्तियों को इनके लक्षण उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया हैं।

अष्टम तरंग-

अष्टम तरंग में सर्वप्रथम अर्थालंकार का सामान्य लक्षण बताते हुये मम्मटप्रोक्त 61 अलंकारों के नाम दस कारिकाओं में गिनाये गये हैं। आगे क्रमशः इन अलंकारों के लक्षण उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। तदनन्तर जब तक ब्रह्माण्ड में सूर्य-चन्द्र स्थित है तब तक यह ग्रन्थ बना रहे ऐसी कामना की गयी है-

यावत्पाटीरपङ्कद्रवमधुरसुधापूरसेकैस्त्रिलोकी-[5]

मुच्चौः प्रीणाति विप्रप्रणतिनुतपदः पार्वणः शीतभानुः।
वेगादम्भोजजृम्भावितरणरसिका भानवो भान्ति यावद्
भानोस्तावद् विधत्तामयमपि च सुधासिन्धुरानन्दकन्दम्।

साहित्यसुधासिन्धु- 8/291

अन्त में अपना वंशपरिचय देते हुये रचनाकाल एवं ग्रन्थ को चन्द्रचूडपत्तन (काशी) में रचे जाने की सूचना दी गयी है-

कीर्त्तिशेषं गते तैस्तैर्गुणैर्विक्रमभूभुजि।
ग्रहाम्भोधिरसेन्दौ (तस्मिन्)[6] संवत्सरक्रमे।
एकादश्यां गुरौ स्वीयः सुधासिन्धुर्विलेखितः।
पत्तने चन्द्रचूडस्य विश्वनाथेन धीमता।।[7]

साहित्यसुधासिन्धु- 8/297

'साहित्यसुधासिन्धु' की तीन हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं जिनका विवरण इस प्रकार है-

(क) जम्मू की हस्तलिखित प्रति -

यह प्रति श्री रणवीर संस्कृत रिसर्च इंस्टीट्यूट रघुनाथ मन्दिर जम्मू में विद्यमान् है-

Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts in Ranveer Sanskrit Research Institute Jammu-Kashmir (Editor Dr. H.M. Pathkar, Publisher, Dr. Karan Singh, President Dharmarth Council, Jammu) में इस प्रति के सम्पूर्ण विवरण प्राप्त होते हैं।

(ख) अलवर की हस्तलिखित प्रति -

यह प्रति राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान शाखा कार्यालय महल चौक अलवर में विद्यमान् है।

(ग) तिरुपति की हस्तलिखित प्रतिलिपि -

एल्फाबैटिक कैटलॉग, संस्कृत, तमिल, तेलुगु, मैनुस्क्रिप्ट्स तिरुपति (1956 ई.) ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, ग्रन्थागार, तिरुपति।

उपर्युक्त तीनों प्रतियों के आधार पर ग्रन्थ का सम्पादन किया गया है। जम्मू की प्रति अलवर की प्रति से कुछ प्राचीन प्रतीत होती है। यदि इसे प्राचीन न भी माना जाये तो भी समकालीन तो है ही। तिरुपति की प्रति इसके बाद की है। ग्रन्थ का सम्पादन जम्मू की प्रति के आधार पर हुआ है। किन्तु जहाँ पर जम्मू के पाठ की अपेक्षा अलवर एवं तिरुपति का पाठ अधिक उपयोगी प्रतीत हुआ है वहाँ मूल संस्कृत पाठ में उसको समाविष्ट करके पादटिप्पणियों द्वारा इसका संकेत दिया गया है कहीं-कहीं तीनों प्रतियों का पाठ संगत न होने पर अपनी ओर से संशोधित पाठ दिखलाया है। ग्रन्थ का सम्पादन प्रो. रामप्रताप वेदालंकार (संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय) द्वारा हिन्दी अनुवाद के साथ किया गया है। ग्रन्थ भारतीय विद्या प्रकाशन वाराणसी से प्रकाशित है। इसकी भूमिका आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखी गयी है, जिसमें इस ग्रन्थ के महत्त्व को रेखांकित करते हुये आचार्यश्री कहते हैं-

"परम्परावादी आचार्य के रूप में विश्वनाथदेव ने साहित्यसुधासिन्धु द्वारा उक्त अनेक मौलिक और स्थायी प्रश्नों का उत्तर न देते हुये भी प्रौढ़ तथा प्रांजल संस्कृत में साहित्य के काव्यपक्ष को काव्यप्रकाश तथा साहित्यदर्पण की पद्धति से अधिक से अधिक स्पष्ट करना चाहा है। अंगोपांगो के भी लक्षण प्रस्तुत करते हुये

और विरोधी मतों का उचित निराकरण देते हुये। इस दृष्टि से यह ग्रन्थ साहित्य के अध्येताओं के लिये बहुत ही उपादेय और अपरिहार्य ग्रन्थ है।"

इस प्रकार आचार्य विश्वनाथदेव का साहित्यशास्त्रीय अवदान महत्त्वपूर्ण है, किन्तु दुर्भाग्य से आप अल्पख्यात ही रहे।

संदर्भ ग्रंथ :

1. अलंकाशास्त्र की परम्परा, डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा', चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 2005 ई. (पुनर्मुद्रित संस्करण)
2. अल्बेरूनी लिखित अल्बेरूनी का भारत, अनुवादक : श्री रजनीकान्त शर्मा एम.ए., आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद, 1960 ई.
3. आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र, लेखक : डॉ. आनन्द कुमार श्रीवास्तव, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, नयी दिल्ली, 2012 ई. (प्रथम संस्करण)
4. काशी की पाण्डित्य परम्परा, पद्मभूषण आचार्य पण्डित बलदेव उपाध्याय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी, 1994 ई. (द्वितीय संस्करण)
5. काशी की सारस्वत साधना, डॉ. गोपीनाथ कविराज, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना 1965 ई. (प्रथम संस्करण)
6. गालिब गौरव, सम्पादक : डॉ. हुकुमचन्द नैयर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 1969 ई.
7. भारतीय काव्यशास्त्र की आचार्य-परम्परा, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी (उ.प्र.) 2007 ई.
8. संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र, म.म. प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी 2010 ई. (प्रथम संस्करण)
9. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास (काव्यशास्त्र खण्ड), प्रधान सम्पादक : आचार्य बलदेव उपाध्याय, सम्पादक : आचार्य करुणापति त्रिपाठी, सहसम्पादक : डॉ. वायुनन्दन पाण्डेय, उत्तर प्रदेश, संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 2001 ई. (प्रथम संस्करण)
10. संस्कृतवाङ्मयकोश (ग्रन्थ खण्ड), सम्पादक : डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर, भारतीय भाषा परिषद् कलकत्ता की ओर से लोकभारती प्रकाशन, 15-ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, 2001 ई. (द्वितीय आवृत्ति)
11. संस्कृतवाङ्मयकोश (ग्रन्थकार खण्ड), सम्पादक : डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर, भारतीय भाषा परिषद् कलकत्ता की ओर से लोकभारती प्रकाशन, 15-ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, 2001 ई. (द्वितीय आवृत्ति)
12. साहित्यसुधासिन्धु-प्रो. रामप्रताप वेदालंकार, भारतीय-विद्या प्रकाशन, वाराणसी

अंग्रेजी ग्रन्थ:

13. Post-Jagannath Alankar-Sastra, M. Shivkumar Swamy, Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi, 1998 A.D. (First Edition).

Endnotes :

1. अलबेरूनी लिखित अलबेरूनी का भारत, पृ. 390, अनुवादक : श्री रजनीकान्त शर्मा एम. ए., आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद, 1960 ई.
2. डॉ. बर्नियर की भारत यात्रा, अनुवादक : गंगा प्रसाद गुप्त, पिलग्रिम्स पब्लिशिंग, वाराणसी (2006), पृ. 2030-231
3. साहित्यसुधासिन्धु 8/283
4. साहित्यसुधासिन्धु 8/284

5. ज. अ.; सुधापूरकर्पूरगौरः त।
6. संशोधित जअत में यह स्थान मिटे अक्षरों वाला है। ज.अ.त. (जम्मू, अलवर, तिरुपति)
7. इस श्लोक के बाद जम्मू की प्रति में यह लिखा है- श्रीकृष्णार्पणमस्तु श्रीराम श्रीराम शरणं मम, इदं पुस्तकं काशीस्थचिन्तामणि लक्ष्मणब्रह्मतानिने दत्तम्।

●●●

नब्बे के दशक की हिंदी कविता में जनपदीय चेतना व भाषाई स्वरूप

❍ मनकामना शुक्ल[1]

कविता मनुष्य की आदि सहयात्री होने के साथ-साथ मानवीय चेतनशीलता की एक अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम माध्यम है जिसमें मानव जगत के गहन से गहन पहलुओं तक इसकी व्याप्ति है। इसलिए जीवन की अतल गहराईयों में होने वाले परिवर्तनों की छाया साहित्य में विशेष रूप से कविता पर ही पड़ती है जिसका परिचय शब्दों, अर्थों, भावों और विचारों के नए संतुलन से मिलता है। कविता ऐसे प्रत्येक संतुलन के साथ हमेशा नयी होती रही है। शायद इसीलिए आचार्य शुक्ल को कहना पड़ा था कि ज्यों-ज्यों मनुष्य पर सभ्यता के आवरण बढ़ते जायेंगे, कविता की जरूरत भी कहीं अधिक महसूस होगी। हिन्दी में कवि को हमेशा विशिष्ट समझा गया है। इस तरह एक कवि को यह पारंपरिक प्रतिष्ठा सदा मिलती रहती है जो कथाकार, नाटककार, या आलोचक को नही मिल पाती। आज भी सबसे अधिक सम्मान, पुरस्कार और विदेश में भ्रमण के अवसर प्रायः कवियों को ही मिलता रहा है। और यह सच्चाई भी है कि समाज में कविता ही सबसे ज्यादा संकट में घिरी हुई है।

इसी तरह स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश में प्रयोग जन्य अतिरिक्त उत्साह से युक्ति लेती खासकर समकालीन हिन्दी कविता के नब्बे के दशक की हिन्दी कविता एक भिन्न दिशा में नये भावबोध, नये मूल्य, रूपगत नये तेवर के साथ सामने आती है। इस दौर के कवियों ने अपनी रचनाशीलता के माध्यम से न केवल काव्य साहित्य को समृद्ध किया बल्कि उसे एक नयी यति व गति भी प्रदान की है।

समकालीन हिन्दी कविता में नब्बे का यह दशक अनेक संभावनाओं से लबरेज अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं के लिए साहित्य में सदैव चर्चा का विषय बना रहेगा। हो भी क्यों न, क्योंकि कई बड़ी घटनाएँ इस दशक में घटित हुई हैं। इस दशक में एक साथ दो पीढ़ी के कवि सक्रिय दिखाई देते हैं। इस दौर के कवियों ने हिन्दी कविता को एक अलग ही मुकाम दिलाई है। क्योंकि ये कवि जहाँ कहीं एक ओर अपने लोक से जुड़ते हैं,

---

1. *शोधार्थी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।*
Email : mkshukla2586@gmail.com, Mob: 9450579550

वहीं दूसरी ओर किसानों, दलितों, आदिवासियों की पीड़ा को भी रेखांकित करते हैं। ये कवि अपने लोक व जनपद से जुड़े रहकर भी एक नए रचना संसार का निर्माण करते हैं। इसके साथ ही उनकी कविताओं में उनका जनपद व वहाँ की लोकभाषा व जीवन की मिठास सर्वथा विद्यमान रहती है। इस कड़ी में कुछ खास कवियों को केन्द्र में रखते हुए हम नब्बे के दशक के कवि व उनकी कविताओं के विस्तृत फलक पर चर्चा करना चाहेंगे। किन्तु इस चर्चा से पहले हमें जनपदीय चेतना के प्रमुख बिंदुओं पर भी चर्चा कर लेनी चाहिए।

जैसा कि हम आरंभ से ही पढ़ते आ रहे हैं कि जनपद शब्द को जहाँ प्राचीन भारत में राज्य व्यवस्था की एक इकाई के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता था परन्तु आजकल खासकर उत्तर प्रदेश में जिले आदि के अर्थ में व्यवहृत किया जाता है। वहीं आंधप्रदेश में इसका लोक के व्यापक अर्थों में इस्तेमाल होता है।

"हिन्दी कविता में श्जनपदश की चर्चा इन सन्दर्भों के अलावा कभी किसी जिले विशेष तो कभी किसी अंचल विशेष से लिया जाता है। समकालीन हिन्दी कविता में इस जनपदीय चेतना को वैशिष्ट्य अभिजात्य चेतना की प्रतिचेतना के रूप में रेखांकित किया जाना प्रासंगिक है। यह चेतना कहीं से अचानक फुट पड़ी हो ऐसा कतई नही है, बल्कि नयी कविता अथवा उससे भी पहले की कविता के काल से यह एक सूक्ष्म अंतर्धारा के रूप में प्रवाहित होती आयी है। जैसे-जैसे नयी कविता का अभिजात्यवादी तिलस्म हटता है, वैसे-वैसे समकालीन कविता में जनपदीय चेतना की धारा क्रमशः स्पष्ट और प्रखर होती जाती है। इस तरह स्थानिकता से बँधे रह कर नहीं बल्कि उसका अतिक्रमण करके ही श्रेष्ठ कविता सम्भव होती है।"[1]

यदि सही मायने में जनपदीय चेतना की चर्चा की जाए तो यह सोचना पड़ेगा कि क्या उसे जनपद की भौगोलिक सीमा संकीर्ण बनाया जाना चाहिए, अथवा इस शब्द युग्म को किसी विशिष्ट परिभाषिक अर्थ से मण्डित करना होगा। यदि जनपदीय चेतना को किसी भौगोलिक सीमा से आवृत्त किया जायेगा तो निश्चय ही एक भारतीय चेतना के भीतर पचीसों क्षेत्रीय चेतनाएँ या सौकड़ों आंचलिक चेतनाएँ जनपदीय चेतना के नाम पर सिर उठाती दिखाई देंगी। जनपदीय चेतना का काम्य अर्थ शक्ति व सत्ता के केन्द्रों के परे उस भारतीय जन की जागरूकता में निहित है जो महानगरीय बोध के प्रदूषण से अछूता अभी तक अपनी सांस्कृतिक जड़ों से रस ग्रहण करता है।

जनपदीय चेतना की अवधारणा को अभिजात्य चेतना की विरोधी समांतरता में उभरते देखा जा सकता है। यह अभिजात्य चेतना विशिष्टतावाद का पोषण करती है। इसके विपरीत जनपदीय चेतना कथित भदेस के वरण से भी परहेज नहीं करती। वैसे तो जनपदीय चेतना का इतिहास सम्पूर्ण रूप से जनपदीय चेतना का इतिहास रहा है। चाहे वह आदिकाल, भक्तिकाल, छायावाद या आधुनिक काल ही क्यों हो। इस तरह से देखा जाए तो समकालीन हिन्दी कविता का अधिकांश भाग जनपदीय चेतना से भरा पड़ा है। भक्तिकाल के कवि जायसी, तुलसीदास और कबीर खुद जनपदीय चेतना से सम्पन्न कवि रहे हैं। इसका प्रमाण स्वयं उनकी रचनाओं से मिल जाता है। मध्यकाल के सन्त व भक्त कवियों ने हिन्दी प्रदेश में अन्तर-जनपदीय और अन्तर-प्रादेशिक रूप विकसित किया था। किन्तु उनकी जनपदीय चेतना का मूल आधार लोकज्ञान था। और हिन्दी प्रदेश के भीतर लोक जीवन की अनेक इकाईयाँ मौजूद हैं, जिसके भीतर अनेक जनपदों की जातीय - संस्कृति परम्पराओं का मिश्रण मिलता है।

अमरकोश में तो जनपद और निवृत्त को ही पर्याप्त माना गया है। 'नीवृत्त जनपदः' इस तरह जनपद शब्द की व्याख्या करते हुये कहा गया है कि 'जनः पदं वस्तुयत्र'[2] अर्थात जन ही जहाँ वस्तु है।

जनपदीय चेतना का काम्य अर्थ शक्ति और सत्ता के केन्द्रों से परे उस भारतीय जन की जागरुकता में निहित

है जो महानगरीय बोध के प्रदूषण से अछूता अभी तक अपनी जड़ों से रस ग्रहण करता है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो 'पर' नगर में रहने वाले और 'जनपद' गावों में रहने वाले लोगों में अन्तर को बहुत पहले ही स्वीकार कर लिया था, किन्तु आज इस भूमण्डलीकरण और संचारक्रान्ति के युग में शहरों और गांवों के जीवन में जैसा अन्तर आ गया है, वैसा पहले कभी नहीं आया था। वे यह भी लिखते हैं कि हमारे देश की परम्पराओं को लेकर सबसे पहले ग्राम-संस्कृति का निर्माण हुआ है। इस तरह ग्रामों के समुदाय को ही प्राचीन पारिभाषिक शब्दावली में जनपद कहा जाता है।

वैसे तो जनपदीय चेतना का इतिहास काफी पुराना है, किन्तु इस शब्द को प्रगतिशील काव्यधारा के कवि त्रिलोचन के संग्रह 'धरती' जो कि 1945 ई० में प्रकाशित हुआ। उसी से जनपद की कविता को उपर्युक्त मंच मिला। वे 'उस जनपद का कवि हूँ' कविता में लिखते हैं..

'उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा दूखा है, नंगा है, अनजान है, कला नहीं जानता'[3]

त्रिलोचन जनपद के कवि हैं वे जिस समाज को संबोधित करते हैं, वह उनका अपना समाज है और वहीं उनका जनपद भी। वे ठेठ बोली का प्रयोग करने से नहीं हिचकते, उनकी भाषा में अवध की संस्कृति का ठाट है। उन्हें सिर्फ जनपद के कवि ही नहीं कहा जाता बल्कि उन्हें कविता के परिदृश्य में जनपद का लैण्डस्केप भी माना जाता है। वे तुलसीदास को अपना आदर्श मानते हैं। जबकि तुलसी स्वयं जनपदीय संवेदना के श्रोत के कवि हैं।

इस प्रकार अभिजात्य महानगरीय संस्कार तथा खाँटी जनपदीय संस्कार के संघर्ष की परिणति को लोकसचेतन कविता के शब्द और वस्तु के चयन में ही नहीं बल्कि उसके शैली शिल्प में भी परिलक्षित किया जा सकता है। उस जनपदीय चेतना को टालने के लिए जिस सहज शिल्प की जरूरत पड़ती है वह बड़बोली अवधारणात्मक तथा गद्य प्रधान कृत्रिम कविता के शिल्प से भिन्न है। इस तरह जनपदीय चेतना से संपन्न कविता का आग्रह कविता को पुनः वाचिक बनाने का है।

"नब्बे के कुछ कवियों ने अपने को आँचलिक, स्थानीय अथवा जनपदीय भूगोल एवं लोक संवेदना से संपृक्त किया। यह ग्रामीण जीवन का लोक था। एक तरह से यह कहा जाय, तो अक्षय ऊर्जा और सक्रिय जीवन का लोक था यह। यह वह लोक था जहाँ जीवन की दिशा सकर्मक क्रियाओं से ते होती है, वगैर वैचारिक अध्ययन और प्रतिबद्धता के। यह वह लोक था जहाँ प्रकृति और मनुष्येतर प्राणियों का भी सान्निध्य प्राप्त था।"[4]

जनपदीय चेतना में समकालीन कवियों ने लोक जीवन को दैनिक संघर्ष के रूप में आत्मसात किया है। काव्यभाषा में जनपद की उपस्थिति या जनपदीयता में काव्यभाषा की उपस्थिति आकस्मिक नहीं हुई बल्कि सुचिंतित है जो यहाँ नगरीयबोध को मुँह चिढ़ाती है। समकालीन हिन्दी कविता में "नब्बे का दशक विचाधाराओं का अन्त और इतिहास का ध्वंस लेकर आया उस वक्त उत्पादन के साधन बदल गए और बाजार का दबदबा बढ़ गया किसानों की आत्महत्याएँ बढ़ गयी और हरित क्रांति की पोल खुल गयी, बंजर होती धरती व बढ़ती कृषि कार्य मे लागत के कारण किसान रोजी रोटी की तलास में महानगरों की ओर निकल गए, फिर भी ये कवि अपने लोक से अपने जनपद से सदैव जुड़े रहे।"[5]

उनका इस तरह अपने लोक व जनपद से जुड़ाव उनकी रचनात्मकता को उर्वर भूमि ही नहीं प्रदान करता बल्कि हिन्दी कविता को और अधिक समृद्ध भी करता है जहाँ से समकालीन हिन्दी कविता अपने उच्च भाव भूमि पर विराजमान दिखाई देती है। जनपदीयता इन कवियों की एक मात्र विशेषता नहीं है, बल्कि यह इन कवियों के देखे और भोगे गये जीवन की रागात्मक और संत्रास का प्रतिफल है। ये कवि नगरीय जीवन बोध

से जुड़े होने के बाद भी अपने ग्रामीण समाज व जीवन जगत को नहीं भूलते, बल्कि निरन्तर उसी में जीते भी हैं। इन कवियों की कविताओं में प्रकृति है, पशु-पक्षी हैं, धान, गन्ने व आलू के खेत हैं उनका गाँव व गाँव के लोग हैं, तथा उनका जीवन चरित्र व उनकी भाषा, कला, संस्कृति व सामाजिक सांस्कृतिक रीति व परंपराएँ हैं। साथ ही बनते बिगड़ते भूगोल की एक सुन्दर झलक भी दिखाई देती है।

इसका प्रमाण नब्बे के दशक की हिन्दी कविताओं में साफ तौर पर देखा जा सकता है। इस दौर की कविताओं में कवि ने समकालीन जीवन के जटिल से जटिल यथार्थ की अभिव्यक्ति की है। इन कवियों ने अपनी कविताओं में अपने माता-पिता, घर-परिवार व पास-पड़ोस, मित्रों-परिचितों के साथ-साथ परिवेशीय वातावरण तथा पशु-पक्षियों, गाँव, घर, समाज, पहाड़, जंगल, पठार व वहाँ के लोग उनकी संस्कृति उनके आचार-विचार एवं उनके जीवन संघर्षों आदि का वृहद चित्रण किये हैं। जनपदीय चेतना प्रकृति के दोहन में नहीं बल्कि उसके साथ जीने में विश्वास रखती है। जनपदीय चेतना से सम्पन्न कवि प्रकृति और जीवन को अलग-अलग करके न तो देखता है और न अभिव्यक्त करता है। इस तरह सम्बन्धित रचनाकारों की कविताओं में जनपदीय चेतना की अभिव्यक्ति, मानवीय सम्बन्धों और पारिवारिक रिश्तों की खोज इसी सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए।

केवल हिन्दी कविता में ही नहीं बल्कि भारत के सामाजिक, राजनीतिक यहाँ तक कि सम्पूर्ण वैश्विक परिदृश्य में 1990 ई० के काव्य साहित्य की भूमिका बेहद महत्त्वपूर्ण रही है। जिस वक्त रूस का मॉडल टूटकर विखर रहा था, विश्व भर में वामपंथी व्यवस्थाएँ एक-एक कर के ढह रही थीं यद्यपि 'व्यवस्था की विफलता विचार की विफलता नहीं, पर यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि बेईमान समय में भी इन कवियों से ईमानदारी की उम्मीद की जाती है; क्योंकि धूमिल के शब्दों में, कविता भाषा में आदमी होने की तमीज है। इस तरह से मुक्तिबोध ने भी सौन्दर्यानुभूति को वास्तविक जीवन की मनुष्यता कहा है। शायद यही कारण है कि कविता को मनुष्यता की मातृभाषा कहा जाता है। किसी भी कविता में भाषा उसकी प्राण होती है। और भाव उसकी धमनियों में प्रवाहित रक्तकाव्य लोचना में भाषा के विद्यमान पर सेंसर्स कतई सही नहीं। कविता में यदि कथ्य ही अमूर्त हो और उसके सौंदर्य में जन की जगह अभिजन का पक्ष हो तो इसका पता भी उस कविता की काव्य भाषा से चल जाता है। अगर कोई कवि अपनी भाषा को जनपद की लोकभाषा से नहीं सींचता, परम्परा से उसे पोषित नहीं करता, स्थानीयता का चटक रंग नहीं ला पाता, देशज भंगिमा को प्रकट करने में सफल नहीं हो पाता तथा मध्यवर्गीय कुंठा-लालसा से ग्रसित हो जाता हो, बंद कमरे में किताबी भाषा को जोड़ तोड़ से ही अपना काम चलाता हो तो इसे परीक्षण की कुंजी भी प्रथमतः और अंततोगत्वा कवि की काव्य भाषा ही है। क्योंकि इसकी जड़ें वहीं मौजूद हैं जहाँ लोक धर्मी चिंतक जाना चाहते हैं। इसी लिए काव्य भाषा को कविता के प्रतिमान का विपर्यक व पाश्चात्य नव्य समीक्षा की फलश्रुति मानना और रूपवादी झुकाव का एक नया आयाम कहकर तिरस्कृत करना कविता की स्वायत्त दुनिया में अवांछनीय दखल जैसा प्रतीत होता है।

वैसे तो नब्बे के दशक की हिन्दी कविता की दो से तीन धाराओं के कवि अपनी रचनाधर्मिता के माध्यम से विशेष सक्रिय दिखाई देते हैं। परन्तु काव्य की वास्तविक भावभूमि तैयार करने का काम मदन कश्यप, स्वप्निल श्रीवास्तव, एकान्त श्रीवास्तव, बद्रीनारायण व श्रीप्रकाश शुक्ल जैसे कवियों ने किया है। इन कवियों की कविताओं ने कविता के स्पेस को भरने का काम किया है, जो कि अन्यत्र नही दिखाई देता। क्योंकि इन कवियों ने अपनी काव्य-भूमि का विस्तार करते हुए भी मूल भूमि को बचाये रखा है। इन कवियों की काव्य भाषा जीवन-यथार्थ की भाषा है उनके जनपद की भाषा है। समकालीन जीवन की जटिलताओं को व्यक्त करने के लिए इससे बेहतर भाषा नहीं हो सकती। क्योंकि इनके भाषा की लय में जीवन का लय भी समाहित है।

काव्यानुभूति एवं जीवनानुभूति के स्तर पर इन कवियों की कविताएँ विविधवर्णी एवं अर्थगर्भी हैं। इन कवियों की कविताओं में लोक व जनपदीय चेतना से जुड़े आंचलिक देशज शब्दों की चमक समकालीन प्रगतिशील धारा के कवि नागार्जुन, त्रिलोचन व केदारनाथ सिंह की भाँति चमकती दिखाई देती है। और यही विशेषताएँ इन कवियों को नब्बे के दशक की काव्य परम्परा में विशेष महत्त्व का अधिकारी भी बनाती हैं। इन कवियों की कविताओं में लोकभाषा के शब्दों की भरमार है। जो किसी भी कवि की सृजनशीलता को संवर्द्धित एवं संस्कारित करते हैं।

ये कवि अपनी कविताओं के माध्यम से प्रतिरोध की जमीन तो तैयार कर ही रहे थे, साथ ही पूँजी के भूमण्डलीकरण, नव उदारवाद और निजीकरण के दौर में अपनी कविता के माध्यम से एक सार्थक हस्तक्षेप भी करते नजर आते हैं। इसके साथ-साथ इनकी कविताओं में लोक व उनका जनपद तथा अपनी भाषिक कलात्मकता को लिए हुए पूरी शिद्दत के साथ उपस्थित रहता है। इसके ताजे उदाहरण के तौर पर कवि श्रीप्रकाश शुक्ल के नए काव्य संग्रह 'क्षीरसागर में नींद' को भी देखा जा सकता है ।

"एक उम्मीद की तरह खड़ा है अभी भी ललिता घाट / त्रिपुर सुंदरी का साक्षात विग्रह स्वरूप / नेपाली कारीगरों के हुनर का जीवंत प्रतीक / जहाँ से काशी में कभी उतरता था लालित्य / जब इसकी सीढ़ियों से गंगा का जल लेकर चढ़ते थे शिव भक्त / नंगे पाँव ही सही भोले दरबार में"[6]

यहाँ कवि पूंजीवाद का विरोध करते हुए आमजन के पक्ष में खड़ा है। उक्त कविता में मानवीय संवेदना के साथ साथ वहाँ की जनपदीय चेतना व सांस्कृतिक चेतना भी दृष्टिगत होती है जो कवि की विशिष्टता को दर्शाती है।

समकालीन हिन्दी कविता के इतिहास में नब्बे के दशक की कविताओं की अपनी एक अलग ही भूमिका रही है। कारण ये कि इस दशक के कवियों की कविता की भाषा व उनकी कविताओं में कवि का गाँव और जनपद सर्वथा मौजूद रहा है। साथ ही इनकी ये कविताएँ अपने भीतर जनपदीय चेतना के भावों व शिल्प आदि को लिए समकालीन चेतनशीलता का व्यापक बोध कराती हैं।

सन 1990-91 ई० में सोवियत रूस का पतन हुआ और वैश्विक स्तर पर नयी परिघटनाएँ सामने आईं। इसका असर हिन्दी कवियों की कविताओं पर भी पड़ा। साम्यवादी देश सोवियत रूस के बिखरने के बाद पूरी दुनिया में वाम-आंदोलन और विचारधारा से जुड़े लेखकों-कवियों के सामने एक तरह की विकल्पहीनता की स्थिति पैदा हुई, कई नए-पुराने कवि के स्वर बदले, सुर बदले इस तरह कल तक जो क्रान्ति की चेतना से लबरेज और प्रतिबद्ध थे, वे सहसा शोकाकुल हो उठे। वे सच्ची निराशा और उदासी की बात करने लगे। ऐसे विभ्रम और संशय व द्विधाग्रस्त माहौल में नब्बे के दशक के इन्हीं कवियों ने अपने को आँचलिक, स्थानीय अथवा जनपदीय भूगोल एवं लोक-संवेदना से संपृक्त किया। यह वहीं लोक जीवन था जहाँ एक ऐसा लोक था। जो सहज और नैसर्गिक था। जिसमें खेती किसानी की बातें थी, ईखों की मिठास व लेवाड लेती भैंसें थी, तो कहीं दंवरी हांकते किसान व खेलते कूदते उनके बच्चे थे, साथ ही वहाँ प्रकृति और मनुष्येतर प्राणियों का सान्निध्य भी प्राप्त था।

कोई भी रचनाकार अपने समय समाज का सजग प्रहरी होता है। और वह उस समय समाज पर अपनी पैनी दृष्टि डाले हुए वह अपने अनुभव के आधार पर युगीन सन्दर्भों व चिंताओं को रूपायित करने का प्रयास भी करता है तथा रचना की अर्थवत्ता और गुणवत्ता का परीक्षण भी समय समाज की धड़कनों की सफल अभिव्यक्ति के आधार पर करता है। कहीं यह प्रतिमान कला ही बन जाता है। लेकिन कलावादिता रचना कहाँ

होती है। रचना तो वह है जिसमे बड़ी ईमानदारी व शिद्त के साथ युग स्पंदन सुनाई देता है । और इस तरह के स्वर व उसकी अनुगूंज नब्बे के दशक की हिन्दी कविताओं में स्पष्ट तौर पर सुनी जा सकती है ।

"अब धान गदराने को होगा / इखों में मिठास उतर आया होगा / भैंसें लेवाड़ ले रही होंगी / आलू के खेत कोड़े जा रहे होंगे / कहीं बोझे निबारे जा रहे होंगे / तो कहीं अबेर तक दंवरी हो रही होगी

X X X

वहाँ पर शरद ऋतु का कहना ही क्या मित्र / कमल खिल रहे होंगे / अमरूद ढेसरा रहे होंगे / विजयदशमी का पर्व होगा चहुँ ओर / पत्नी करवाचौथ की तैयारी कर रही होगी"[7]

यहाँ कवि को कृषक व ग्राम्य चेतना से सम्पन्न कवि कहना ज्यादा उपयुक्त लगता है। क्योंकि कवि की यहीं असली दुनिया है। जहाँ कवि को एक सच्चे भारतीय किसान होने का दर्जा मिलता है। कवि के यहाँ पकते अमरूद व धान की बालियाँ हैं, आलू कोड़ते किसान हैं तथा पर्व, त्योहार मनाते अपने लोग हैं। यहाँ कवि अपने समूचे जनपद व ग्रामीण लोकचेतना को लिए उपस्थित रहता है। यही नहीं कवि अपनी लोकभाषा व उसकी मिठास को अपनी कविता में सदैव बरकरार भी रखता है। इस दौर के कवियों का ध्यान अपने लोक और जनपद की ओर पूरी निष्ठा के साथ गया है। इस तरह वे कवि इस सूखे तल को भी अपने साहित्यिक शब्दों के माध्यम से सिंचन करते हुए उसे निरन्तर हरा भरा बनाये रखने का पुरजोर प्रयास किए हैं। इन कवियों की कविताओं में जीवन के राग और कृषि-संस्कृति और देशज संस्कारों से संपृक्त होने के चलते पाठकों को एक तार में जोड़े हुए उन्हें सुखद एहसास प्रदान कराती हैं। इन कवियों ने अपनी जड़ों को बार-बार याद किया है। इन कवियों का अपने लोक व अपने जनपद की ओर लौटना एक संकल्प, उम्मीद और स्वप्न की तरह रहा है।

यहाँ कवि का उम्मीद भरा गाँव व उसके लोकभाषा की गंध मन को एक बार पुनः अपने गाँव, अपने जनपद की ओर लौट चलने के लिए बाध्य कर देती है।

5 अक्टूबर 1965 ई० में जन्मे कवि बद्रीनारायण भी लोक व जनपदीय चेतना से संपन्न कवि हैं। उनकी एक कविता की कुछ पंक्तियाँ पूरी तरह से जनपदीय चेतना का बोध कराती है- "दुख हुआ जान कर कि / सूख गया मानिकपुर का तालाब / मानिकपुर के तालाब में एक मछली रहती थी नीली / जिससे मेरी ख़ूब दोस्ती थी / उसका क्या हुआ / कुछ का कहना है कि / जब धूप में सूख कर उड़ रहा था तालाब का पानी / तब वह भी सूखती, पटपटाती, भुनती हुई / हवा में उड़ी थी"[8]

हालाँकि, बद्रीनारायण की कविताओं में गाँव के साथ-साथ शहरी चेतना का भी मिलाजुला असर दिखाई देता है। फिर भी उनका मानिकपुर गाँव व वहाँ के जीव जन्तु और अपने लोग विद्यमान हैं। कवि की कविता में उन लोगों के प्रति चिन्ता बरबस ही दिखायी देती है।

कवि की कविता में प्रकृति व मानव समाज की चिन्ता का भाव दिखाई देता है जो उसे एक सजग कवि होने का दर्जा देती है। यहाँ कवि का मानिकपुर गाँव व वहाँ के लोगों के भीतर पलती महत्वाकांक्षाएँ तो हैं ही साथ ही खेतों में पकते अनाजों को आम आदमी तक पहुँचाने की ललक भी है। किन्तु उसे पूर्ण न हो पाने पर उसके भीतर प्रतिरोधी तेवर व छटपटाहट दिखाई देती है। जो कवि को सच्चे लोक व जन नायक कवि होने का दर्जा देती है। जहाँ तक मुझे लगता है कि कवि बद्रीनारायण व स्वप्निल श्रीवास्तव के कवि व्यक्तित्व में जहाँ स्थिर व शान्त का भाव दिखता है, वहीं कवि मदन कश्यप व श्रीप्रकाश शुक्ल की काव्य यात्रा में नवीनता व निरन्तरता के साथ-साथ तीखेपन का समावेश भी दिखाई देता है।

इस प्रकार से इस दौर के कवियों की कविताओं में जनपदीय चेतना की वृहद व उर्वर भावभूमि दूर-दूर तक दिखाई देती है। इसके साथ ही लोक की अर्थवत्ता व गुणवत्ता को लिए हुए मानवीय मूल्यों को बचाये रखने की जद्दोजहद भी दिखाई ही देती है।

शायद यही कारण भी है कि मंगलेश डबराल ने 1990-91 ई० के हिन्दी कविता परिदृश्य पर बात करते हुए उसे 'रिक्त स्थानों की कविता' नाम दिया है। इन कवियों के सामने साकार के ढ़हने का प्रभाव पहले पड़ता है। निराकार के बचे रहने का संतोष तो बाद में होता है। कुछ-कुछ वैसी ही स्थिति बन पड़ी थी जैसी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय काव्यधारा के कवियों खासकर रामधारी सिंह दिनकर बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि के सामने थी कि अब क्या लिखें ! उन कवियों का काव्य-पतन हो 'हारे को हरि नाम' और 'कोयल और कवित्त' तक जा पहुँचा। लेकिन 1990 ई० के इन कवियों ने हरिनाम की आध्यात्मिक शरण लेने की बजाय अपने गांव कस्बों को देखना आरंभ किया। कविता इससे पहले या तो रणभूमि में थी या महानगर केंद्रित थी। यह ग्राम वासिनी भारत माता की खोज थी। कविता में, भारत की खोज डिस्कवरी ऑफ इंडिया भारत जो भारत ही था इण्डिया नहीं था कविता के संसार में। इस तरह नब्बे के दशक के अधिकतर कवि गाँव कस्बों में रहकर कविता लिख रहे थे। उनकी कविताएँ भारतमाता ग्राम-वासिनी जबकि इसके पूर्व में केदारनाथ सिंह जी का गाँव सत्रह बरस पहले ही छूट चुका था मगर शब्दों में गाँव व जनपद की गंध बची हुई थी।

इस तरह से देखा जाए तो नब्बे के दशक के इन कवियों की काव्यभाषा की जड़ें भले ही परंपरा में गहरी धंसी हों पर उसको खाद पानी लोक व उनके परिवेश से ही मिलता रहा है। परम्परावादी लोकधर्मी आलोचक, चिन्तक नब्बे के दशक के बाद से काव्यभाषा में निरन्तर हुए बड़े बदलाओं को कविता के रूपवादी चिन्तन से जोड़कर देखते हैं।

कहना न होगा कि जिस भी कवि का परिवेशीय जीवन यथार्थ और अंतर्द्वंद्व से पगा हुआ नहीं, वह अपनी रचना में लोकधर्मी, जनवाद के उस वागर्थ को नहीं उद्भाषित कर सकता। इस दशक के कवियों की कविताओं को पढ़कर हिन्दी कविता के भविष्य के प्रति आश्वस्त हुआ जा सकता है। समाज संपृक्ति की वास्तविक पहचान भाषा से की जा सकती है। इन कवियों की कविताओं में प्राय: लोकभाषा और नगर समाज के साथ उक्त जनपद की बोलचाल के शब्दों, वाक्यों तथा मुहावरों को व्यापक स्थान मिला है। इस तरह कवि मदन कश्यप, स्वप्निल श्रीवास्तव, बद्रीनारायण व श्रीप्रकाश शुक्ल की कविताओं में कस्बाई लोक जीवन अभिव्यक्ति व उसकी गंध सर्वथा मौजूद है।

नब्बे के दशक के अधिकांश कवि उत्तर प्रदेश व इसके बाहर अन्य प्रान्तों से भी जुड़े हैं जिसके कारण उनका भाषाई स्वरूप बिल्कुल अलग-अलग है। अब स्वप्निल श्रीवास्तव व एकान्त श्रीवास्तव को ही लें तो एक की भाषा छत्तीसगढ़ के कन्हार के ग्रामीण जन जीवन की भाषा है, तो वहीं स्वप्निल श्रीवास्तव की भाषा में उत्तर प्रदेश के सिद्धार्थ नगर के ठेठ ग्रामीण जन जीवन की भाषा का असर दिखाई देता है। इन दोनों कवियों का भाषाई स्वरूप अलग है फिर भी इन कवियों की दिशा एक है। कवि आलोचक विजय बहादुर सिंह ने कवि के 'अन्न हैं मेरे शब्द' नामक कविता संग्रह के कवर पेज पर लिखा है कि "छत्तीसगढ़ अंचल के एक छोटे - से गाँव में रहकर लिखी गयी ये कविताएँ अपने पहले ही पाठ में हिन्दी कविता के पाठकों को उस ठेठ देसी संसार में ले जाती हैं जो आज भी अपनी बुनियादी रागमयता और इन्सानियत के लिए संघर्षशील है।"[9]

ठीक उसी तरह हम स्त्री कवयित्रियों में अनामिका और नीलेश रघुवंशी के रचनात्मक स्वरूप का अध्ययन करते हैं तो उनका भाषाई स्वरूप भी स्पष्ट हो जाता है। जहाँ अनामिका का जीवन बिहार, मुजफ्फरपुर की तंग

गलियों से होकर दिल्ली तक की भाषा में घुला मिला है, तो वहीं नीलेश रघुवंशी की कविताओं में मध्य प्रदेश की भाषा की गमक मौजूद है। लेकिन इन दोनों कवयित्रियों की कविताओं में घर, परिवार, समाज व देश ही नहीं पूरे वैश्विक परिदृश्य को देखा व महसूस किया जा सकता है। किन्तु स्त्री होने के नाते इनकी कविताओं में विशेष रूप से स्त्री मुक्ति के स्वर को स्पष्ट तौर पर सुना जा सकता है।

वहीं स्वरूप मदन कश्यप व श्रीप्रकाश शुक्ल की कविताओं में भी विद्यमान है। किन्तु इन दोनों कवियों की कविता का स्वरूप अन्य कवियों से थोड़ा भिन्न नजर आता है। इनकी कविताएँ अपने लोक की पीड़ा व उनके जीवन यथार्थ से टकराती आम आदमी के पक्षधरता की वकालत करती हैं। प्राय: इन कवियों के भाषा का स्वरूप कुछ मिलता जुलता प्रतीत होता है।

मदन कश्यप भले ही आठवें दशक के उत्तरार्ध से कविता लिख रहे हों पर उनकी असली पहचान 1990 ई० में उनकी कविता 'गूलर के फूल नहीं खिलते' से होती है। अत: मैं उनका आगमन नब्बे के आरम्भिक दौर से मान्यता हूँ, जो पूरे नब्बे के दशक से लेते हुये अभी तक मजबूती के साथ बना रहा। क्योंकि उसके तुरंत बाद 1992 ई० में उनका पहला काव्य संग्रह- 'लेकिन उदास है पृथ्वी' प्रकाशित हो कर पाठकों के बीच आता है। उसके बाद कवि का कारवां अनवरत चलता रहा और 2019 में 'पनसोखा है इन्द्रधनुष' से भी आगे चल रहा है। मदन कश्यप राजनीतिक विद्रोही कवि के रूप में जाने जाते हैं। उन्हें सत्ता की चाकरी बिल्कुल पसन्द नहीं तो इसका मतलब ये भी नहीं की उनकी कविता अपने लोक और जनपद से बिल्कुल नहीं जुड़ी है। वे अपनी अधिकांश रचनाओं में अपने जनपद को अपने लोक को सदैव याद करते हैं। चाहे वह कुएँ का पानी हो या तालाब अथवा पोखर, घर, जवार, बथान अथवा उनका खेत-खलिहान अथवा आदिवासियों के गीत या उनकी पीड़ा ही क्यों हो। वे अपने 'दूर तक चुप्पी' नामक कविता संग्रह में एक कविता 'एक आदिवासी गीत सुनते हुए' में लिखते हैं-

पहाड़ नींद में जग रहा था / झरने चाह रहे थे / उसके सुर-ताल पर थिरकना / हवा सीख रही थी बहने की लय / नदी आँक रही थी करुणा की गहराई / दरख्त सुन रहे थे उसे साँस रोक कर / एक फूल जो खिल रहा था उसी समय प्रस्फुटित होकर उससे कहीं अधिक बड़ा हुआ जितना बड़ा उसे होना चाहिए था !"[10]

इस सन्दर्भ में हम यह पाते हैं कि इन कवियों की कविता में जनपद व उनकी काव्यभाषा में प्रचलित शब्द-अर्थ व उनकी गुणवत्ता पूरी निष्ठा के साथ विद्यमान है। नब्बे के दशक के कवियों का ध्यान वहाँ तक गया जहाँ तक आठवें दशक के कवियों का ध्यान नहीं जा सका था। ऐसा भी नहीं कि नब्बे के इन कवियों का रास्ता पूर्ववर्ती कवियों से पूरी तरह से भिन्न था, हाँ यह जरूर है कि इन कवियों के देखने का नजरिया थोड़ा भिन्न था। सामाजिक विसंगतियाँ, विडम्बनाएँ और नाटकीय एकालाप जैसी विशेषताओं को इन नब्बे के कवियों की कविताएँ अर्थ देती प्रतीत होती हैं। इन कवियों की कविताएँ मानवीय जन चेतना से जुड़े रहकर भी मानव मुक्ति के उपायों की तलाश करती दिखाई देती हैं जहाँ से गाँव के मिट्टी की सोंधी गंध का आभास मिलता है। लोक जीवन की व्यापकता तथा विराट जनपदीय चेतना होने के कारण ये कवि वह स्थान प्राप्त किए हैं, जो अस्सी के दशक के कवियों को नही मिल पाया है। नब्बे के दशक के इन महत्त्वपूर्ण कवियों के सामने यह भी समस्या थी कि वे क्या लिखें जो आठवें दशक की तरह न हो, इसलिए उन्होंने अपने मुहावरे, कथ्य, शिल्प में भी बदलाव किया। यह बदलाव ही उन्हें अन्य दशक के कवियों से एकदम भिन्न बना देता है चाहे वह इनके पूर्ववर्ती कवि हों या परवर्ती कवि हों।

❑

सन्दर्भ :

1. शेधादर्श, समकालीन कविता की जनपदीय चेतना, प्रो. ऋषभदेव, 11 नवम्बर 2019 ई० www.shodhadarsh
2. अमरकोश, 2 /1/8
3. धरती, कवि त्रिलोचन, साभार - कविता कोश
4. वागर्थ का 209वाँ अंक, दिसम्बर 2012 ई०, पृ. 51
5. वागर्थ का 211वाँ अंक, फरवरी 2013 ई०, पृ. 40
6. क्षीरसागर में नींद, कविता संग्रह, कवि श्रीप्रकाश शुक्ल, सेतु प्रकाशन, दिल्ली, 2019, पृ. 104
7. बोली बात कविता संग्रह, श्रीप्रकाश शुल्क, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 23, 64
8. खुदाई में हिंसा, बद्री नारायण, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि० 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली, 2010, पृ. 38
9. 'अन्न हैं मेरे शब्द' नामक कविता संग्रह के कवर पेज पर लिखा गया कवि व आलोचक विजयबहादुर सिंह के लेख का एक अंश
10. दूर तक चुप्पी, मदन कश्यप, सेतु प्रकाशन प्रा० लि०, रजिस्टर्ड ऑफिस 303 प्रियदर्शिनी अपार्टमेंट पटपड़गंज, दिल्ली, 2020, पृ. 78

●●●

मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास 'कर्मभूमि' पर गाँधी जी के विचारों का प्रभाव

❍ रेखा यादव[1]

प्रेमचंद जी के आने से पहले विभिन्न प्रकार के उपन्यास लिखे जाते थे। जैसे जादुई, जासूस, जासूसी, ऐतिहासिक और सामाजिक। इन उपन्यासों ने अधिकांश पाठकों को हिंदी साहित्य की ओर आकर्षित किया और भाषा को नई पहचान दिलाई। हालाँकि ये उपन्यास मुख्य रूप से केवल मनोरंजन या सबक सिखाने के लिए बनाए गए थे, और वास्तविक जीवन के अनुभवों पर ध्यान केंद्रित नहीं करते थे। जब प्रेमचंद जी ने लिखना प्रारंभ किया, तो उन्होंने उपन्यास लेखन में एक नया दृष्टिकोण लाकर खेल को बदल दिया। उन्होंने वास्तविक जीवन की स्थितियों पर ध्यान केंद्रित किया और हिंदी साहित्य में गहराई और परिपक्वता लाई। उनके उपन्यास उनके व्यक्तिगत अनुभवों और अपने गाँव और समाज के प्रति उनके गहरे प्रेम से प्रेरित थे, जो उनकी देशभक्ति की प्रबल भावना को दर्शाते थे।

'कर्मभूमि' प्रेमचन्द के लेखन के अन्तिम चरण की कृति है। यह उपन्यास गाँधी जी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन महात्मा गांधी द्वारा शुरू किया गया था। जब ब्रिटिश सरकार ने गांधी की ग्यारह मांगों पर सकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं दी थी। इसकी शुरुआत 12 मार्च 1930 को गांधी के प्रसिद्ध दांडी मार्च से हुई। और उत्तर प्रदेश के किसानों के लगान बंदी आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है।[1] 'कर्मभूमि' उपन्यास की रचना 1931-32 के बीच हुई थी। ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण काल है। 1928 ई० में बारदोली का किसान आन्दोलन सफलता से सम्पन्न हो चुका था। आजादी की लड़ाई में अंग्रेजों के कठोर दमन के बावजूद बहुत तेजी आ चुकी थी। जवान, बूढ़े और स्त्रियाँ सब कुछ भूलकर स्वाधीनता आन्दोलन में सम्मिलित हो रहे थे। स्वाधीनता आन्दोलन अपनी मंजिल की ओर बढ़ रहा था। आधुनिक भारत के इन तूफानी वर्षों की विभिन्न हलचलों की प्रतिध्वनि अपनी पूरी व्यापकता, गहराई और गरिमा के साथ सुनी जा सकती है। इस आन्दोलन का नेतृत्व उच्च मध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय नेताओं के हाथ में होते हुए भी देश की जनता ने एक नई आशा, उत्साह और विश्वास के साथ

1. पी-एच.डी. हिंदी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

उसमें भाग लिया। 'कर्मभूमि' में प्रेमचन्द ने प्रथम बार इतने व्यापक स्तर पर अछूतोद्धार की समस्या को उठाया है।[2]

'कर्मभूमि' प्रेमचन्द का अकेला ऐसा उपन्यास है, जो पूरी तरह से गाँधीवाद और स्वाधीनता आन्दोलन पर केन्द्रित है। यह उपन्यास इस आन्दोलन की ताकत और इसमें शामिल लोगों के चरित्र पर तीखा विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने न तो अकारण किसी चरित्र को महिमामण्डित किया है और न ही किसी का चरित्र हनन। डॉ. राम विलास शर्मा कहते हैं कि, "कर्मभूमि हिन्दुस्तान के स्वाधीनता आन्दोलन की गहराई और प्रसार का उपन्यास है। यह आन्दोलन एक जबरदस्त सैलाब की तरह तमाम जनता को अपने अन्दर समेट लेता है। विद्यार्थी, किसान, अछूत, स्त्रियाँ, शिक्षक, व्यापारी, मजदूर सभी इसके प्रवाह में आगे बढ़ते चलते हैं।"[3] कर्मभूमि में आन्दोलन के दो केन्द्र हैं- शहर और गाँव। शहर में इसका आरम्भ हरिजनों के मन्दिर प्रवेश के प्रश्न को लेकर होता है। पर शीघ्र ही शहर के म्यूनिस्पल बोर्ड के विरुद्ध एक व्यापक आन्दोलन का रूप धारण कर लेता है। इसी प्रकार अछूत समस्या को वे किसानों के शोषण के साथ सम्बद्ध करके देखते हैं। इस उपन्यास के प्रमुख पुरुष पात्रों में अमरकान्त, लाला समरकान्त, सलीम, डॉ. शान्ति कुमार तथा स्त्री पत्रों में सुखदा, रेणुका, नैना, मुन्नी और शकीना आदि पात्र हैं, जिनके द्वारा मुंशी प्रेमचंद जी ने गाँधी जी के विचारों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया हैं।

1. हिंदू-मुस्लिम एकता

प्रेमचन्द के साहित्य में उनके युग के साम्प्रदायिक वातावरण का जीवन्त चित्रण मिलता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही था, क्योंकि प्रेमचन्द के समय में राष्ट्रीय राजनीतिक में साम्प्रदायिकता का विषवृक्ष हाहाकार का रूप ले चुका था। सांप्रदायिक सद्भाव का अर्थ है कि विभिन्न धर्मों, जातियों, पंथों, लिंग और विभिन्न पृष्ठभूमि के लोग समाज में प्रेम और शांति के साथ रहें। सांप्रदायिक सद्भाव विभिन्न समुदायों के बीच सद्भावना और सद्भाव पैदा करने का प्रयास करता है। प्रेमचन्द जैसे सजग एवं संवेदनशील रचनाकार के लिए ऐसा करना स्वाभाविक ही था। क्योंकि उन जैसा सजग रचनाकार अपने परिवेश के प्रति तटस्थ रह ही नहीं सकता था। प्रेमचन्द हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे। उनकी रचनाओं में हिन्दू-मुलसलमान के विषय में विस्तार के साथ लिखा गया है। इसलिए उनका साहित्य हिन्दू एवं मुसलमान दोनों के बीच समान रूप से लोकप्रिय है। अपने साहित्य में उन्होंने न केवल हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों को बारीकी से उजागर किया है। पारस्परिक वैमनस्य और तनाव के समाधान के संकेत भी दिए हैं।

युगेश्वर के अनुसार, "हिन्दू-मुस्लिम एकता का सवाल राष्ट्रीय एकता का सवाल था। प्रेमचन्द दोनों सम्प्रदायों की मनोवृत्तियों से भलीभाँति परिचित थे। वे अपनी स्वतन्त्रता के साथ-साथ दूसरे को भी स्वतन्त्र देखना चाहते थे।"[4] जब देश के किसी हिस्से से राष्ट्रीय एकता और धार्मिक उदारता की आवाज प्रेमचन्द को सुनायी देती थी, तो वह बड़े उत्साह से उसका स्वागत करते थे और अपनी कलम से उसका प्रसार-प्रचार करते थे। हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रश्न पर प्रेमचन्द को किसी प्रकार का भ्रम नहीं था। जिन्दगी के हर पहलू में पारस्परिक एकता होते हुए भी उनमें कुछ विशिष्टता है। जोकि उन्हें दूसरों से अलग करती है।[5] यह लक्ष्य तब प्राप्त होगा जब हिन्दू-मुस्लिम मैत्री को सिर्फ राजनीतिक आवश्यकता न समझकर मनुष्य के आचरण और विचारणा का अंश बना दिया जायेगा। इसी में राष्ट्र और देश का भविष्य सुरक्षित है।[6]

प्रेमचन्द ने साहित्य को साम्प्रदायकिता जैसे प्रश्न के समाधान का साधन माना। उसको बढ़ावा देने वाले साहित्य के वे विरोधी थे।[7] "प्रेमचन्द ने पत्रकार की हैसियत से हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्बन्धी प्रस्तावों का

समय-समय पर सहर्ष स्वागत किया है। उनके अनेक लेखों में इस तरह की भावना के दर्शन होते हैं।"[8] व्यक्तिगत जीवन में प्रेमचन्द हिन्दू-मुसलमान में भेद नहीं मानते थे। उन्होंने एक बार अपनी पत्नी से कहा था, "मैं एक इन्सान हूँ और जो इन्सानियत रखता हो, इन्सान का काम करता हो, मैं वही हूँ और उन्हीं लोगों को चाहता हूँ। मेरे दोस्त अगर हिन्दू हैं तो मेरे कम दोस्त मुसलमान नहीं हैं और इन दोनों में मेरे नजदीक कोई खास फर्क नहीं है, मेरे लिए दोनों बराबर हैं।"[9] प्रेमचन्द जी ने साम्प्रदायिक आन्दोलनों के साथ साम्प्रदायिकता पर भी गहरा प्रहार किया था।[10] 'कर्मभूमि' उपन्यास और कहानियों में 'हिंसा परमोधर्म', तथा 'मन्त्र' आदि में दिखाई पड़ता हैं। अपने लेखन कर्म में वे न केवल तत्कालीन साम्प्रदायिक स्थिति का चित्रण कर रहे थे, बल्कि साम्प्रदायिक तनावों को कम करने की कोशिश भी कर रहे थे। इसीलिए वे धर्म की थोथी मान्यताओं की आलोचना कर रहे थे।[11]

2. सत्य और अहिंसा के मार्ग का अनुसरण

सत्य और अहिंसा महात्मा गाँधी के जीवन दर्शन की आधारशिला है। गाँधी जी का सत्य से अभिप्राय उस सम्पूर्ण ज्ञान, चित्त अथवा वास्तविकता से है जो शाश्वत है, जो सदा रहेगी, जो न केवल हर प्राणी के जीवन की सभी गतिविधियों का बल्कि समस्त ब्रह्माण्ड का संचालन करती है। जिसका अनुसरण करने से संतोष व आनन्द की अनुभूति होती है। गाँधी जी मानते थे कि, "हर मनुष्य में अपने लिए सत्य निर्धारण की एक अद्‌भुत क्षमता है, जिसका ज्ञान व अनुसरण उसे अन्य प्राणियों से भिन्न व श्रेष्ठ बनाता है।"[12] इस प्रकार अहिंसा भीरुओं व कायरों का मार्ग नहीं है, वह तो उन वीरों का मार्ग है, जो अपने आदर्शों के लिए मृत्यु का सामना करने के लिए भी प्रस्तुत हैं। कायरता व हिंसा में वे हिंसा को तरजीह देते हैं।[13]

गाँधी जी के इस सिद्धान्त से प्रेमचन्द पूरी तरह सहमत थे। इन मौकों पर हिंसा का प्रयोग न करना गाँधी जी की दृष्टि में कायरता है और यह कापुरुषता उनके अनुसार सबसे बड़ी हिंसा है। उपन्यास में मुन्नी का अंग्रेज सिपाहियों द्वारा बलात्कार किए जाने के पश्चात, उसके द्वारा सरेआम, खुले बाजार में दो अंग्रेजों का कत्ल कर दिया जाता है और पकड़े जाने के बाद मुकदमा चलाया जाता है। मुकदमा का फैसला होने से पहले प्रेमचन्द की आदर्श पात्र सुखदा कहती है, "अगर इसको (मुन्नी को) फाँसी हो गई, तो मैं समझूंगी कि संसार से न्याय उठ गया। उसने कोई अपराध नहीं किया। जिन दुष्टों ने उस पर अत्याचार किया, उन्हें यही दण्ड मिलना चाहिए था। मैं अगर न्याय के पद पर होती तो उसे बेदाग छोड़ देती। ऐसी देवी की तो प्रतिमा बनाकर पूजनी चाहिए। उसने सारी बहनों का मुख उज्ज्वल कर दिया।"[14] ये विचार प्रेमचन्द के अपने विचार हैं जो कि पूरी तरह से गाँधीवादी सिद्धान्त के अनुकूल हैं।

'कर्मभूमि' उपन्यास में लाला समरकान्त और अमरकान्त दोनों गाँधीवादी अहिंसात्मक नीति का ही समर्थन करते हैं। अमरकान्त कहता है कि, "त्याग, कष्ट, बलिदान और सत्य के मार्ग पर चलने से ही हमें आन्दोलन में सफलता प्राप्त होगी। जब सलीम के द्वारा अमर गिरफ्तार किया जाता है तो गाँव वाले इस गिरफ्तारी का विरोध करते हैं। अमर गाँव वालों को समझाते हुए कहता है कि यह हमारा धर्मयुद्ध है। अत: हमें शान्ति के मार्ग से नही हटना चाहिए।"[15] महात्मा गाँधी का भी यही कहना था कि अंग्रेजों को इस देश से भगाने के लिए हमें हिंसा और असत्य का सहारा नहीं लेना चाहिए।[16] लाला समरकान्त जैसा शोषणकर्ता भी सत्य का उपदेश देने लगता है और कहता है कि, "तुम धर्म की लड़ाई लड़ रहे हो। लड़ाई नहीं तपस्या है। तपस्या में क्रोध और द्वेष आ जाता है तो तपस्या भंग हो जाती है। आपको अपनी नीतिपरकता से अपने शासकों को नीति पर लाना है। यदि वह अनीति पर न होते तो आपको यह तपस्या क्यों करनी पड़ती? आप अनीति पर अनीति से नहीं

नीति से विजय पा सकते हैं।"[17]

उपन्यास में अमर, सलीम को समझाते हुए कहता है कि "कोई भी राष्ट्र अथवा कोई भी जाति किसी समस्या का स्थायी समाधान हिंसा का सहारा लेकर नहीं कर सकती। तलवारों और तोपों की सहायता से हम अल्पकालीन विजय पा भी जायें पर यह स्थायी हल नहीं होगा। मनुष्य वास्तविक रूप से तभी मुक्त हो सकेगा जबकि उसमें मानवता का उदय हो। मनुष्य में प्रेम, त्याग, कष्ट सहने की क्षमता एवं आत्म बलिदान की भावना विद्यमान है। हमें चाहिए कि हम आपसी भेदभाव को भुला दें और सबसे प्रेम करें, तभी हमें स्वाधीनता की प्राप्ति होगी।"[18] "हिंसा से हिंसा और अहिंसा से अहिंसा उत्पन्न होती है।"[19] यह ध्रुव सत्य है। इस प्रकार प्रेमचन्द गाँधी जी का अनुसरण करते हुए आजीवन सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलते रहे। उनकी इस अहिंसात्मक प्रवृत्ति और मनोभाव की झलक उनकी कृतियों में सर्वत्र दिखाई देती है।

3. ग्रामीण जीवन का यथार्थ

प्रेमचन्द उस रचनाधर्मिता के प्रतीक हैं जो भारतीय ग्रामीण जीवन एवं उसके सरोकार से अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। प्रेमचन्द के उपन्यासों और अन्य रचनाओं में ग्रामीण जीवन का निकटतम परिचय मिलता है। बचपन से ही ग्रामीण परिवेश से जुड़े होने के कारण प्रेमचन्द गाँवों की संस्कृति, उसकी अच्छाइयों, बुराइयों एवं समस्याओं को अपने उपन्यासों में जीवन्त रूप दे सके हैं। गाँधी जी को भी भारत की ग्रामीण जनता के प्रति अत्यधिक सहानुभूति थी। उनका मानना है कि "भारत अपने चन्द शहरों में नहीं, बल्कि सात लाख गाँवों में बसा हुआ है, लेकिन हम शहरवासियों का ख्याल है कि भारत शहरों में ही है और गाँवों का निर्माण शहरों की जरूरतों को पूरा करने के लिए हुआ है। हमने कभी यह सोचने की तकलीफ नहीं उठायी कि उन गरीबों को पेट भरने जितना अन्न और शरीर ढंकने जितना कपड़ा मिलता है या नहीं और धूप तथा वर्षा से बचने के लिए उसके सिर पर छप्पर है या नहीं।"[20]

प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में न केवल ग्रामीण जनता के जीवन की सरलता और सादगी का ही सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। अपितु उनके जीवन की कटु सच्चाई का यथार्थपूर्ण वर्णन भी किया है। वास्तव में उनकी परिवेशगत संरचना उन्हें किसानों और मजदूरों के नजदीक ले जाती है। प्रेमचन्द का मानना है कि राष्ट्र की वास्तविक मुक्ति किसानों की मुक्ति में ही है, क्योंकि भारत की अधिकतम आबादी के रूप में गाँवों के किसान और मजदूर ही हैं, जिनका निर्मम शोषण पूँजीपति वर्ग उद्योगपतियों, जमींदारों और महाजनों द्वारा होता है।[21]

'कर्मभूमि' उपन्यास में प्रेमचन्द आर्थिक मंदी पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं, "इस साल अनायास ही जिन्सों का भाव गिर गया। जब भाव तेज था, किसान अपनी उपज बेच-बाँचकर लगान दे देता था, लेकिन जब दो और तीन की जिन्स एक में बिके, तो किसान क्या करे। कहाँ से लगान दें, कहाँ से दस्तूरियाँ दे, कहाँ से कर्ज चुकाये। विकट समस्या आ खड़ी हुई है और यह दशा कुछ इसी इलाके की न थी। सारे प्रान्त सारे देश यहाँ तक कि सारे संसार में यही मन्दी थी।"[22] संयुक्त प्रान्त में लगानबन्दी आन्दोलन तथा उसके प्रति सरकार का दमन चक्र प्रतिबिम्बित हुआ है। प्रेमचन्द यह स्वीकार करते हैं कि गरीबों के दमन पर आधारित राज्य स्थायी नहीं होता। उपन्यास की सुखदा कहती है "जिस समाज का आधार अन्याय पर हो, उसकी सरकार के पास दमन के सिवा और क्या दवा हो सकती है। लेकिन इससे कोई यह न समझे कि आन्दोलन दब जायेगा..... मुझे गिरफ्तार कर लें, उन गरीबों को कहाँ ले जायेंगे, जिनकी आहें आसमान तक पहुँच रही हैं। यही आहें एक दिन किसी ज्वालामुखी की भाँति फटकर सारे समाज और समाज के साथ सरकार का विध्वंस कर देगीं।"[23]

प्रेमचन्द गाँधी जी के विचारों से पूर्णतया सहमत थे। गाँधी जी का मानना है कि भारत का विकास गाँवों के विकास में ही संभव है। इसलिए गाँवों को स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनाने पर बल देते हैं। गाँवों को शोषण मुक्त करने और किसानों की आर्थिक दशा में सुधार लाने के लिए गाँधी जी ग्रामोद्योग को महत्वपूर्ण साधन मानते हैं। कुटीर उद्योगों द्वारा ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था का पुनरुद्धार हो सकता है। इसके लिए उन्होंने चर्खे के उपयोग को अधिक महत्वपूर्ण माना है। गाँधी जी की दृष्टि में 'खादी' जैसा ग्रामोपयोगी उद्योग और कुछ नहीं हो सकता है। खादी एकत्वपूर्ण जीवन का सन्देश देती है। चरखे का सन्देश सादगी, मानव सेवा, अहिंसामय जीवन तथा गरीब और अमीर, पूँजी और श्रम, राजा और प्रजा एवं किसान के बीच अकाट्य सम्बन्ध स्थापित करता है। खादी का चर्खे से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध मानते हैं। चर्खे से खादी उत्पादन का कार्य होता है, साथ ही वे इसे आत्मशुद्धि का साधन मानते हैं।[24]

प्रेमचन्द के 'कर्मभूमि' उपन्यास में खादी की भावना को दर्शाया गया है। इस उपन्यास का आदर्श पात्र अमरकान्त भी घर में आर्थिक लाभ के लिए नहीं आत्मिक शुद्धि के लिए चर्खा कातता है। अमरकांत अपने आत्मोपार्जन के लिए कन्धें पर खद्दर की गठरी रख कर गली-गली बेंचता फिरता है।[25] प्रेमचन्द जी को स्वयं ग्रामीण जीवन से लगाव था, और वे गाँवों में रहने के लिए लालायित रहते थे। अमरकान्त शहर छोड़कर गाँव चला जाता है और वहाँ के लोगों में घुलमिल जाता है। लेखक कहते है कि "लगभग पचास छोटे-बड़े गाँवों को वह अब तक देख चुका है, कितने ही आदमियों से उसकी जान पहचान हो गई है, कितने ही उसके सहायक हो गये हैं, भक्त बन गये हैं।.. वह ग्रामवासियों की सरलता और सहृदयता, प्रेम और सन्तोष से मुग्ध हो गया है। ऐसे सीधे-सादे निष्कपट मनुष्यों पर रात-दिन जो अत्याचार होते हैं, उन्हें देखकर उसका खून खौल उठता है।"[26] इस प्रकार प्रेमचन्द ग्रामीण जीवन के साहित्यकार हैं और गाँवों की सादगी, सरलता और सत्यवादिता को अपनी रचनाओं का अंग बनाया है।

4. नारी विमर्श

प्रेमचन्द जी का लेखन समाज के प्रत्येक तबके से जुड़ा है, जो उपेक्षित और शोषित रहा है। यही कारण है कि उनके लेखन में स्त्रियों की समस्याएँ और उनका दमित जीवन बहुत सहानुभूति के साथ चित्रित है। प्रेमचन्द जी के समय में भारतीय स्त्रियों विशेषत: हिन्दू स्त्रियों की स्थिति बड़ी चिन्ताजनक थी। प्रेमचन्द का युग सभी दृष्टियों से उथल-पुथल का युग था। समाज और व्यक्ति के मानवीय मूल्यों में महान परिवर्तन हो रहे थे। गाँधी जी के स्त्री सम्बन्धी विचारों से प्रभावित होकर अनेक महिलाओं ने राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में हिस्सा लिया था। जिनमें श्रीमती बेसेन्ट, श्रीमती सरोजनी नायडू, राजकुमारी अमृत कौर, सरला देवी चौधरानी, मेडेलीन स्लेड (मीराबेन), डॉ सुशीला नय्यर, आभा गांधी, प्रभावती देवी, तथा मनु गांधी आदि। प्रेमचन्द-युग में भारतीय नारी में राजनीतिक चेतना एवं राष्ट्रीय जागृति का संचार हुआ। गाँधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में राष्ट्र के सभी वर्गों का सहयोग और सहानुभूति प्राप्त करने की चेष्टा की थी। बहिष्कार आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रमुख अंग था, जिसके संचालन के लिए गाँधी जी ने नारी का विशेष रूप से आह्वान किया। राष्ट्रीय आन्दोलन में नारी के सक्रिय सहयोग और उसकी राजनीतिक चेतना का चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यासों में विशेष रूप से हुआ है। बदली हुई परिस्थितियों एवं शिक्षा के प्रसार के कारण नारी में राजनीतिक चेतना का उदय हुआ। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं "प्रेमचन्द जी ने नारी समस्या का व्यापक चित्र बनाने के साथ-साथ इस समस्या को हिन्दी साहित्य में पहली बार देश की स्वाधीनता की समस्या से भी जोड़ दिया है।"[27]

'कर्मभूमि' उपन्यास में नारियाँ प्रत्येक आन्दोलन में पुरुषों के साथ भाग लेती हैं। 1930 के नमक सत्याग्रह

के प्रभाव को प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में दिखाया है। 'कर्मभूमि' की नायिका सुखदा दरिद्र और अछूतों पर अत्याचार होते देखकर उनका पक्ष लेकर आन्दोलन करती है। यह आन्दोलन वह अछूतों के मन्दिर प्रवेश और गरीबों की आवास समस्या के लिए करती है। धीरे-धीरे वह अन्य सभी आन्दोलनों में भाग लेती है। उसके सम्मुख कर्मभूमि उपन्यास का पात्र डॉ. शान्ति कुमार जैसे देश सेवकों का व्यक्तित्व भी दब जाता है। निम्न वर्ग के लिए किए गए आन्दोलन में गिरफ्तार होने के पश्चात वृद्धा पठानिन तथा उसकी माँ रेणुका उसे प्रोत्साहन और बल देती हैं। इस उपन्यास की अन्य नारी पात्र नैना के बलिदान से यह आन्दोलन सफल होता है। उसकी लोकप्रियता को चित्रित करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं कि-"हजारों आदमी मोटर के पीछे दौड़ रहे हैं और सुखदा हाथ उठाकर उन्हें प्रणाम करती जाती है। यह श्रद्धा, यह प्रेम, यह सम्मान क्या धन से मिल सकता है? या विद्या से, इसका केवल एक ही साधन है, वह सेवा है और सुखदा को इस क्षेत्र में आये हुए ही कितने दिन हुए थे।"[28] उपन्यास की नारी पात्र मुन्नी अपने ऊपर हुए बलात्कार (अंग्रेज सिपाहियों द्वारा) का बदला अंग्रेज सिपाहियों की हत्या से लेती है और न्यायालय उसे बरी कर देता है। जनता उसे सर आँखों पर बिठाती है, पर वह नेतृत्व करने में अपने को असहाय पाती है। मुन्नी भूमिकर न देने के आन्दोलन में अपनी सहभागिता के कारण जेल जाती है। इस तरह के चित्रण से प्रेमचन्द यह सिद्ध करना चाहते हैं कि पुरुष वर्ग की सक्रियता के कारण उनकी गिरफ्तारी होने पर स्त्रियों को आन्दोलन का नेतृत्व करना चाहिए। यह पुरुष और स्त्री की सोच में एक नया आयाम प्रतीत होता है।

प्रेमचन्द ने जहाँ एक ओर नारी की सामाजिक पराधीनता और उसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली समस्याओं को अपने उपन्यासों और कहानियों में अभिव्यक्ति प्रदान की है। वहीं दूसरी ओर यह भी दिखाया है कि शिक्षित नारी सामाजिक अन्याय से मुक्ति पाने के लिए आर्थिक दृष्टि से किस प्रकार स्वावलम्बी बनना चाहती है। प्रेमचन्द नारी को पुरुष से महान मानते थे। 'स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अंधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा, त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है।[29] प्रेमचन्द की दृष्टि में नारी जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिए आवश्यक है कि नारी को पुरुष के बराबर अधिकार प्राप्त हों। अधिकार के क्षेत्र में पुरुष और स्त्री न केवल समान हों, अपितु उनमें सद्भाव और सहयोग की भावना भी उत्पन्न होद्य जिससे समाज और राष्ट्र का कल्याण हो सकें।

5. दलित चेतना

भारत में जाति और जातिगत भेदभाव बहुत बड़ी समस्या हैं और यह समस्या प्राचीनकाल से ही विद्वान हैं। प्रेमचंद का दृढ़ विश्वास था कि लोगों के साथ उनकी जाति के आधार पर अलग-अलग व्यवहार करना गलत है। वह गांधी जी से प्रेरित थे, जो यह भी मानते थे कि अस्पृश्यता हिंदू समाज में एक समस्या है। जिसे हल करने की आवश्यकता है। गांधीजी ने अछूतों की मदद के लिए कई परियोजनाओं पर काम किया और प्रेमचंद ने इन विचारों को अपने उपन्यासों में शामिल किया। वह यह दिखाना चाहते थे कि जातिवाद और अस्पृश्यता अनुचित और क्रूर थी, खासकर अशिक्षित ग्रामीणों के लिए जो सबसे अधिक पीड़ित थे। प्रेमचंद अपनी कहानियों एवं उपन्यासों के माध्यम से इस मुद्दे पर ध्यान दिलाना चाहते थे और इन हाशिये पर पड़े लोगों के जीवन को बेहतर बनाने में मदद करना चाहते थे।

दलित वर्ग के उद्धार के लिए महात्मा गाँधी और डॉ. भीमराव अम्बेडक ने समन्वित प्रयास किया। गाँधी जी ने हरिजनोद्धार आन्दोलन चलाया और डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में 'कालाराम मन्दिर प्रवेश आन्दोलन' का संचालन किया। 'अम्बेडकर: जीवन दर्शन' में डी.आर. निम लिखते हैं कि, "अछूतों ने अपना कार्य आगे बढ़ाने

के लिए नासिक के कालाराम मन्दिर में प्रवेश की योजना बनाई। मई 1930 में मन्दिर प्रवेश के लिए सत्याग्रह की योजना बनाई गई। अछूतों ने कालाराम मन्दिर में घुसकर पूजा करने का प्रण किया। जोर-शोर के साथ नासिक में मन्दिर प्रवेश के लिए सत्याग्रह शुरू हो गया। डॉ. अम्बेडकर ने बम्बई से ही नासिक के कालाराम मन्दिर आन्दोलन का संचालन किया था।"[30] इस आन्दोलन में धर्म के ठेकेदारों और दलित सत्याग्रहियों में संघर्ष हुआ, जिसका फायदा अंग्रेजों ने पूरी तरह उठाया। डॉ. अम्बेडकर ने 'मन्दिर प्रवेश' से ज्यादा जरूरी बराबरी और नागरिक अधिकार को समझा। इसीलिए गाँधी जी के बार-बार निवेदन करने पर भी श्री रंगा अय्यर द्वारा प्रस्तुत 'मन्दिर प्रवेश बिल' पर पूर्ण सहमति नहीं दी। उन्होंने कहा कि नये मन्दिर बनाने से छुआछूत दूर करना अधिक उपयोगी, महत्वपूर्ण और लाभदायक है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास 'कर्मभूमि' में दलितों के मंदिर प्रवेश समस्या को मुख्य आधार बनाया है।

प्रेमचन्द ने धर्म के पाखण्डियों की वास्तविकता को विस्तार से चित्रित किया है, कर्मभूमि उपन्यास के पात्र डॉ. शान्तिकुमार के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहते हैं, "अन्धे भक्तों की आँख में धूल झोंककर यह हलवे बहुत दिन खाने को न मिलेंगे महाराज, समझ गये? अब वह समय आ रहा है, जब भगवान भी पानी से स्नान करेंगे, दूध से नहीं। इस उपन्यास के माध्यम से प्रेमचन्द अछूतों के उद्धार के साथ-साथ दलित समाज को भी सचेत करते है कि उन्हें अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तैयार रहना चाहिए। ठाकुरद्वारे में होने वाली कथा में दूसरे दिन अछूतों के प्रति सहानुभूति रखने वाले युवक भाग नहीं लेते हैं। इस दृश्य का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द यह बतलाते हैं कि धर्म को पहचानने की सही समझ अछूतों में ही है।"[31]

मार्च 1934 में 'काशी में मन्दिर प्रवेश बिल का समर्थन' शीर्षक से प्रेमचन्द लिखते हैं, "वर्णाश्रम स्वराज संघ को यह सुन आश्चर्य होगा कि काशी जैसे सनातनी केन्द्र में भी हरिजन के मन्दिर प्रवेश बिल की विजय हुई है।"[32] उनके विचार से इस परेशानी का समाधान तभी मिल सकता है। जब बड़े लोग उनके साथ मानवता का व्यवहार करें तथा बेगार में काम लेना छोड़ दें। इन शोषक वर्गों ने इनकी दशा इतनी हीन कर दी है कि रात दिन बैलों की तरह जुते रहने पर भी इन्हें पेट भर भोजन नहीं नसीब होता था। अछूतों की भयावह स्थिति का अन्दाजा प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' उपन्यास में अमर द्वारा बुढ़िया की झोपड़ी को देखकर करवाया है। अमर झोपड़ी में गया तो उसका हृदय काँप उठा, मानो दरिद्रता छाती पीट-पीटकर रो रही है और हमारा समाज विलास में मगन है। उसे रहने को बैंगला चाहिए, सवारी को मोटर। इस संसार का विध्वंस क्यों नहीं हो जाता।[33]

'कर्मभूमि उपन्यास में ही प्रेमचन्द नगरों में रहने वाले अस्पृश्यों की दुर्दशा को दिखाते हैं। सुखदा जब नगरों की तंग गलियों को देखती है तब उसे उनकी वास्तविकता और आर्थिक स्थिति का पता चलता है। प्रेमचन्द ने छूत अछूत की संक्रामकता पर गहराई से विचार किया है। प्रेमचन्द यह चाहते हैं कि शिक्षित समाज अपनी संकीर्ण मनोवृत्ति को बदले और समाज की चौमुखी उन्नति में सहायता दे। इसीलिए वे 'कर्मभूमि' में अमरकान्त जैसे पात्र का सृजन करते हैं। एक पहाड़ी गाँव में जाने पर अमर का साक्षात्कार एक बुढ़िया से होता है। उसने अमर से पूछा कि आप किस जाति के हैं। इस प्रश्न पर अमर उत्तर देता है, "मैं जाति-पाँति को नहीं मानता माता जी, जो सच्चा है वह चमार भी है तो आदर जोग है, जो दगाबाज हो, झूठा हो, लम्पट हो, वह ब्राह्मण भी है तो आदर जोग नहीं है।"[34]

इसी उपन्यास में प्रेमचन्द अछूतों की सामाजिक स्थिति का भी वर्णन करते हैं। अमर बालकों से पूछता है, कहाँ पढ़ने जाते हो? बालक ने नीचे का होठ सिकोड़कर कहा- कहाँ जायें, हमें कौन पढ़ायेगा? मदरसे में कोई जाने तो देता नहीं, एक दिन दादा हम लोगों को लेकर गये। पण्डित जी ने नाम लिख लिया पर हमें सबसे अलग

बैठाते थे, सब लड़के हमें 'चमार-चमार' कहकर चिढ़ाते थे। दादा ने नाम कटा लिया।[35] अछूतों की दुर्दशा का एक कारण अशिक्षा भी माना है। उनका मानना है कि जब तक अछूतों में शिक्षा का प्रचार नहीं होता तब तक इनके सामाजिक स्तर को ऊपर नहीं उठाया जा सकता।

इसी प्रकार नैना और सुखदा वर्णभेद के बारे में विचार करती हैं। नैना कहती है, "भगवान ने तो किसी को ऊँचा और किसी को नीचा नहीं बनाया। 'भगवान ने नहीं बनाया तो किसने बनाया', अन्याय ने।"[36] प्रेमचन्द की अछूतों के प्रति सहानुभूति को देखते हुए प्रो. मैनेजर पाण्डेय कहते हैं कि, "हिन्दी नवजागरण के निर्माताओं में प्रेमचन्द, निराला और राहुल सांकृत्यायन ही ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने अपने लेखन और चिन्तन में हिन्दी क्षेत्र की दलित समस्या से टकराने की कोशिश की है। प्रेमचन्द वर्ण-व्यवस्था और जाति-प्रथा के अन्त को भारतीय राष्ट्रीयता की पहली शर्त मानते थे। उन्होंने लिखा भी है कि राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्ण-व्यवस्था, ऊँच-नीच के भेद और धार्मिक पाखण्ड की जड़ खोदना है।"[37] 'कर्मभूमि' में दलितों के जीवन का भयावह चित्रण प्रस्तुत किया है। इन दलितों का आवास नर्क से भी बदतर है, परन्तु सम्पन्न समाज का ध्यान इस ओर कभी नहीं जाता।

प्रेमचन्द का युग हड़तालों का युग था। अत: कर्मभूमि उपन्यास में भी अस्पृश्यों का विद्रोह चित्रित हुआ है। मुरली खटीक विद्रोह के स्वर में कहता है कि, "हम आदमी नहीं है और न ही हमारे बाल-बच्चे है। किसी को महल और बैंगला चाहिए, हमें कच्चा घर भी न मिले। मेरे घर में पाँच जने हैं। उनमें से चार आदमी महीने भर से बीमार हैं। उस काल कोठरी में बीमार न हों तो क्या हों। सामने से गन्दा नाला बहता है। साँस लेते नाक फटती है।"[38] प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास में यह दिखाया है कि म्युनिस्पिल बोर्ड और उसके कर्णधार केवल पूँजीपतियों पर ही ध्यान देते हैं। अत: नगर के निम्न वर्ग के लोगों ने एकजुट होकर इनके विरुद्ध आन्दोलन चलाया। इस आन्दोलन में उच्च वर्ग से सम्बन्धित नारी पात्र सुखदा उनका साथ देती है। वह उन्हें उनके अधिकारों से परिचित करवाते हुए कहती है, "हाकिमों से जो कुछ कहना सुनना था, कह सुन चुके, किसी ने कान न दिया। छ: महीने से यही कहा सुनी हो रही थी। जब अब तक उसका कोई फल न निकला, तो अब क्या निकलेगा। हमने आरजू-मिन्नतों से काम निकालना चाहा था। पर मालूम हुआ, सीधी अँगुली से घी नहीं निकलता। हम जितना दबेंगे, यह बड़े आदमी हमें उतना ही दबायेंगे। आज तुम्हें तय करना है कि तुम अपने हक के लिए लड़ने के लिए तैयार हो या नहीं।"[39]

6. साम्राज्यवाद और सामंतवाद का विरोध

गाँधी जी का जब भारतीय राजनीति में प्रवेश हुआ, उस समय भारतीय जनता अंग्रेजों की गुलामी से त्रस्त थी और गुलामी की बेड़ियों से आजाद होने के लिए छटपटा रही थी। राष्ट्रीय चेतना के इसी उभरते दौर में महात्मा गाँधी का राजनीतिक मंच पर उदय हुआ। जिनकी नैतिक, दार्शनिक प्रतिबद्धता पूरे राष्ट्र के लिए संघटन एवं विद्रोह का आह्वान बन गई। इन्होंने भारतीय जनता के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को एक सर्ववर्गीय राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का रूप दे सके। 'डिस्कवरी आफ इण्डिया' में जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है, "गाँधी जी ताजा हवा के उस प्रबल प्रवाह की तरह थे, जिसने हमारे लिए पूरी तरह फैलना और गहरी साँस लेना सम्भव बनाया। वह रोशनी की उस किरण की तरह थे, जो अन्धकार में पैठ गई और जिसने हमारी आँखों के सामने से परदे को हटा दिया।"[40]

प्रेमचन्द ने इस साम्राज्यवादी और सामन्तवादी युग के तमाम रूपों को अपने साहित्य में प्रतिबिम्बित किया है। गाँधी की भाँति प्रेमचन्द ने भी ईमानदारी और निर्भीकतापूर्वक इस व्यवस्था का विरोध किया। गाँधी जी का यही स्वर 'कर्मभूमि' उपन्यास में दिखाई देता है। 'कर्मभूमि' उपन्यास में भी प्रेमचन्द किसान समस्या को उठाते

हैं और आन्दोलन का चित्रण करते हैं। इस उपन्यास में वे किसानों के दोहरे शोषण का चित्रण करते हुए आत्मानन्द जैसे विद्रोही चरित्र का सृजन करते हैं। इस उपन्यास में सामन्ती व्यवस्था के विरोध के साथ-साथ यह भी दिखाते हैं कि मध्यवर्ग से आए हुए नेता बनने और कहलाने की आकांक्षा से भरे हुए अमरकान्त जैसे लोग कितने लिजलिजे होते हैं। वे आत्मानन्द जैसे ईमानदार, किसान, नेता प्रस्तुत करते हुए आन्दोलन को ठीक दिशा में आगे बढ़ाते हैं। गाँधी जी से पूरी तरह प्रभावित प्रेमचन्द ने जमींदारों के शोषण से मुक्ति के लिए कोई कृत्रिम समाधान नहीं प्रस्तुत किया है। अपितु अपने अधिकांश उपन्यासों में जींदार और पूँजीपति के हृदय-परिवर्तन और आश्रमवादी व्यवस्था को समाधान के रूप में प्रस्तुत किया है। इस सन्दर्भ में प्रेमचन्द कहते हैं, "मैं महात्मा जी के 'चेंज ऑफ हार्ट में विश्वास रखता हूँ। इसलिए जमींदारी मिटेगी यह मानता हूँ। जमीन किसान की होगी।"[41]

'कर्मभूमि' उपन्यास में प्रेमचन्द का दृष्टिकोण शोषित और दलितों की चेतना के अत्यन्त निकट पहुँचता हुआ प्रतीत होता है। 'कर्मभूमि' में एक तरफ किसानों का आन्दोलन छिड़ा हुआ है, तो दूसरी तरफ शहरों में मजदूरों के आवास के लिए आन्दोलन छिड़ा हुआ है, जिसका नेतृत्व अमर की पत्नी सुखदा करती है। यह आन्दोलन समाज के सभी जमींदारों और पूँजीपतियों दोनों के विरुद्ध है। सुखदा कहती है, "मैं इन्हें दिखा दूँगी कि जिन गरीबों को तुम अब तक कुचलते आये हो वही अब साँप बनकर तुम्हारे पैरों में जायेंगे। अब यह लोग उनसे रियायत चाहते थे, अब अपना हक माँगेंगे। रियायत न करने का उन्हें अधिकार है पर हमारे हक से हमें कौन वंचित कर सकता है।"[42]

'रंगभूमि' में अन्याय के विरुद्ध लड़ाई 'कर्मभूमि' में हक की लड़ाई में बदल जाती है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द पूरी तरह से गरीबों तथा दलितों के साथ हैं। वे शोषित वर्ग की विजय तथा शोषण मुक्त विश्व की बात करते हैं, "यह दौलत का जमाना है, अब कौम में अमीर और गरीब, जायदाद वाले और भुखमरे अपनी-अपनी जमाते बनायेंगे उनमें कहीं ज्यादा खैरेजी होगी, कहीं ज्यादा तंगदिली। आखिर एक दो सदी के बाद दुनिया में एक ही सल्तनत हो जायेगी, सबका एक कानून होगा न कोई राजा होगा न परजा।"[43]

निष्कर्ष

अत: हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द जी द्वारा लिखा गया 'कर्मभूमि' अकेला ऐसा उपन्यास है, जो पूरी तरह से गाँधीवाद और स्वाधीनता आन्दोलन पर केन्द्रित है। यह उपन्यास इस आन्दोलन की ताकत और इसमें शामिल लोगों के चरित्र पर तीखा विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने न तो अकारण किसी चरित्र का महिमामण्डित किया है और न ही किसी का चरित्र हनन। प्रेमचन्द हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे। उनकी रचनाओं में हिन्दू-मुलसलमान के विषय में विस्तार से साथ लिखा गया है, इसलिए उनका साहित्य हिन्दू एवं मुसलमान दोनों के बीच समान रूप से लोकप्रिय है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यास कर्मभूमि में जातिगत छुआछूत का भी खुलकर विरोध किया हैं। उनका मत था कि देश की स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक स्वतंत्रता भी जरूरी हैं, जहाँ कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति का जाति या धर्म के आधार पर शोषण न कर सके।

प्रेमचन्द जी के 'कर्मभूमि' उपन्यास में ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी परिचय मिलता है। बचपन से ही ग्रामीण परिवेश से जुड़े होने के कारण प्रेमचन्द गाँवों की संस्कृति, उसकी अच्छाइयों, बुराइयों और समस्याओं को अपने उपन्यासों में जीवन्त रूप दे सके हैं। गाँधी जी को भी भारत की ग्रामीण जनता के प्रति अत्यधिक सहानुभूति थी। सत्य और अहिंसा महात्मा गाँधी के जीवन दर्शन की आधारशिला है। प्रेमचन्द-युग में भारतीय नारी में राजनीतिक चेतना एवं राष्ट्रीय जागृति का संचार हुआ। मानव जीवन में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है।

शिक्षा के द्वारा ही मानव का सर्वांगीण विकास सम्भव है। गाँधी जी ने भारतीय जनता को बताया कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद किसी परोपकारी उद्देश्य से प्रेरित नहीं है, बल्कि वह अपने हित के लिए भारत का औपनिवेशिक शोषण करता है। जिसकी प्रेमचंद जी ने 'कर्मभूमि' उपन्यास के माध्यम से कटु आलोचना की और ब्रिटिश सरकार की नीतियों का पर्दाफाश इस उपन्यास में किया हैं।

सन्दर्भ :

1. सिन्हा, डॉ. इन्द्रमोहन कुमार, प्रेमचंदयुगीन भारतीय समाज, प्रकाशन बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2012, पृ. सं. 120
2. सिंह,आराधना, प्रेमचंद के उपन्यासों में राष्ट्रीय आंदोलन और गाँधीवाद का प्रभाव, शोध-प्रबंध पी-एच.डी., वीर बहादुर सिंह, पूर्वांचल विश्विद्यालय, जौनपुर, डी. ए. वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आजमगढ़, 2006 , पृ. सं. 147,
3. शर्मा, रामविलास, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1967, पृ. सं. 81,
4. युगेश्वर, डॉ., सबके प्रेमचंद, भारतीय साहित्य आस्थान, काशी विद्यापीठ, वाराणसी, 1983, पृ. सं.89,
5. सिंह, आराधना, प्रेमचंद के उपन्यासों में राष्ट्रीय आंदोलन और गाँधीवाद का प्रभाव, शोध-प्रबंध पी-एच.डी, वीर बहादुर सिंह, पूर्वांचल विश्विद्यालय, जौनपुर, डी. ए. वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आजमगढ़, 2006 , पृ. सं. 172, जागरण पत्रिका, फरवरी, 1924,
6. मुंशी, प्रेमचंद, हंस पत्रिका, इलाहाबाद प्रकाशन, मार्च, 1931, सिंह, आराधना, प्रेमचंद के उपन्यासों में राष्ट्रीय आंदोलन और गाँधीवाद का प्रभाव, पृ. सं. 172,
7. मुंशी, प्रेमचंद, इस्लाम का विष वृक्ष, विविध प्रसंग, भाग-2, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद,1962, पृ. सं. 357-363,
8. मुंशी, प्रेमचन्द, स्मृति का पुजारी, मानसरोवर, भाग-4, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. सं. 298
9. देवी, शिवरानी, प्रेमचन्द घर में, प्रकाशन आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1983, पृ. सं. 96
10. मुंशी, प्रेमचंद, कायाकल्प, उपन्यास, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1928; मुंशी, प्रेमचंद, मन्दिर-मस्जिद, कहानी, माधुरी पत्रिका, अप्रैल, 1925,
11. मुंशी, प्रेमचंद, कायाकल्प, उपन्यास, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,1928, कायाकल्प, प्रेमचंद रचनावली, खंड-4, पृ. सं. 131,
12. सिंह, आराधना, प्रेमचंद के उपन्यासों में राष्ट्रीय आंदोलन और गाँधीवाद का प्रभाव, पृ. सं. 183,
13. पूर्वोक्त पृ. सं. 184
14. मुंशी, प्रेमचंद, कर्मभूमि, लोकभारती पेपरबैक्स प्रकाशन, दिल्ली, 1932, पृ. सं. 58
15. पूर्वोक्त पृ. सं. 251-252
16. सिंह, आराधना, प्रेमचंद के उपन्यासों में राष्ट्रीय आंदोलन और गाँधीवाद का प्रभाव, पृ. सं. 187,
17. मुंशी, प्रेमचंद, कर्मभूमि, लोकभारती पेपरबैक्स प्रकाशन, दिल्ली, 1932, पृ. सं. 251-252,
18. सिंह, आराधना, प्रेमचंद के उपन्यासों में राष्ट्रीय आंदोलन और गाँधीवाद का प्रभाव, पृ. सं. 188,
19. मुंशी, प्रेमचंद, रंगभूमि, प्रकाशन गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, 1924-25, पृ. सं. 40,
20. सिंह, आराधना, प्रेमचंद के उपन्यासों में राष्ट्रीय आंदोलन और गाँधीवाद का प्रभाव, पृ. सं. 189, हरिजन समस्या, 2 नवम्बर, 1934,
21. सिंह, आराधना, प्रेमचंद के उपन्यासों में राष्ट्रीय आंदोलन और गाँधीवाद का प्रभाव, पृ. सं. 193,
22. मुंशी, प्रेमचंद, कर्मभूमि, लोकभारती पेपरबैक्स प्रकाशन, दिल्ली, 1932, पृ. सं. 287,

23. पूर्वोक्त, पृ. सं. 224
24. पट्टाभि, सीतारमैया, गाँधी और गाँधीवाद, (प्रथम भाग-एक अध्ययन), शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी (प्रा. लि.) आगरा, 1957, पृ. सं. 120,
25. मुंशी, प्रेमचंद, कर्मभूमि, लोकभारती पेपरबैक्स प्रकाशन, दिल्ली, 1932, पृ. सं. 224
26. पूर्वोक्त, पृ. सं. 142,
27. शर्मा, रामविलास, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, 1967, पृ. सं. 78,
28. मुंशी, प्रेमचंद, कर्मभूमि, लोकभारती पेपरबैक्स प्रकाशन, दिल्ली, 1932, पृ. सं. 229,
29. मुंशी, प्रेमचंद, गोदान, धीरज पांकेट बुक्स प्रकाशक, 1936, पृ. सं.163,
30. डी. आर. निम, आंबेडकर जीवन दर्शन , पृ. सं. 45-46,
31. मुंशी, प्रेमचंद, कर्मभूमि, लोकभारती पेपरबैक्स प्रकाशन, दिल्ली, 1932, पृ. सं. 115,
32. सिंह, आराधना, प्रेमचंद के उपन्यासों में राष्ट्रीय आंदोलन और गाँधीवाद का प्रभाव, पृ. सं. 225,
33. मुंशी, प्रेमचंद, कर्मभूमि, लोकभारती पेपरबैक्स प्रकाशन, दिल्ली, 1932, पृ. सं. 82,
34. पूर्वोक्त पृ. सं. 82,
35. पूर्वोक्त, पृ. सं. 82,
36. पूर्वोक्त, पृ. सं. 171,
37. पांडेय, प्रो. मैनेजर, युद्धरत आम आदमी, दलित अंक, संपादक, रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 189,
38. मुंशी, प्रेमचंद, कर्मभूमि, लोकभारती पेपरबैक्स प्रकाशन, दिल्ली, 1932, पृ. सं. 14,
39. पूर्वोक्त, पृ. सं. 180,
40. महात्मा गांधी और भगत सिंह के बारे में क्या सोचते थे जवाहर लाल नेहरू?",https://www.tv9hindi.com/knowledge/jawahar-lal-nehru-death-anniversary-know-what-nehru-ji-think-about-mahatma-gandhi-and-bhagat-singh-au121-1254663.html
41. सिंह, आराधना, प्रेमचंद के उपन्यासों में राष्ट्रीय आंदोलन और गाँधीवाद का प्रभाव, पृ. सं. 250
42. मुंशी, प्रेमचंद, कर्मभूमि, लोकभारती पेपरबैक्स प्रकाशन, दिल्ली, 1936, पृ. सं. 178,
43. सिंह, आराधना, प्रेमचंद के उपन्यासों में राष्ट्रीय आंदोलन और गाँधीवाद का प्रभाव, पृ. सं. 254

●●●

प्रेमचंद और दलित संवेदना

❍ वीना सुमन[1]

भारतीय समाज की संरचना, उसकी जटिलता तथा उसके जीवनानुभवों को करीब से देखने, जानने और उस पर बार-बार सोचने के लिए प्रेरित करती है। प्रेमचंद की संवेदना निरंतर कुरेदती एंव झकझोरती हुई विकसित हुई है। प्रेमचंद के कथा साहित्य को पढ़कर ऐसा लगता है मानो तत्कालीन संपूर्ण भारतीय समाज से साक्षात्कार कर रहे हो। प्रेमचंद हिन्दी जगत के एक मात्र ऐसे लेखक है जिन्होंने उपनिवेशवाद की असली जड़ को पहचाना। तभी तो उनकी राष्ट्रीयता की पहली शर्त ही थी वर्ण-व्यवस्था, ऊँच-नीच के भेद और धार्मिक पाखण्ड की जड़ खोदना।

डॉ. अंबेडकर का संघर्ष और उनकी विचाधारा दलित विमर्श का मुख्य आधार है। दलित विमर्श की अवधारणाओं के साथ प्रेमचंद की संवेदना को परखना मुश्किल ही नहीं जटिल भी है। प्रेमचंद की संवेदना को तत्कालीन संदर्भो से जोड़कर ही देखा जा सकता है क्योंकि तब साहित्य में दलित विमर्श का यह स्वरूप नहीं था जो आज है। हालांकि उस वक्त संघर्षशील दलित नेतृत्व दलित समस्या को राजनीतिक एजेंडे का विषय बनाने में सफल हो गया था। जो आज दलित विमर्श के रूप में सार्थक दस्तक दे रहा हैं।

प्रेमचंद उस दौर के रचनाकार है जब डॉ. अंबेडकर दलितों के राष्ट्रीय नेता के रूप मे संघर्षरत थे तथा महात्मा गँधी भी राष्ट्रीय स्तर पर दलितोद्धार के किए सुधारवादी आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे। प्रेमचंद के कथा साहित्य का पर्यवेक्षण करने से ऐसा लगता है कि महात्मा गाँधी के सुधारवादी दृष्ट्रिकोण से प्रेमचंद ज्यादा प्रभावित थे। दलितों के पृथक निर्वाचन के विरोध में गाँधी आमरण अनशन पर बैठे थे, तब पूरे हालात से व्यथित प्रेमचंद लिखते है "अब हमारा क्या कर्तव्य है? यों ही भाग्य को रोकर अपने कुदिन को कोसकर बैठे रहेंगे? कदापि नही। महात्मा गांधी के इस वज्रनिर्घोष ने सारे देश में तहलका डाल दिया है। घर-घर में यही चर्चा है। समस्त देश एक स्वर से कह रहा है- हम राष्ट्र की इस आशा को, यों बलिवेदी पर न चढ़ने देंगे। हम अपने

---

1. *सहायक आचार्य, हिन्दी, आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, (काषी हिन्दू वि.वि.), चेतगंज, वाराणसी, यू.पी.; मो. : 9455644800*

उन अछूत भाइयों को जो हमसे रूठ गए हैं, मनाऐगे, उनके चरणों पर गिरकर मनाऐगे। हमे विश्वास है डॉ. अंबडेकर और मि. श्री निवासन भी राष्ट्र की इस याचना को अस्वीकार न करेंगे। हमारी नौका को भंवर से निकालकर पार ले जाने वाला अकेला गाँधी है। उसी में वह सामर्थ्य है, कि वह देवत्व है, वह ऐश्वर्य है। हमें विश्वास है कि वह ईश्वर के दरबार से हमारे उद्धार का बीड़ा लेकर आया है, हम उस दिन का इंतजार कर रहे हैं, जब वह स्वाधीनता का वरदान लाकर जीर्ण और निराश माता को भेट करेगा। क्या सामर्थ्यवान गाँधी भी विधि की इस गति को टाल सकता है? नही, नही, नहीं।।"[1]

महात्मा गाँधी के प्रति प्रेमचंद का यह अटूट लगाव अछूतोद्धार संबंधी दोनों की सोच की साम्यता को दर्शाता है। जब दलित विमर्श आज भी पूना-पैक्ट को सही नहीं मानता। यह सत्य है कि प्रेमचंद की दृष्टि दलित समस्या के संदर्भ में डॉ. अंबेडकर या दलित विमर्श की दृष्टि से मेल नहीं खाती, फिर भी प्रेमचंद और उनका कथा साहित्य दलित विमर्श के सवालों से बच नहीं सकता। प्रेमचंद साहित्य और विचार की जीवंतता इसी में है कि वह दलित विमर्श के सवालों से मुखमुख्य करे। लेकिन विडम्बना यह है कि प्रेमचंद को विरासत की तरह संवार-संजोकर रखने वाले आलोचक-लेखक अपनी निजी राय से इतर बहस करने को तैयार नहीं है। उन्हें लगता है कि दलित आलोचना दृष्टि प्रेमचंद को जैसे निगल जाएगी। यही सोच यदि लंबे समय तक बनी रही तो निश्चित तौर पर प्रेमचंद की अमरता क्षरित होगी तथा उनके साहित्य की जीवतंता भी घटेगी। सदियों बाद दलित अपनी जुबान से कुछ कहना शुरू किया है, उनकी अनुभूति और वेदना नए सवाल रख रही है। इन सवालों से गुजरे बिना प्रेमचंद साहित्य की चिंता अधूरी रहेगी।

प्रेमचंद के कथा साहित्य को उनकी संवेदना को किस प्रकार परखा जाए इस गंभीर प्रश्न से गुजरते हुए ही आगे बढ़ा जा सकता है। वैसे उचित यह होता कि दलित विमर्श के सवालों को यथावत प्रस्तुत किया जाए। उसके बाद ही किसी निर्णायक बिंदु पर पहुँचा जा सकता है। प्रेमचंद की कथा संवेदना पर जो आक्षेप लगाए गए हैं तथा जिन सवालों से प्रेमचंद को घेरने की कोशिश की गई है, उनका भी पर्यवेक्षण अपेक्षित है।

दलित विमर्श की जो अवधारणा है या दलित विमर्श की जो कसौटी है उस आधार पर साहित्य की परख उनका अपना स्वतंत्र अधिकार है। सदियों दर सदियों तक छला गया दलित आज अपने नेतृत्व में, अपने विमर्श में कदम-कदम पर चौकन्ना है। क्योंकि यह दिलचस्प और गौरतलब है कि दलित विमर्श के उभार के बाद गैर दलित चिंतन इतने समृद्ध हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता की उपस्थिति न होने के कारणों को ढूंढने के बजाए वह प्रेमचंद और गाँधीवाद में ही अटका हुआ था। इसलिए दलित विमर्श का रुख और आक्रोश दोनों ही आक्रामक है। पूरा का गैर दलित विमर्श इस तर्क पर ठहर गया है कि गैर दलित (सवर्ण) दलित साहित्य नहीं लिख सकता और यदि लिखेगा भी तो वह सहानुभूति पूरक होगा। जबकि होना यह चाहिए कि दलित जीवन पर पिछले एक-डेढ़ दशक में गैर दलितों की ढेरों रचनाएं आनी चाहिए थी। खैर ऐसी संभवानाए अभी भी अपेक्षित है।

दलित विमर्श का दो टूक जबाब है कि प्रेमचंद डॉ. अंबेडकर के बरक्स गाँधी के विचारों के हिमायती थे, इसीलिए ये दलित विरोधी हैं या उनकी रचनाएं वर्ण-व्यवस्था की पक्षधर हैं। ओम प्रकाश वाल्मीकि का विचार है कि "दलित समस्याओं पर गाँधी जी का दृष्टिकोण पूर्णरूप से धार्मिक और राजनीतिक था जिसे साहित्य में प्रेमचंद अपनी पूरी निष्ठा से प्रस्थापित करते हैं और डॉ. अंबेडकर आंदोलन को शंकालु दृष्टि से देखते हैं। दलितों के दृष्टिकोण को वे अनदेखा करते है।"[2]

प्रेमचंद के लिए साहित्य-रचना विकास नहीं था, विवशता थी, भीतर की कुरेदन उन्हें अभिव्यक्ति के लिए

मजबूर करती थी वे कहते हैं, "लेखक जो कुछ लिखता है, अपनी कुरेदन से लिखता है और मेरे अंदर जितनी कुरेदन-तड़पन पैदा होगी, उतना ही अच्छा है।"[3]

प्रेमचंद की संवेदना पर संदेह करने से पूर्व इस बात का ध्यान होना चाहिए कि प्रेमचंद जैसे महान लेखक के लिए थीम की कोई कमी नहीं थी भारतीय जनमानस में दलित जीवन के कथानक और कथावस्तु को अपनी रचनाशीलता का आधार बनाने के पीछे उनका मंतव्य यह कदापि नहीं रहा होगा कि वे दलितों के मसीहा बनने जा रहे हैं या कोई राजनीतिक लाभ के इच्छुक हैं। सच तो यह है कि साहित्य के गर्भ मे दलित पीड़ा को अपने ढंग से अपनी दृष्टि से पिरो रहे थे। हालांकि उनके समक्ष विकल्प था कि वे अंबेडकर को भी उनकी विचारधारा को भी समर्थन दे सकते थे। लेकिन वे ऐसा नहीं कर सके। यहाँ दो बातें प्रमुख हैं: पहला यह कि प्रेमचंद संवेदनशील होते हुए भी डॉ. अंबेडकर और दलित यातना की अनुभूति जो भोक्ता अनुभूति थी, से कभी वास्ता नहीं पड़ा होगा; दूसरा यह कि प्रेमचंद पूरे परिप्रेक्ष्य को उपनिवेश से मुक्ति के रूप में देख रहे थे। जबकि डॉ. अंबेडकर और दलितों के लिए सदियों की गुलामी से मुक्ति जरूरी थी। इन्हें लगता था और इतिहास गवाह है कि कोई जरूरी नहीं था कि अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति के बाद भी दलित वर्चस्ववादी संस्कृति से मुक्त हो पाएंगे। इसलिए दलित नेतृत्व के लिए दलित मुक्ति जरूरी थी, क्योंकि दलितों पर शासन करने वाला जब खुद गुलाम हुआ तो दलितों को अपना संघर्ष तेज करने का मौका मिला।

अब दलित विमर्श के सवालों पर व्यापक दृष्टि डाली जाए और देखा जाए कि प्रेमचंद की संवेदना इन सवालों से किस प्रकार मुखामुखम करती है। ओम प्रकाश वाल्मीकि का नागपुर में दिया गया अध्यक्षीय वक्तव्य में प्रेमचंद की संवेदना पर पहली बार उंगली उठाया गया था जिसमे प्रेमचंद को रचनात्मक या जीवन के अतिंम पड़ाव पर आते आते गाँधीवादी आदर्शों, सामंती मूल्यों और वर्ण-व्यवस्था के पक्षधर के रूप में देखा गया था। मूल संदर्भ, 'कफन' कहानी को लेकर था। फिर एक लंबी बहस का सिलासिला चला। इस वक्तव्य ने साहित्य जगत को उत्तेजित कर दिया था।

बकायदा पक्ष-विपक्ष के बचाव और नकार की स्थिति बनती गई। 9 दिसम्बर 1994 को हिन्दी दैनिक नवभारत टाइम्स दिल्ली संस्करण में पत्रकार राजकिशोर ने "घीसू माधव और दलित आक्रोश" शीर्षक से बड़ा लेख लिखा। वे लिखते है- "प्रेमचंद का बड़ा से बड़ा प्रशंसक भी वाल्मीकि के दर्द की उपेक्षा नहीं कर सकता। बल्कि प्रेमचंद की संवेदना का अर्थ ही यह है कि इस दर्द को समझा जाए और अपना बनाया जाए। यह दर्द कुछ हद तक प्रामाणिक है। इस युवा कथाकार का दर्द यह है कि 'कफन' कहानी दलितों का बहुत ही नकारात्मक चित्र पेश करती है। कफन के नायक घीसू और माधव मानवता के सामान्य स्तर से भी गिरे हुए पेश किए गए है। उनमे कौन सा दुगुर्ण नही है? अव्वल तो वे कामचोर थे।"[4]

दलितों के इस नकारात्मक चित्र की ओर डॉ. तुलसी राम और मस्तराम कपूर ने भी ध्यान आकृष्ट कराया है। राजकिशोर को भूलना नहीं चाहिए कि प्रेमचंद दलित लेखक नहीं थे। सवर्ण थे, किन्तु दलितों से उनका प्रेम भी असंदिग्ध है। उस दौर मे एक सवर्ण लेखक जाति व्यवस्था और समाज-व्यवस्था की क्रूरता का जितना विरोध कर सकता था, प्रेमचंद ने किया। कफन की एकाध चीजों को लेकर इसे दलित विरोधी कहानी करार देना एक व्यर्थ का कलह पैदा करना है। इस कर्कशता से उस उदार सवर्ण परम्परा का अपमान होता है जो दलित जागरण के पहले से जाति-व्यवस्था और अस्पृश्यता की नृशंसता से संघर्ष कर रही है। हमारे दलित भाई ठंडे दिल से सोचेंगे, तो वे गाँधी को इस परंपरा का अतिंम शिखर पुरुष पाएंगे। दलितों का संघर्ष ही उन्हें मुक्ति दिलाएगा, किन्तु उदार तथा संवेदनशील सवर्णों को नाराज करते रहने से यह संघर्ष क्या कुछ और कठिन नही

हो जाएगा? अन्याय के खिलाफ गुस्सा अच्छी चीज है, लेकिन प्रेम की तरह गुस्से का भी दुरुपयोंग नही होना चाहिए।"[5]

लगभग सभी उदार गैर दलित चिंतकों का भी यही मंतव्य होगा जो राजकिशोर जी का मंतव्य है। लेकिन दलित विमर्श बार-बार यह सवाल करता है कि उदारवादी वर्ण-व्यवस्था पर चोट क्यों नहीं करते ? अस्पृश्यता निवारण से जाति-भेद नहीं मिटने वाला। यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित जैसा ही है। हर कोई अपनी जाति से चिपका हुआ है।

दलित विमर्श का प्रत्येक सवाल दलित पात्रों का चरित्राकंन डॉ. अंबेडकर के संघर्षों के प्रति सोच और वर्ण-व्यवस्था पर दृष्टि पर केंद्रित है। यही केंद्रीय सवाल नैमिशराय, कंवल भारती और डॉ. बेचैन के यहाँ भी मिलते हैं। लेकिन राजेन्द्र यादव ने हिन्दी साहित्य के इतिहास के 100 वर्ष के कालखंड को जिस तरह से रेंखाकित किया है उससे संपूर्ण हिंदी क्षेत्र की पोल खुलती है। जिससे दलित विमर्श का मंतव्य और पुष्ट होता है।

दलित विमर्श के जो सवाल उभर कर आए हैं वे कोई एक दो दिन के सवाल नहीं है। इस पृष्ठभूमि के पीछे व्यापक आन्दोलन है और इस आन्दोलन की वजह भारतीय समाज की नकारात्मकता रही है जो लम्बे समय से वर्ण-व्यवस्था और जाति भेद पुर कोई दूरगामी सकारात्मक सोच विकसित नहीं कर पाया है।

सरस्वती पत्रिका के सयुंक्त संपादक श्रीनाथ सिंह 1933 में छपी 'सद्गति' कहानी को पढ़कर तिलमिलाए हुए थे और इसी तिलमिलाहट में दिसम्बर 1933 के अंक मे 'प्रेमचंद घृणा के प्रचारक' शीर्षक से लेख लिखा और इसी प्रकार पं. निर्मल ने 10 जनवरी 1934 के 'भारत' पत्र मे प्रेमचंद पर सीधा वार करते हुए आरोप लगाया कि प्रेमचंद के दिल में जाति भेद का अंधकार छाया हुआ है, और केवल मुंह से राष्ट्र का गुल मचाते हैं। इसका करारा जबाब प्रेमचंद ने 'जागरण' अंक में दिया। प्रेमचंद ने श्रीनाथ सिंह के लेख का उत्तर उसी महीने हंस में दिया, जिसका शीर्षक था 'जीवन और साहित्य में घृणा का स्थान' प्रेमचंद ने जीवन और साहित्य में घृणा की महत्ता की स्थापना की और लिखा कि "घृणा ही हमें पाखंड और धूर्तता से रोकती है। घृणा का ही उग्र रूप भय है और परिष्कृत रूप विवेक। परंतु हम व्यक्तियों से घृणा न करके उनके बुरे आचरण से घृणा करें।..... वास्तव में साहित्य का इतिहास 'कु' और 'सु' के संग्राम का इतिहास है। प्राचीन साहित्य ने ईश्वर एंव धर्म के द्रोहियों के प्रति घृणा उत्पन्न की और नवीन साहित्य समाज का खून चूसने वालों, रंगे सियारों, हथकंडे बाजों के प्रति घृणा और दीन दलित अन्याय-पीडित समाज के प्रति सहानुभुति उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रहा है।"[6]

इसलिए दलित साहित्य नकार का साहित्य है, जिसे सदियों से नकारा जाता रहा है वह आज पूरी व्यवस्था को नकार रहा है। इसलिए प्रेमचंद के प्रति भी यही दृष्टिकोण है। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि दलित विमर्श के अधिकांश चिंतक प्रेमंचद की आलोचना करते हुए भी उन्हें अपना प्रेरणास्रोत मानते हैं और उनकी दलित चिंता की प्रशंसा भी करते हैं। साथ ही प्रसंगवश उनकी दलित चेतना को रेखांकित भी करते हैं।

कोशिश यह होनी चाहिए कि दलित विमर्श के समक्ष बचाव या प्रतिरोध के बजाए विकल्प प्रस्तुत किया जाए। यदि दलित विमर्श का यह कहना है कि गैर दलित, दलित साहित्य लिख ही नहीं सकता तो उसे चुनौती स्वीकार करनी चाहिए और दलित चेतना की कहानी लिखनी चाहिए। वर्ण-व्यवस्था हिंदू व्यवस्था की अन्य कुरीतियों पर निरंतर लिखना चाहिए। यह साहस प्रेमचंद ने उस दौर में दिखाई थी। जब इस विषय पर लिखना और बोलना कितना दुष्कर था। तभी तो प्रेमचंद को घृणा के प्रचारक के रूप में तमाम प्रतिवाद झेलने पड़े थे। ठाकुर श्रीनाथ सिंह और पं. ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' जैसे लोगों को करारा जबाब दिया था।

अनेक प्रत्यारोपों को झेलते हुए प्रेमंचद के मंतव्यों में कोई कमी नहीं आई बल्कि गोदान तक आते-आते वे अपने लक्ष्य को भेदते हुए दिखाई देते हैं। 'गोदान' में सिलिया-मातादीन प्रकरण इसका ज्वलंत प्रमाण है। यह चित्रांकन प्रेमचंद को गाँधीवादी विचारधारा से दूर ले जाता है। इससे लगता है प्रेमचंद का साहित्यिक कर्म किसी वाद में बंधकर नहीं चलता। सामाजिक बदलाव के विभिन्न प्रयोग करते हुए चलते हैं। प्रेमचंद की अंतिम दौर की रचनाएं साबित करती हैं कि वे भले ही डॉ. अंबेडकर के विचारों से सहमत न हो लेकिन दलित नेतृत्व का संघर्ष कथा साहित्य में देखने को मिलता है- 'मंदिर' कहानी और 'गोदान' में सिलिया प्रकरण इसको पुष्ट करता है।

प्रेमंचद की संवेदना सामाजिक सुधार और सामाजिक न्याय की ओर ज्यादा उन्मुख है। तत्कालीन परिस्थिति में प्रेमचंद अकेले ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने साहित्य में इस स्थिति को आप भी जिंदा रखा है। परिर्वतन की कई राहे हो सकती है, विकल्प खुले होने चाहिए। इसी से आन्दोलन और संघर्ष की गति तेज होगी, जिससे मूक्ति की कई राहे ढूंढ पायेंगे।

साहित्य को परखने के भिन्न-भिन्न मानदंड हो सकते है। मुक्तिबोध का विचार है, "किसी भी साहित्य को तीन प्रकार से देखा जाना चाहिए। एक तो वह किन स्रोतों से उद्‌गत होता है। अर्थात् किन वास्तविकताओं के परिणामस्वरूप वह साहित्य उत्पन्न हुआ है। दूसरे उसका फलात्मक प्रभाव क्या है, और तीसरे उसकी अन्तः प्रकृति-रूप रचना कैसी है। इस तीसरे प्रश्न को बिना पहले प्रश्न से मिलाये, हम दूसरे सवाल का जवाब ही नहीं दे सकते।

अड़चन तो यह है जिन-जिन जीवन-पक्षों की वास्तविकता से साहित्य उत्पन्न होता है उनका वास्तविक चित्रण कलाकार कर ही रहा हो, यह निश्चित नही होता। यथार्थ के प्रति बहुत बार न केवल अयथार्थ दृष्टिकोण दिखायी देता है, वरन् यथार्थ को उपस्थित करने का तरीका काल्पनिक तथा फैण्टैसी-प्रधान भी हो सकता है। इसका फल यह होता है कि यथार्थ अपनी विकटावस्था में उपस्थित होता है- इतना कि बहुत बार उसे पहचानना भी मुश्किल हो जाता है। उस पर वृथा दार्शनिकता अति-मनोवैज्ञानिकता, अस्पष्ट प्रतीक विचार तथा अर्थहीन भावुकता के आवरण पर आवरण चढ़ाये जाते है। लेखक उन साहित्य-तत्वों को जनता से बहुत दूर ले जाता है।

अपनी विश्व दृष्टि, जीवन-मूल्य तथा परम्परागत विचार तथा अभिरूचि आदि के कारण यथार्थ को उसके परस्पर-सम्बन्धों में ग्रहण करने की क्षमता भी लेखक में घटती या बढ़ती रहती है। इसलिए आलोचक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह स्वंय उस यथार्थ को लेखक से भी ज्यादा समझे। और उस यथार्थ के सम्बन्ध में लेखक जो कुछ कहता है उसे प्रामाणिक न मान ले। आलोचक के लिए-लेखक का व्यक्तित्व, यथार्थ प्रस्तुत करने की उसकी पद्धति तथा उसके तत्सम्बन्धित भाव-विचार और अन्ततः यह यथार्थ जिसको प्रस्तुत किया गया है- उन सबका वैज्ञानिक चित्र उपास्थित करते हुए यह देखना जरूरी हो जाता है कि उसके साहित्य के मूल स्रोत क्या है? उसकी क्षमताओं का मूल उद्‌गम क्या है तथा उसकी सीमाएँ किन मूल करणों से निष्फल हुई है।"[7]

सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री पी.सी. जोशी के अनुसार प्रेमचंद के महत्व योगदान को इस कथन द्वारा समझा जा सकता है कि भारतीय साहित्य के इतिहास मे प्रेमचंद की वही भूमिका रही है जो भारतीय राजनीति के इतिहास में मोहनदास करमचन्द्र गाँधी की। यदि भारतीय ग्राम और भारतीय किसान की खोज द्धारा गाँधी ने भारत की राजनीति को एक ऐतिहासिक मोड दिया तो प्रेमचंद ने भारतीय ग्राम और भारतीय किसान को साहित्य में

प्रतिष्ठित कर भारतीय साहित्य को एक ऐतिहासिक मोड़ दिया। इसलिए प्रेमचंद की उस गहरी अनुभूति और ऐतिहासिक संवेदना को जानना जरुरी हो जाता है जो प्रेमचंद ने ग्राम और किसान-समस्या का विषय वस्तु के रूप में स्वीकार करने के निर्णय द्वारा प्रगट होती है। यहाँ भी प्रेमंचद में उसी समक्ष के संवेदना की गहराई का परिचय मिलता है, जो राजनीति के क्षेत्र में गाँधी में पायी जाती है। प्रेमचंद की यह भी विशेषता है कि गाँधी के विचार-दर्शन और रूझान से यथार्थवादी और ग्राम किसानोन्मुख साहित्य सृजन की प्रेरणा लेकर प्रेमचंद गाँधीवाद के दास नहीं बने रहे और जैसे ही गाँधीवाद की दार्शनिक सीमाएँ यथार्थ के सभी अन्तविरोधों को समझने और उन्हे कलात्मक रूप से चित्रित करने में बाधक बनने लगी, वैसे ही उनकी संवेदना गाँधीवादी दर्शन के घेरे से निकलकर यथार्थ के उन रूपों को श्री प्रकाश में लाने से नहीं कतराई जिनके प्रति गाँधीवाद आँखे मूंदे हुए था या जो गाँधीवाद के युग की विषमताओं और अन्तर्विरोधो के रूप में प्रकट हुई।"[8]

प्रेमचंद के उपन्यास और उनकी कहानियों का महत्व केवल औपनिवेशिक और अर्द्ध-सामन्ती हिदुस्तानी के सामाजिक यथार्थ को प्रतिबिम्बित भर कर देने पर ही नहीं टिका हुआ है, बल्कि यह महत्व प्रेमचंद के उपन्यासों के क्रान्तिकारी चरित्र के कारण है, जिसे उन्होंने आलोचनात्मक यथार्थवादी के परिपक्व दौर से गुजकर अपनी साहित्य रचनाओं मे हासिल किया था। इसी महत्व के कारण उन्हें हिन्दुस्तान में सामाजिक आलोचना के रूप में कथा और उपन्यास-साहित्य के जन्मदाता का दर्जा मिला है। औपनिवेशिक और अर्द्ध सामन्ती समाज व्यवस्था के प्रति उपन्यास के माध्यम से उभरने वाली प्रेमचंद की प्रखर आलोचना दृष्टि ने ही उन्हें सिर्फ हिन्दी साहित्य का ही नहीं बल्कि समूचे भारतीय साहित्य का, और साहित्य का ही नहीं बल्कि भारतीय इतिहास का एक युगनिर्माता व्यक्तित्व बनाया।

यह आश्चर्य की बात नहीं है कि तत्कालीन देशभक्ति और क्रान्तिकारी संघर्षकारियों मे प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों के द्वारा अर्द्ध-सामन्ती और औपनिवेशिक समाज-व्यवस्था के विरुद्ध आलोचनात्मक जागरूकता प्राप्त की। सम्भवत: यहीं पर उपन्यास एक ऐसे कला रूप की तरह भी विकसित हुआ जो केवल सामाजिक यथार्थ को व्यक्त ही नहीं करता और मानवीय संवेदना के उद्‌बुद्ध ही नहीं करता, बल्कि आगे बढ़कर उस सामाजिक यथार्थ को रूपान्तरित करने की चेतना भी जागृत करता है।

उपन्यास का यह रूपान्तरण लेखक के अपने दार्शनिक दृष्टिकोण और उसकी साहित्यिक संवेदनशीलता और ईमानदारी के बीच एक रचनात्मक तनाव को जन्म देता है। कर्मभूमि और प्रेमाश्रय जैसी प्रेमचंद की प्रारम्भिक रचनाओं में जिस गाँधीवाद ने सामाजिक यर्थाथ के प्रति उनकी अर्न्तदृष्टि को प्रभावित किया था, कालान्तर में उन गाँधीवादी सीमाओं से उनकी सामाजिक अवबोध की शक्तियों की सम्पूर्ण मुक्ति दिखाई देती है। कर्मभूमि और प्रेमाश्रय ये उपन्यास प्रेमचंद के उस समझौते का प्रतिनिधित्व करते है जो एक तरफ उनके गॉधीवादी दृष्टिकोण और दूसरी तरफ उनकी साहित्यिक संवेदनशीलता की मांग के बीच हुआ है। इन उपन्यासों में केन्द्रीय पात्र शोषित, पीड़ित, त्रस्त किसान नहीं, बल्कि सुधरा हुआ भूस्वामी है जो उस समय के व्याकुल किसान-समाज की अगुवाई किसानों के ट्रस्टी जमींदार के रुप में करता है। लेकिन गोदान मे प्रेमचंद मे गाँधीवादी दृष्टिकोण की सीमाओं से मुक्त एक तीव्र और खुली हुई संवेदना को अर्जित किया। गोदान का नायक होरी एक श्रमिक किसान है जिसका त्रासद अन्त अर्द्ध सामन्ती व्यवस्था के किसी सुधार के स्वप्न और मोहभ्रम को चूर-चूर कर देता है। होरी की सम्पूर्ण निराशा व्यवस्था के किसी भी आंशिक सुधार के माध्यम से किसान की मुक्ति की व्यर्थता को प्रमाणित करती है। वह व्यवस्था के आमूल परिवर्तन की ओर इंगित करती है।

प्रेमचंद समय-समय पर टिड्डियों की तरह गाँव पर आक्रमण करने वाले अनुपस्थित जमींदार, व्यापारी वकील और सरकारी अफसरों पर गाँव की बाहरी शत्रु के रूप में अपना ध्यान केन्द्रित कर सन्तुष्ट नहीं होते। गोदान

में प्रेमचंद अन्दर के शत्रुओं ग्राम पंचायत बिरादरी और अमीर किसानों के लिए काम करने वाले पुरोहित, गाँव के सूदखोर भू-स्वामियों द्वारा नियुक्त प्रत्येक गाँव के कारिन्दे और सरकारी कर्मचारियों को भी केन्द्र में रखते हैं। इसके अलावा प्रेमचंद किसान के भाग्यवाद, उसके आत्मसमर्पण और समझौते के प्रति उसके रुझान तथा दमनकारियों के साथ उसके सुलाह करने के रवैये को भी मंच के केन्द्र में रखते हैं।

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप इंग्लिस्तान के गरीब किसान की नियति पर टिप्पणी करते हुए एरिक हॉब्सबॉम ने अपनी पुस्तक 'द एज ऑव रिवोल्यूशन' (1473) मे लिखा है- "इसी तरह पूँजीवादी समाज के दायरे में और अधिक देर तक शरण पाने मे असमर्थ, गरीब तबके के सामने तीन ही सम्भावनाएँ बची थी। या तो वे खुद बुर्जुआ बनने का प्रयत्न करे, या अपने आप को धीर-धीरे परास्त हो जाने दे या कि वे विद्रोह का मार्ग अपनाए।"[5]

प्रेमचंद अपनी दलित जीवन सम्बन्धी कहानियों में दलित जीवन की त्रासद स्थितियों का चित्रण मात्र नहीं करते बल्कि कहीं बहुत गहरे स्थितियों को बदलने के लिए संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार करते है। मुक्तिपथ की तलाश करते हैं। प्रेमचंद कभी भी जीवन के मूक तथा तटस्थ चित्रण करता मात्र नहीं रहे और न ही वे सामाजिक बदलाव के लिए सस्ती नारेबाजी तथा नकली एंव आरोपित क्रान्तिकारिता को स्वीकार करते हैं, अपितु उनकी कहानियों तथा उपन्यास जीवन स्थितियों के कलात्मक चित्रण द्वारा पाठक को भीतर से परिवर्तन की आवश्यकता का एहसास कराती है और उसकी सम्वेदना को समस्या की मुक्ति की दिशा में सक्रिय करती है। दलित लेखकों का आरोप रहा है कि प्रेमचंद ने संघर्षरत दलित नायकों के स्थान पर स्थितियों के गुलाम पात्रों को सुणित किया है। यह सच नहीं है। प्रेमचंद अपनी रचनाओं मे परिवर्तन की चेतना को स्थान देते हैं लेकिन यह चेतना रचना के भीतर से आती है। बाहर से आरोपित नहीं की जाती है। प्रेमचंद स्थितियों के चित्रण तथा सम्वेदनात्मक जीवन सन्दर्भो के विम्बात्मक विनियोग द्वारा परिवर्तन तथा संघर्ष की चेतना को इस प्रकार से वाणी देते हैं जो कहानी को अपनी अन्तिम निष्कर्षो में मुक्तिकामी बनाती है। त्रासद स्थितियाँ दु:ख तथा पराजय पाठक को निराश नहीं करते बल्कि उसे एक नये संघर्ष के लिए प्रेरित करते है। 'सद्गति' कहानी पर टिप्पणी करते हुए नामवर सिंह ने संकेत किया है कि दु:खी लकड़ी की गाँठ नहीं जाति व्यवस्था की गाँठ फाड़ रहा होता है जो उससे नहीं फटती। लेकिन कहानी दु:खी की मृत्यु पर खत्म नहीं होती है। पूरे कुनबे द्वारा लाश न उठाने और वर्ण-व्यवस्था की अमानवीयता से ग्रस्त पंडित द्वारा को सद्गति करने पर खत्म होती है।

प्रेमचंद अपनी कहानियों में दलित संघर्ष को चित्रित नहीं करते यह सच है। यह भी सच है कि इस तरह दलित संघर्ष मुख्यत: हिन्दी प्रदेश में उस वक्त मौजूद नहीं था। लेकिन उनकी कहानियाँ दलित मुक्ति के रास्ते की तलाश के लिए पाठक को बेचैन तथा व्याकुल करती है। यह भी सच है कि दु:ख की वह नयी जमीन जो वर्ण-व्यवस्था से प्रकट होती है। प्रेमचंद की कहानियाँ उसे सामने लाती हैं। जो समाज-परिवर्तन के एहसास को गहरा बनाती है।

संदर्भ :

1. प्रेमचंद-विविध प्रसंग, पृ. 440
2. ओम प्रकाश बाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ. 67
3. उद्धृत राजेश्वर गुरु (संपादक) गोदान, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृ. 11
4. राजकिशोर, नवभारत टाइम्स (पत्र) दिल्ली, 9 दिसम्बर 1994, संपादकीय पृष्ठ
5. राजकिशोर नवभारत टाइम्स (पत्र) दिल्ली, 9 दिसम्बर 1994, संपादकीय पृ. 6

6. प्रेमचन्द, विश्वकोश, कमल किशोर गोयनका, भाग-1, पृ. 165
7. मुक्तिबोध रचनावली, भाग-4, पृ. 229
8. पी.सी. जोशी, प्रेमचंद की अमतरा के मूल स्रोत, पृ. 172-173
9. उद्धृत-पी.सी. जोशी, पृ. 199

●●●

प्रेमचंद के उपन्यासों में मुस्लिम स्त्री का जीवन

❍ प्रियंका मौर्य[1]

भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री पर बात करते हुए हिन्दू स्त्रियों की दशा और दिशा पर ही बात होती है, मुस्लिम स्त्रियों का जीवन उस विमर्श से छूट जाता है, जबकि भारतीय स्त्री समाज में एक हिस्सा मुस्लिम स्त्रियों का भी है। इस समाज में रहते हुए भी वे समाज से अलग-थलग दिखाई देती हैं। मुस्लिम स्त्रियों का जीवन समाज के लिए एक रहस्य के समान है। बुर्के के रूप में पड़ा हुआ पर्दा उनके पूरे जीवन पर पर्दा डाले हुए है। उनके जीवन के सुख-दुख बाकी समाज की दृष्टि से ओझल हैं। पूरे नवजागरण में हिन्दू स्त्रियों के जीवन की समस्याओं को ही सामने रखकर बात हुई है, मुस्लिम स्त्री के जीवन की समस्याएँ नवजागरण का विषय नहीं बन सकी हैं। इसमें कोई शक नहीं कि मुस्लिम स्त्रियों की समस्याएँ हिन्दू स्त्रियों से भिन्न हैं। धर्म से लेकर समाज तक ने उन पर जो पाबन्दियाँ लगा रखी हैं, वह हिन्दू स्त्रियों से अलग हैं। पितृसत्तात्मकता का बोलबाला उनके यहाँ ज्यादा है। बहु-विवाह और अधिक सन्तान उत्पन्न करने की पीड़ा स्त्रियों के ही हिस्से आती है। अधिक सन्तान होने के कारण अशिक्षा और गरीबी का दंश मुसलमान स्त्रियों को अधिक झेलना पड़ता है। पूरे नवजागरण में स्त्री शिक्षा की बात की गयी है, किन्तु उसमें मुस्लिम स्त्री की शिक्षा के पक्ष में न तो आन्दोलन मिलता है, न विचार।

मुस्लिम स्त्रियों का जीवन भले ही नवजागरण का विषय न बन सका हो, कथाकारों ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में मुस्लिम स्त्रियों को जगह दी है, भले ही यह थोड़ी ही है। प्रेमचन्द के कथा साहित्य में समाज का सम्पूर्णता में चित्रण हुआ है। समाज का कोई भी पक्ष उनकी दृष्टि से ओझल नहीं है। उनके उपन्यासों में मुस्लिम स्त्रियों को जगह मिली है। वे इसी समाज का हिस्सा हैं। प्रेमचन्द के दो महत्वपूर्ण उपन्यास हैं, जिनमें मुस्लिम स्त्रियों को जगह मिली है। वे उपन्यास हैं-रंगभूमि और कर्मभूमि।

रंगभूमि में कुल चार मुस्लिम स्त्रियाँ हैं- जैनब, रकिया, कुल्सूम, नसीमा। यह चारों पात्र एक ही परिवार की हैं। जॉन सेवक के चमड़े के गोदाम का मुंशी ताहिर अली एक दरोगा का पुत्र है। पिता की मृत्यु के बाद पूरे परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी उसके उपर आ जाती है। उसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। 30 रूपये महीने की आमदनी उसके परिवार के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त नहीं है। जैनब और रकिया ताहिर अली

1. शोध छात्रा, राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, गाजीपुर, मोबाइल नं. -9415785823

की विमातायें हैं यानी उनके पिता की दूसरी पत्नियाँ। कुल्सूम ताहिर अली की पत्नी है और नसीमा उनकी पुत्री।

जैनब और रकिया एक-दूसरे की सौतिन हैं। किन्तु उनका व्यवहार सौतिनों जैसा नहीं है। उनके बारे में प्रेमचन्द कहते हैं- "दोनों महिलायें साये की तरह साथ-साथ रहती थीं। दोनों के भाव एक, दिल एक, विचार एक, सौतिन का जलापा नाम को न था। बहनों का सा प्रेम था।"[1] इस व्यवहार को यदि एक दूसरे के प्रति देखा जाय तो आदर्श कहा जा सकता है। किन्तु संयुक्त परिवार में उनका यह व्यवहार बदल जाता है। कुल्सूम और ताहिर अली के प्रति उनका व्यवहार दूसरा है, जो जरा भी दया, ममता नहीं जानता।

जैनब लोक-व्यवहार में कुशल है। जैनब का काँइयापन और चालाकी उसे संवेदनहीनता की पराकाष्ठा पर पहुँचा देता है। उसका सौतेला पुत्र ताहिर अली ईमान के डर से रिश्वत लेने से इनकार कर देता है, किन्तु जैनब उसके नाम पर रिश्वत ले लेती है। उसकी व्यापार बुद्धि गजब की है- "यही अहीर पूरे सौ गिनकर जाता। बेसब्री से गरजमंद चौकन्ना हो जाता है। समझता है शायद हमें बेवकूफ बना रही है। जितनी ही देर लगाओ, जितनी बेरूखी से काम लो, उतना ही ऐतबार बढ़ता है।"[2]

धर्म को अपने लाभ के लिए कैसे इस्तेमाल करना है, जैनब और रकिया की बात-चीत में देखा जा सकता है। वे जिस खुदा का भय दिखा कर ताहिर अली को अपने हक में कर लेती हैं, उस खुदा का भय उन्हें जरा भी नहीं है। इससे पता चलता है कि वे धर्म की रूढ़िवादिता से भली-भाँति परिचित हैं। धर्म और खुदा का प्रयोग वह दूसरों को भय दिखाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए करती हैं। जैनब के पास दूसरे हथकंडे भी हैं। वह जमुनी को भय दिखाकर उससे भी पच्चीस रुपये ऐंठ लेती है। रिश्वत वह ताहिर अली के नाम पर लेती है और जब ताहिर अली उससे कुछ पैसे उधार माँगते हैं, तो दीन-हीन बनती है और पैसे देने से इसलिए मना कर देती है कि कहीं ताहिर अली को यह न पता लग जाय कि उसके पास पैसे हैं। जैनब और रकिया का काँइयापन देखकर पाठक को बेचैनी होने लगती है। पाठक को जैनब और रकिया के ऊपर बेपनाह क्रोध आता है। ताहिर अली की आर्थिक स्थिति उसे दया का पात्र बनाती है। उसकी दरिद्रता, छटपटाहट, मजबूरी देखकर भी जैनब और रकिया को उसके ऊपर दया नहीं आती। रोटी के लाले होने पर भी वे ताहिर अली के नाम पर उधार लेकर अपने बच्चों को मिठाई खिलाती हैं, दूध पिलाती हैं और स्वयं पान चबाती हैं, जबकि ताहिर अली की बीबी और बच्चों को कुछ नहीं मिलता। अगर उन्हें भी मिलता, तो भी संतोष रहता। खर्च का सारा बोझ ताहिर अली और उनके बीबी-बच्चों पर पड़ता है। कर्ज चुकाने के लिए कुल्सूम और नसीमा के गहने बिकते हैं, वहीं दूसरी ओर जैनब और रकिया नये गहने बनवाती हैं।

प्रेमचन्द स्त्री मन की गहराइयों तक पैठे हैं। अच्छी स्त्री और बुरी स्त्री दोनों के अर्न्तमन को वे भली प्रकार जानते हैं। जैनब की स्वार्थपरता अपनी पराकाष्ठा पर है। जैनब और रकिया के बच्चों को बचाते हुए जब ताहिर अली घायल हो जाते हैं और जैनब से रुपये माँगते हैं तो जैनब रुपये देने से न सिर्फ मना कर देती है, उन्हें मालिक के पास जाने की सलाह भी देती है। उसकी स्वार्थपरता इतनी है कि इलाज के लिए भी वह पैसे नहीं निकालती। जैनब ताहिर अली की ईमानदारी और जवाबदेह प्रवृत्ति को खूब पहचानती है। उसे पता है कि किसी भी कीमत पर ताहिर अली घर-परिवार की जिम्मेदारी से पीछे नहीं हटेंगे। इसी का वह फायदा उठाती है। अपने पुत्र माहिर अली की शिक्षा की जिम्मेदारी भी वह ताहिर अली पर डालती है। यहाँ तक कि जब ताहिर अली माहिर अली को रुपये देने के लिए अपनी बीबी कुल्सूम के गहने गिरवी रखने के लिए घर में काम करने वाली मामा को भेजते हैं तो मामा को बहकाकर जैनब वह गहने स्वयं रख लेती है और बदले में 56 रुपये दे देती है। जैनब उन औरतों में है, जो दूसरे की सिधाई का फायदा उठाते हैं और अपना स्वार्थ पूरा हो जाने पर उन्हें छोड़ देते हैं। वह ताहिर अली की भावनाओं से खेलती है। रुपये न होने पर जब भोजन नहीं बनता तो वह ताहिर

अली को ताने देती है और उनके ऊपर दबाव डालती है। इतना ही नहीं, उन्हें गोदाम की जमा-पूँजी से पैसे निकालने के लिए भी उकसाती है। जब ताहिर अली जैनब के पुत्र माहिर अली के शाह खर्च की शिकायत करते हैं तो वह टका सा जवाब देती है- "लड़के को खर्च क्या दे रहे हैं गोया मेरे ऊपर कोई एहसान कर रहे हैं। मुझे क्या, तुम उसे खर्च भेजो या बुलाओ। उसके वहाँ पढ़ने से यहाँ पेट थोड़े ही भर जायेगा। तुम्हारा भाई है पढ़ाओ या न पढ़ाओ, मुझ पर क्या एहसान।"[3] जैनब की यह निर्दयता ताहिर अली की निरीहता को और गहरे धँसा देती है। वह गोदाम की जमा पूँजी से रुपये निकालने को मजबूर होते हैं और उनके गिरफ्तार होने पर सारा दोष कुल्सूम के ऊपर लगा देती है। जिसे रिश्वत और जमा पूँजी से, यहाँ तक कि ताहिर अली के वेतन से भी एक पैसे नहीं मिला, उसी पर जैनब दोषारोपण करती है- "बेगम की फरमाइशें कैसे पूरी होतीं, जेवर चाहिए, जरदा चाहिए, जरी चाहिए, कहाँ से आता। उस पर कहती हैं, तुम्हीं लोगों ने उन्हें मटियामेट किया। पूछो रोटी दाल में ऐसा कौन सा छप्पन टके का खर्च था।"[4] जैनब की निर्दयता यहीं नहीं रूकती, वह ताहिर अली के गिरफ्तार होने के बाद कुल्सूम से घर के खर्च के लिए रुपये माँगती है क्योंकि कुल्सूम उस घर के मुखिया की बीबी है। जब कुल्सूम कहती है कि उसके पास रुपये नहीं हैं, तो जैनब अपने पैसे से राशन मँगाकर भोजन बनवाती है और कुल्सूम तथा उसके बच्चों को पूछती भी नहीं। यह भारतीय संयुक्त परिवार का स्याह पक्ष है कि पूरे परिवार की जिम्मेदारी मुखिया और उसके परिवार पर होती है। परिवार के बाकी सदस्य अपनी आमदनी खर्च करने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। परिणामस्वरूप मुखिया और उसका परिवार आजीवन कष्ट भोगने को मजबूर होता है। ताहिर अली और उसके बीबी-बच्चों के साथ भी यही होता है।

जैनब एक विधवा है और दरिद्रता में उसका जीवन गुजर रहा है किन्तु जातीय उच्चता का अहंकार उसके भीतर विद्यमान है। वह कहती है- "हम कोई धुनिये, जुलाहे हैं ? यों सबसे दबते फिरें तो इज्जत कैसे रहे ?"[5]

उपन्यास में रकिया का कोई अलग से व्यक्तित्व नहीं है। वह जैनब की पिछलग्गू के रूप में ही चित्रित हुई है। जैनब की हर करतूत में वह उसका सहयोग करती है और उसकी हर बात मे हाँ में हाँ मिलाती है। एक तरह से वह जैनब के ऊपर आश्रित है।

'रंगभूमि' की दूसरी महत्वपूर्ण मुस्लिम स्त्री पात्र कुल्सूम है। वह ताहिर अली की बीबी है। परिवार के मुखिया की पत्नी होने के नाते उसे आजीवन कष्ट भोगने पड़ते हैं। कुल्सूम व्यावहारिक बुद्धि की स्त्री है। वह स्त्रियों के दाव-पेंच से भलीभाँति परिचित है और अपने पति को समझाती भी है। उसकी यह भविष्यवाणी आगे चलकर सही होती है। कुल्सूम जीवन की कठिनाइयों से परिचित है, इसलिए उसने संतोष को अपना स्वभाव बना लिया है। नौकरी में रोज बढ़ते झगड़े से वह तंग आ जाती है। वह अपने पति को नौकरी छोड़ने की सलाह देती है। पैसे से अधिक वह जीवन को महत्व देती है। उसका कहना है- "न इतना मिलेगा, न सही; इसका आधा तो मिलेगा। दोनों वक्त न खायेंगे, एक ही वक्त सही; जान तो आफत में न रहेगी।"[6]

कुल्सूम कर्ज से उत्पन्न होने वाले संकट से परिचित है इसलिए अपने पति को बार-बार कर्ज लेने से मना करती है। वह घरेलू खर्च के लिए कर्ज लेने और उधार लाकर खाने को बुरा मानती है। परिवार की वास्तविकता से वह परिचित है। उसकी दोनों सास ताहिर अली के नाम पर उधार लेकर मौज करती है और उसके नाम पर रिश्वत लेती हैं। किन्तु परिवार को बचाने के लिए ही वह कुछ कह नहीं पाती, भीतर ही भीतर घुटती है। वह कहती है- "ऊपर का खर्च सब बन्द कर दिया जाय। दूध पान और मिठाइयों के बिना आदमी को कोई तकलीफ नहीं हो सकती। ऐसे कितने आदमी हैं, जिन्हें इस जमाने में ये चीजें मयस्सर हैं? और की तो बात ही क्या, मेरे ही लड़के तरसते हैं। मैं पहले ही समझा चुकी हूँ और अब फिर समझाती हूँ कि जिनके लिए तुम अपना खून और पसीना एक कर रहे हो, वे तुम्हारी बात भी न पूछेंगे। पर निकलते ही साफ उड़ न जायँ, तो कहना।

अभी से रुख देख रही हूँ। औरों को सूद पर रुपये दिये जाते हैं, जेवर बनवाये जाते हैं, लेकिन घर के खर्च को कभी कुछ माँगो, जो टका सा जवाब मिलता है, मेरे पास कहाँ ? तुम्हारे ऊपर इन्हें कुछ तो रहम आना चाहिए। आज दूध मिठाइयाँ बन्द कर दो तो घर में रहना मुश्किल हो जाय।"[7]

कुल्सूम भले ही बेबस है, किन्तु वह कठिन परिस्थितियों में उबरना जानती है। ताहिर अली के गिरफ्तार होने पर वह सिलाई करके अपने बच्चों का भरण-पोषण करती है। किन्तु स्वाभिमान से समझौता नहीं करती। चमारों के सरदार द्वारा ताहिर अली को बचाने के लिए इकट्ठा किये गये रुपये लेने से वह मना कर देती है। वह कठिन से कठिन परिस्थिति में भी धैर्य रखने वाली स्त्री है।

प्रेमचन्द के उपन्यास 'कर्मभूमि' में दो स्त्री पात्र हैं- बूढ़ी पठानिन और सकीना। बूढ़ी पठानिन अत्यन्त गरीब महिला है। वह अपने बेटों से अलग पोती सकीना के साथ रहती है। वैसे तो वह अत्यन्त दीन-हीन दिखाई देती है, जो दूसरों की दया पर निर्भर है किन्तु जब वह सकीना को अमरकान्त के साथ देख लेती है, तो अपनी कौम और आबरू का हवाला देते हुए फटकारती है। बाद में वह आन्दोलन का संचालन करते हुए गिरफ्तार होती है।

सकीना एक सशक्त मुस्लिम स्त्री के रूप में उपन्यास में चित्रित है। वह अत्यन्त गरीब है। उसकी गरीबी का पता उसके घर की स्थिति से लगता है- "द्वार एक परदे की दीवार में था। उस पर एक टाट का फटा-पुराना परदा पड़ा हुआ था। द्वार के अन्दर कदम रखते ही एक आँगन था, जिसमें मुश्किल से दो खटोले पड़ सकते थे। सामने खपरैल का एक नीचा सायबान था और सायबान के पीछे एक कोठरी थी, जो इस वक्त अंधेरी पड़ी हुई थी। सायबान में एक किनारे चूल्हा बना हुआ था और टीन और मिट्टी के दो-चार बर्तन, एक घड़ा और एक मटका रखे हुए थे।"[8] इस गरीबी में रहते हुए भी वह अपने आत्मसम्मान को बचाये हुए है। वह मुन्नी का मुकदमा लड़ने के लिए दो रुपये चन्दा देना चाहती है और जब अमरकान्त उसकी गरीबी को देखते हुए चन्दा लेने से मना कर देता है तो उसका आत्मसम्मान जाग उठता है। वह कहती है- "जहाँ गरीबों के रुपये नहीं पूछे जाते वहाँ गरीबों को कौन पूछेगा ?"[9] सकीना के लोक व्यवहार का पता उस समय भी चलता है, जब वह इस गरीबी में भी पैसे बचाकर अमरकान्त के पुत्र के लिए वस्त्र तैयार कर भेंट करती है।

सकीना समाज की मन:स्थिति और लोक व्यवहार से भलीभाँति परिचित है। वह अमरकान्त से प्रेम करती है। किन्तु समाज में होने वाली बदनामी से डरती है। अमरकान्त आदर्शवादी है। वह समाज की सारी मान्यताओं को अस्वीकार करने को तैयार है, किन्तु सकीना समाज की वास्तविकता से परिचित है। वह कहती है- "मैं कौन हूँ ? एक गरीब मुसलमान औरत, जो मजदूरी करके अपनी जिन्दगी बसर करती है। मुझमें न वह नफासत है, न वह सलीका, न वह इल्म। मैं सुखदा देवी के कदमों की बराबरी भी नहीं कर सकती। मेंढकी उड़कर ऊँचे दरख्त पर तो नहीं जा सकती। मेरे कारण आपकी रुसवाई हो, उसके पहले मैं जान दे दूँगी। मैं आपकी जिन्दगी में दाग न लगाऊँगी।"[10] सकीना अपने और अमर के रिश्तों के बारे में जो कुछ कहती है, वह यथार्थ की जमीन पर टिका है। समाज की हकीकत वह जानती है। समाज में धर्म, जाति, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब के इतने भेद-भाव हैं कि अमरकान्त से उसका विवाह सम्भव नहीं है और यदि विवाह हुआ भी तो समाज में भयंकर रक्तपात हो सकता है। इसलिए इस वास्तविकता को वह आदर्श प्रेम के हवाई किले से ढकती है- "जिस्म चाहे किसी का हो जाए, यह दिल हमेशा तुम्हारा रहेगा। इसे मुहब्बत की गरज से पाक रखना चाहती हूँ। सिर्फ यह यकीन कि मैं तुम्हारी हूँ, मेरे लिए काफी है।"[11]

प्रेमचन्द ने सकीना के रूप में आत्मनिर्भर होती स्त्री का चित्रण किया है। घर की जिम्मेदारी सकीना ही निभाती है। वह रूमाल और टोपी तैयार करती है, कपड़े सिलती है और अपनी आर्थिक स्थिति बेहतर बनाती

है। सम्मानपूर्वक जीने के लिए वह कड़ी से कड़ी मेहनत करती है। बाद की उसके घर की दशा उसकी बेहतर होती आर्थिक स्थिति को बयां करती है – "सकीना के घर में कुछ खुशहाली नजर आती थी। घर की पुताई हो गयी थी। द्वार पर नया पर्दा पड़ गया था, दो खाटें नई आ गयी थीं, खाटों पर दरियाँ भी नयी थीं। कई बर्तन भी नये आ गये थे। कपड़े लत्तों की भी कोई शिकायत नहीं थी। उर्दू का एक अखबार भी खाट पर रखा हुआ था।"[12]

सकीना का आर्थिक सशक्तीकरण उसके भीतर निर्णय लेने की क्षमता भी विकसित करता है। वह अपनी जिन्दगी के फैसले खुद लेने में सक्षम होती है। विवाह तय होने के बाद भी वह विवाह करने से इनकार कर देती है। वह कहती है- "मैं शादी नहीं करना चाहती, बस। जब तक कोई ऐसा आदमी न हो, जिसके साथ मुझे आराम से जिन्दगी बसर करने का इत्मीनान हो मैं यह दर्द सर नहीं लेना चाहती। तुम मुझे ऐसे घर में डालने जा रही हो, जहाँ मेरी जिन्दगी तल्ख हो जायेगी। शादी की मंशा यह नहीं है कि आदमी रो-रोकर दिन काटे।"[13] सकीना समाज की बँधी-बँधायी परम्परा को तोड़कर एक हिन्दू लड़के से प्रेम करती है।

सकीना के रूप में प्रेमचन्द अपने समय से बहुत आगे जाते हैं। एक मुस्लिम स्त्री का आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना, शादी जैसे महत्वपूर्ण निर्णय स्वयं लेना सकीना को सशक्त बनाता है। उसकी बुद्धिमत्ता, विचार सौष्ठव, सूझ-बूझ और निर्भीकता आश्चर्यचकित करने वाली है। उसकी राजनीतिक सक्रियता इसका अगला पड़ाव है। वह बनारस में चल रहे आन्दोलन का हिस्सा बनती है। बाद में वह हरिद्वार के किसान आन्दोलन में भी नेतृत्व करते हुए गिरफ्तार होती है। एक मुस्लिम स्त्री का यह स्वरूप नवजागरण को नया रूप प्रदान करता है। प्रेमचन्द ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने मुस्लिम महिलाओं को अपने उपन्यासों में जगह दी, लेकिन उनके उपन्यासों में सम्पूर्ण मुस्लिम स्त्री समाज सामने नहीं आता, केवल निम्नवर्गीय एवं निम्नमध्यवर्गीय मुस्लिम समाज ही सामने आता है। उच्चवर्गीय मुस्लिम स्त्री उनके उपन्यासों की परिधि से बाहर है।

सन्दर्भ :

1. रंगभूमि, प्रेमचन्द, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली, पृ. 64
2. वही, पृ. 64
3. वही, पृ. 389
4. वही, पृ. 396
5. वही, पृ. 103
6. वही, पृ. 101
7. वही, पृ. 226-227
8. कर्मभूमि, प्रेमचन्द, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली, पृ. 33
9. वही, पृ. 50
10. वही, पृ. 82
11. वही, पृ. 83
12. वही, पृ. 88
13. वही, पृ. 84

●●●

छिन्नमस्ता : मिथकीय बिंब एवं स्त्री संघर्ष

❍ अशोक कुमार मीना[1]

सभ्यता विमर्श के इस दौर में सबसे अधिक चर्चित चिन्तन धारा 'स्त्री विमर्श' है। स्त्री विमर्श का अर्थ पुरुषों का विरोध नहीं बल्कि एक ऐसे समाज की स्थापना पर बल देना है जो समाज मनुष्य जीवन के सभी पक्षों का उचित समायोजन कर सके और साथ ही सामंतवादी सोच और मूल्यों का विरोध कर पाने में सक्षम हो। अत: पितृसत्तात्मक मानसिकता के विरोध में ही 'स्त्री विमर्श' का उदय हुआ। देखा जा सकता है कि आज सभी वैश्विक-संस्कृति, दर्शन व साहित्य पुरुष केंद्रित है। समय की बदलती परिस्थितियों के कारण अब दुनिया को स्त्री की दृष्टी से देखने और परखने की जरूरत महसूस हुई है। स्त्री सशक्तीकरण से अभिप्राय उसका सत्ताधीश जेंडर बन जाना नहीं है, बल्कि उसके सशक्तीकरण का अर्थ परिवार के जनतांत्रिक पक्ष पर बल देना है। "स्त्री-विमर्श एक सामाजिक और राजनीतिक फोर्स है, ऐसी फोर्स या दुर्गा शक्ति जो मर्दवादी अत्याचारों को रौंद कर दम लेगी।"[1] स्त्री विमर्श आत्मचेतना, आत्मसम्मान, समानता और समानाधिकार की पहल का नाम है। ऐसा माना जाता है कि स्त्रियाँ सदियों से पुरुषों की गुलाम बनी हुई हैं। इसी गुलामी की जंजीरों को तोड़ने की आवश्यकता है। स्त्रियों को अपने आत्मसमर्पण और पितृसत्तात्मक व्यवस्था से बाहर लाने का पूरा श्रेय स्त्री विमर्श को ही जाता है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में स्त्री को देवी की संज्ञा दी गई थी। यह तक माना जाता था कि 'जहाँ स्त्रियों को पूजा जाता है वहाँ देवता का वास होता है'। परन्तु स्त्रियों को दिया जाने वाला यह सम्मान कहीं न कहीं उसे दबाता चला गया। समर्पण, त्याग, प्रेम की मूर्ति के नाम से उसे ठगा जाने लगा। यह तो स्पष्टत: सिद्ध ही है कि परिवार और समाज के बीच स्त्री हमेशा दोयम दर्जे पर ही पाई जाने लगी। स्त्री-विमर्श ने "पूज्य होने के इस विचार कि धज्जियाँ उड़ा दी।"[2] समाज में स्त्री को जिस तरह की आजादी व समानता मिलनी चाहिए वह कहीं ना कहीं नदारत है। स्त्री-विमर्श ने ही हमारा ध्यान इस आकृष्ट करते हुए यह सोचने पर मजबूर किया कि स्त्रियों को समाज में पुरुषों के समान ही सम्मान मिलना चाहिए। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि अमेरिकी और फ्रेंच आन्दोलनों के फलस्वरूप विकसित खुली सोच का एक दूसरा रूप ही स्त्री विमर्श है। स्त्री विमर्श

1. सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, शिवाजी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

के केन्द्र में नारी मुक्ति संघर्ष एक महत्वपूर्ण बिंदु है। इस स्त्री संघर्ष को स्त्री विमर्श की पृष्ठभूमि भी कह सकते है जो पाश्चात्य से आरंभ हुई। "अमेरिका में सन 1965 ई. में स्त्रियों की स्वाधीनता व अधिकारों को लेकर बेंटी फ्रायडेन ने 'द फेमेनिन मिस्टेक' नामक चर्चित पुस्तक लिखी। सन 1966 ई. से महिलाओं के राष्ट्रीय संगठन की स्थापना हुई जिसके आधार पर सन 1970 ई. के आस-पास आन्दोलन हुए।"[3] स्त्री का आत्मसंघर्ष अपनी निरंतरता में प्रत्येक युग में विद्यमान रहा है। समय के बदलते तापमान में, बदलते सामाजिक सन्दर्भों में अपनी अधीनस्त की भूमिका, शोषण, असमानता से मुक्ति के प्रयत्न एवं दोहरे मानदंडों के बीच अपनी बदलती सामाजिक भूमिका के बावजूद स्त्री के प्रश्न नहीं बदले हैं। स्त्री विमर्श का सरोकार जीवन और साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रयासों से है। स्त्री की स्थिति की पड़ताल उसके संघर्ष एवं पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ-साथ बदलते हुए सामाजिक सन्दर्भों में उसकी भूमिका, तलाशे गए रास्तों के कारण जन्में नए प्रश्नों से टकराने के साथ-साथ आज भी स्त्री मुक्ति का मूल प्रश्न उसके मनुष्यत्व को अस्वीकारे जाने का प्रश्न है।

हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श की पहल नई नहीं है। स्त्री विमर्श का अपना लंबा इतिहास रहा है। वर्तमान समय में स्त्री विमर्श ने स्त्री मुक्ति, स्वतंत्रता, अस्तित्व एवं अस्मिता से संबंधित सभी पहलुओं का उल्लेख किया है। "नारी विमर्श नारी मुक्ति से संबंध एक विचारधारा है। यह एक ऐसा विमर्श है जो नारी जीवन के छुए-अनछुए पीड़ा जगत के उद्घाटन के अवसर उपलब्ध कराता है।"[4] अत: स्त्री-विमर्श का मुख्य अर्थ ही यही है कि वह स्त्री जीवन के उन पक्षों को उठाये जिन्हें समाज ने दरकिनार कर उसे दोयम दर्जे पर पहुँचाया। जिन अधिकारों और सम्मान की वह हकदार थी उसे उनसे वंचित किया गया। हिन्दी साहित्य में अनेक लेखिकाओं ने अपने दुख-दर्द को सहकर तथा स्त्री जीवन के यथार्थ रूप को प्रस्तुत किया है।

हिन्दी उपन्यास की लम्बी विकास धारा में कई ऐसी लेखन धाराएँ प्रचलित हुई जिसने सामाजिकी के प्रतिबिम्बत किया है। महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से स्त्री जीवन के यथार्थ रूप को प्रस्तुत किया। यह यथार्थ स्त्रियों का स्वानुभूत हैं जिसे उन्होंने जिया है और जस का तस अपने लेखन के माध्यम से चित्रित भी किया है। "समकालीन हिंदी उपन्यास लेखन के माध्यम से लेखिकाओं ने नारी जीवन के विविध प्रश्नों, उत्पीड़न के साथ एक नये रूप को उसकी अस्मिता की ऊँचाइयों के साथ रेखांकित किया है। यह नारियां समाज में अपनी स्वायत्तता स्थापित करना चाहती हैं। रूढ़िवादी संस्कारों के पीछे आँखें बंद कर चलना छोड़ चुकी हैं। वह अपनी समस्याओं का सामना पूर्ण क्षमता से कर रही हैं। इनके लिए अब पति परमेश्वर की व्याख्या पुरानी हो चुकी है। अब नारी ने समझ लिया है कि वह न नर के पैर की जूती है न दासी। विवाह संस्था अब उनके लिए समाज व्यवस्था की मजबूत शर्त न होकर समानता का अधिकार है वह अपने कर्तव्यों को पहचान चुकी है, अब उसे कोई गुमराह नहीं कर सकता।"[5] स्त्री-विमर्श ने स्त्री को खुलकर अपने विचार समाज के सामने रखने की पूरी स्वतंत्रता दी है। आज की स्त्री अब परंपरागत रूढ़ियों को तोड़ कर आगे बढ़ने का स्वप्न देखते हुए चलने लगी है।

हिन्दी साहित्य में प्रभा खेतान का स्थान अग्रणीय है। इनका साहित्य बहुआयामी है। उन्होंने सहज शैली में स्त्री के विविध रूपों के साथ स्त्री जीवन की समस्याओं एवं स्त्री विमर्श पर खुल कर लिखा है। वह स्त्री स्वतंत्रता की प्रबल समर्थक रही हैं। वह अक्सर कहती हैं कि स्त्रियाँ समाज की जर्जर और रूढ़ मान्यताओं के खिलाफ संघर्ष करे। स्त्री भारतीय हो या फिर विदेशी वह पूरे आत्मसम्मान के साथ अपना जीवन व्यतीत करे। प्रभा खेतान का समग्र साहित्य उनके अनुभवों की उपज है। उनके साहित्य का उनके जीवन से गहरा संबंध है। प्रभा खेतान द्वारा लिखित 'छिन्नमस्ता' स्त्री समस्या पर केन्द्रित महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास का

कथानक स्त्री के बनते-बिगड़ते रिश्तों की टकराहटों की दास्तान है। यह उपन्यास भारतीय रूढ़िग्रस्त समाज की सच्ची तस्वीर है। "नारी विमर्श की प्रखर चिन्तक और उपन्यासकार प्रभा खेतान का यह चर्चित उपन्यास स्त्री के शोषण, उत्पीड़न और संघर्ष का जीवन्त दस्तावेज है। संपन्न मारवाड़ी समाज की पृष्ठभूमि में रची गई इस औपन्यासिक कृति की नायिका प्रिया परत-दर-परत स्त्री जीवन के उन पक्षों को उघाड़ती चलती है, जिनको पुरुष समाज औरत की स्वाभाविक नियति मानता रहता है और इस प्रक्रिया में वह हमें स्त्री की युगों-युगों से संचित पीड़ा से रू-ब-रू कराती है।"[6] लेखिका ने इस उपन्यास में स्त्री अस्मिता को बचाए रखने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में मारवाड़ी समाज, उनका अपना वजूद, आन्तरिक जीवन, व्यवसायिक जीवन संघर्ष, धार्मिकता, अन्धश्रद्धा, प्रेम समस्या, आधुनिकता, समाज में स्त्री की दयनीय स्थिति, पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के संघर्ष का यथार्थ चित्रण दिखाई देता है।

'छिन्नमस्ता' उपन्यास प्रिया के जीवन संघर्ष की मार्मिक कथा है। उपेक्षित प्रिया का बचपन माँ के प्यार के लिए तरसता मन, हर एक की दुत्कार से अपमानित होता मन, घर में ही भाई द्वारा अत्याचारित प्रिया की दर्दभरी व्यथा का वर्णन 'छिन्नमस्ता' में चित्रित है।"बचपन से ही भेदभाव और उपेक्षा की शिकार साधारण शक्ल-सूरत और सामान्य बुद्धि की प्रिया परिवार की 'सुरक्षित' चौहद्दी के भीतर ही यौन शोषण की शिकार भी होती है और तदुपरांत प्रेम और भावनात्मक सुरक्षा की तलाश में उन तमाम आघातों से दो-चार होती है जिनसे सम्भवत: हर स्त्री को गुजरना होता है। अपने जड़ संस्कारों में जकड़ा पति भी उसे मानवोचित सम्मान नहीं दे पाता।"[7] प्रिया मारवाड़ी समाज का अंग है जहाँ स्त्री को सिर्फ देवी बनकर जीना सिखाया जाता है। चुप रहकर सबकुछ बर्दास्त करते जाना ही संस्कारी होंने की निशानी है। परन्तु प्रिया सिर्फ चुप रहना नहीं चाहती वह अपने साथ हो रहे अन्याय को अच्छी तरह समझती है और उस अन्याय के खिलाफ संघर्ष भी करती दिखती है। प्रिया अपने पति से कहती है की अब ईमानदारी, प्रेम समर्पण यह सब सिर्फ स्त्री को छलने वाले हथियार है बाकी कुछ नहीं। प्रिया द्वारा इतने तीखे शब्दों को सुनते हुए नरेंद्र कहता है कि, "यानी आपसी ईमानदारी, वफादारी, प्यार, समर्पण...यह सब कुछ नहीं?"[8] नरेंद्र द्वारा बोले गए यह शब्द मात्र भावनात्मक थे। इन शब्दों के खोखलेपन को परिभाषित करते हुए प्रिया कहती है कि, "कुछ नहीं ! सच कहूँ नरेंद्र यह शब्द भ्रम हैं। औरत को यह सब इसलिए सिखाया जाता है कि वह इन शब्दों के चक्रव्यूह से कभी नहीं निकल पाए ताकि युगों से चली आती आहुति की परम्परा को कायम रखे।"[9] पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने दकियानूसी, परंपरागत धारणाओं से स्त्री के पैरों को हमेशा जकड़ना चाहा, लेकिन जब ऐसा करना संभव न हुआ तो बड़े-बड़े शब्दों में फँसा कर उसका शोषण करने का नया तरीका अपनाया। प्रिया आधुनिक विचारों वाली स्त्री है, वह दबना नहीं चाहती। इसी कारण वह इस दकियानूसी सोच से अपने आप को अछूता रखती है।

प्रिया बचपन से ही शोषण का शिकार होती है। बचपन में परिवार द्वारा शोषित होती है तो महाविद्यालय में प्रो. मुखर्जी द्वारा, यह सिलसिला उसके विवाह के पश्चात तक चलता है जब पढ़े-लिखे पति द्वारा भी वह छली जाती है। अपने साथ हुए घात-प्रतिघातों के बारे में सोचते हुये प्रिया सोचती है कि, "औरत प्रेम के जाल में क्यों फँस जाती है? मैं रात-रात भर बैठी सोचती रह जाती। पीड़ा, भयानक यन्त्रणा और प्रचंड क्रोध। मगर आश्चर्य था कि मैं उसे दोष देने के बजाए खुद को अपराधी मान रही थी।"[10] समाज के पंगुओं द्वारा शोषित प्रिया का प्रेम और विश्वास जैसे शब्दों से भरोसा एक दम उठ जाता है। वह एक आधुनिक और स्वतंत्र स्त्री बनकर जीना चाहती है। उसने परम्परागत रूप से चली आ रही रूढ़ परम्पराओं का खंडन करते हुए स्वयं को इससे बचाने का प्रयास किया। "मुझे प्रेम, सेक्स, विवाह ये सारे सदियों पुराने घिसे हुए शब्द लगने लगे थे। नहीं, शब्द नहीं मांस के ताजा टुकड़े, लहू टपकते हुए। इन शब्दों के पीछे की दीवानगी और आदिकाल से चली

आ रही परम्पराओं का चेहरा सिर्फ औरत के आंसुओं से तरबतर है।"[11] भारतीय साहित्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि साहित्यिक ग्रंथों में स्त्री का स्थान सर्वोपरि है, परन्तु व्यावहारिक स्तर पर कहीं न कहीं समाज में वही स्थान उसके पिछड़ेपन का भी एक बड़ा कारण है। जितने भी बड़े-बड़े शब्दों की संज्ञा से स्त्री को नवाजा जाता है उनके पीछे स्त्री शोषण का बड़ा घिनोना रूप छिपा हुआ दिखाई देता है।

लेखिका स्त्री की वर्तमान दशा और दिशा को देखकर चिंतित होती है और उसकी यही चिन्ता चिंतन बनकर साहित्य में उभरती है। स्त्री का जीवन अश्रुमयी घटनाओं का इतिहास होता है। उसे न चाहकर भी अपने आँसू बहाने के लिए विवश होना पड़ता है। "औरत कहाँ नहीं रोती? सड़क पर झाड़ू लगाते हुए, खेतों में काम करते हुए, एयरपोर्ट पर बाथरूम साफ करते हुए या फिर सारे भोग-एश्वर्य के बावजूद मेरी सासूजी की तरह पलंग पर रात-रात भर अकेले करवट बदलते हुए। हाड़-मांस की बनी ये औरतें॒.अपने-अपने तरीके से जिन्दगी जीने की कोशिश में छटपटाती ये औरतें! हजारो सालों से इनके ये आँसू बहते आ रहे हैं।"[12] आज समय के साथ समाज में परिवर्तन तो होता दिखाई दे रहा है लेकिन स्त्रियों के प्रति पुरुष का रवैया अभी भी मध्यकालीन समयानुरूप ही दिखाई देता है। सैद्धांतिक स्तर पर बड़े-बड़े मंचों से स्त्री के पक्ष में बड़ी-बड़ी बातें भले कर ली जाए लेकिन व्यवहारिक स्तर पर आज भी पुरुषों को स्त्रियों का स्वतंत्र होना बर्दाश्त नहीं होता है। परंतु इस उपन्यास की लेखिका ने प्रिया के माध्यम से यह सन्देश देने का सफल प्रयास किया है कि स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए स्वयं इस पुरुषवादी समाज से लड़ना पड़ेगा। "जिन्दगी जीने के लिए अपनी लड़ाई लड़नी पड़ती है। यदि औरत व्यवस्था के बाहर कदम बढ़ाती है तो उसे ज्यादा बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी।"[13] प्रिया ने भी अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए बहुत संघर्ष किया। अपने बचपन से लेकर विवाह के बाद तक जितने भी अन्याय, अत्याचार हुए सबको सहकर एक महत्वकांक्षी स्त्री बनकर अपनी लड़ाई खुद अकेली लड़ती है और कट्टरवादी पुरुष से मुक्ति पाती है। अत: प्रिया अपने बचपन से लेकर विवाह होने तक शोषण की अधि कारी रही है। बचपन में भाई द्वारा, महाविद्यालय में प्रो.मुखर्जी द्वारा, विवाह के उपरांत पति द्वारा शोषित होती रही। कई सन्दर्भों में प्रिया अत्याचार, शोषण का विरोध भी करती हुई नजर आती है। "प्रिया का यह विद्रोह एक या दो साल में घटी घटनाओं का परिणाम नहीं हैं, बचपन से लेकर वैवाहिक जीवन तक घटी घटनाओं की यह प्रतिक्रिया है, जो प्रिया को सभी बन्धनों को नकारकर अपने आप को मुक्त करके अपने अलग व्यक्तित्व का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित करती है।"[14] आधुनिक युग में स्त्री जीवन की त्रासदी, पुरुष का वर्चस्व, स्त्री को अपने वश में रखने की पुरुष की महत्वकांक्षा, स्त्री के बढ़ते कदम को देखकर आक्रांत होना ही इस उपन्यास का मुख्य विषय है। साथ-साथ यह उपन्यास स्त्री की त्रासदी और उसके संकल्प का एक प्रामाणिक दस्तावेज है। प्रिया ने अपने आत्म-सम्मान को प्रथम स्थान पर रखते हुए अपने अस्तित्व को एक अलग पहचान दिलाई है। वह चमड़े का व्यापार करती है जिससे वह आर्थिक दृष्टी से स्वाबलंबी बनती है। अपने इसी स्वावलंबन के कारण वह पति से कह पाने में सक्षम है कि, "नरेंद्र मैं व्यवसाय रुपये के लिए नहीं कर रही। हाँ चार साल पहले जब मैंने पहले-पहल काम शुरू किया था,मुझे रुपयों की भी जरूरत थी। पर आज मेरा व्यवसाय मेरी आइडेंटिटी है। यह आए दिन विदेशों की उड़ान.... यह मेरी जिंदगी के कैनवास को बड़ा करती है। नित्य नए लोगों से मिलना-जुलना, जीवन के कार्य-जगत को समझना मुझे जिंदगी उद्देश्यहीन नहीं लगती।"[15] आज स्त्री शिक्षित एवं स्वावलंबी बन रही है, समाज में अपनी अस्मिता की पहचान बना रही है। वह हर क्षेत्र में अपना एक स्थान कायम कर रही है। वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि स्तरों पर होने वाले शोषण, अत्याचार के विरोध में संघर्ष करती नजर आ रही है और यही संघर्ष करना ही स्त्री विमर्श का मुख्य लक्ष्य है।

स्त्रियों की उपेक्षा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। स्त्रियों को उनके मूल अधिकारों से वंचित रखा जाता है। इन्हीं अधिकारों की पैरवी स्त्री-विमर्श करता है। स्त्री-विमर्श समाज में ऐसे बदलाव की अपेक्षा करता है जो स्त्रियों को हाशिये से परिधि में लाने की प्रक्रिया है। हिंदी साहित्य लेखिकाओं का स्त्री-विमर्श को सक्रिय करने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। स्त्री-लेखन के माध्यम से स्त्री के विभिन्न आयामों को समझा जा सकता है। स्त्री की पीड़ा, दमन, संत्रास, कुंठा आदि को अभिव्यक्त करने में स्त्री लेखन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रभा खेतान ने छिन्नमस्ता के माध्यम से समाज में हो रहे स्त्री शोषण एवं अत्याचार का वर्णन किया है। यह शोषण स्त्री सबसे पहले अपने घर की चार दिवारी से ही झेलती है। उसी का बड़ा रूप उसे समाज में भी झेलना पड़ता है। आदिकाल से चली आ रही शोषण की यह परंपरा का अब स्त्रियों ने विरोध करना आरम्भ कर दिया है। उपन्यास में कई स्त्रियों के द्वारा चित्रित किया गया है कि कैसे पुरुष समाज स्त्री को प्रताड़ित करता है। परन्तु वर्तमान समय आधुनिकता का है अब स्त्रियाँ शिक्षित हो रही है, उनमें आधुनिक विचारों का उदय होने लगा है। वह खुल कर अपने लिए आन्दोलन करने लगी हैं। अपने परिवार से ही नहीं बल्कि इस रुढ़िवादी समाज से भी अपने अधिकारों की माँग करने लगी हैं। उपन्यास की प्रिया आधुनिक विचारों वाली स्त्री है। प्रिया के साथ बचपन से शारीरिक, मानसिक शोषण होता है वह उससे स्वयं को टूटने नहीं देती, बल्कि एक मजबूत स्त्री बनकर अपने को आर्थिक स्तर पर स्वावलंबी बनाती है और अपनी स्वयं की पहचान बनाती है। प्रिया की भांति ही समाज की प्रत्येक स्त्री को इस रुढ़िवादी पुरुष समाज से लोहा लेना होगा, अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी तभी समाज में उसे समानता का दर्जा मिलेगा जिसकी वह सही मायने में अधिकारणी है।

संदर्भ :

1. कृष्णदत्त पालीवाल, 2007, उत्तरआधुनिकतावाद और दलित साहित्य, वाणी प्रकाशन, पृ. 94
2. क्षमा शर्मा, 2012, स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, पृ. 24
3. सं. अरुण तिवारी, प्रेरणा (त्रैमासिक) पृ. 50
4. सं. श्रीराम शर्मा, 2009, समकालीन हिंदी साहित्य विविध विमर्श, वाणी प्रकाशन, पृ. 90
5. वही, पृ. 21
6. प्रभा खेतान, 2012, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, पृ. फ्लैप
7. वही,फ्लैप
8. वही, पृ.11
9. वही, पृ.11-12
10. वही, पृ.106
11. वही, पृ.107
12. वही, पृ. 189
13. वही, पृ. 161
14. डॉ. वैशाली देशपांडे, 2007, स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार, विकास प्रकाशन, पृ. 112
15. प्रभा खेतान, 2012, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, पृ. 10

●●●

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में आजादी से मोहभंग के स्वर

❍ कुलभूषण मौर्य[1]

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन जनता की आकांक्षाओं का आन्दोलन था, जिसमें पुरानी व्यवस्था को उखाड़कर नयी व्यवस्था के निर्माण के स्वप्न थे। आजादी के पूर्व ही आजादी की रूपरेखा स्वतन्त्रता सेनानियों और नेतृत्वकर्ताओं द्वारा जनता के सामने प्रस्तुत कर दी गयी थी। जनता उन सपनों को अपने मन में संजोये आजादी के लिए संघर्ष कर रही थी। 15 अगस्त, 1947 ई. को देश आजाद हुआ। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. विपिन चन्द्र के अनुसार- "1947 ई. में देश ने अपने आर्थिक पिछड़ापन, भयंकर गरीबी, करीब-करीब निरक्षरता, व्यापक तौर पर फैली महामारी, भीषण सामाजिक विषमता और अन्याय के उपनिवेशवादी विरासत से उबरने के लिए अपनी लम्बी यात्रा की शुरुआत की।"[1] किन्तु आजादी के साथ ही देश विभाजन की त्रासदी के कारण वे स्वप्न भंग होना शुरू हो गये थे। दस वर्ष बीतते-बीतते जनता के सामने नग्न यथार्थ प्रकट होने लगा। जनता की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। राजनीतिक अवसरवादिता, स्वार्थ, भाई-भतीजावाद, कालाबाजारी, भ्रष्टाचार आदि के कारण जनता को निराशा होने लगी और उसे देश की आजादी झूठी लगने लगी। आजादी से उसका मोहभंग होने लगा। यह मोहभंग राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि सभी क्षेत्रों में दिखाई दिया। आजादी से मोहभंग की प्रक्रिया इतने बड़े पैमाने पर थी कि हिन्दी का साहित्यकार भी उससे अछूता नहीं रह सका।

फणीश्वर नाथ रेणु भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौर के रचनाकार हैं। उन्होंने आन्दोलन में सक्रिय सहभागिता की थी। जनता की आकांक्षाओं में उनके भी स्वप्न घुले हुए थे। इसलिए आजादी के बाद की स्थितियों ने उन्हें विचलित किया। सबसे अधिक मोहभंग राजनीति से हुआ। राजनीति में व्याप्त अवसरवादिता और मूल्यों के क्षरण के कारण जनता की आकांक्षाएँ धूल-धूसरित हो गयीं। उन्होंने अपने उपन्यासों में मोहभंग की स्थिति को व्यक्त किया है। फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यासों- मैला आँचल, परतीः परिकथा, पलटू बाबू रोड, जुलूस, कितने चौराहे, कलंक मुक्ति, रामरतन राय(अधूरा)- में आजादी से मोहभंग को देखा जा सकता

1. असिस्टेंट प्रोफेसर, डी. एस. कॉलेज, कटिहार, मोबाइल नं.-8004802485

है।

फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'मैला आँचल' 1945 से लेकर आजादी के बाद तक की कथा अपने भीतर समेटे है। भारत के अति पिछड़े राज्य बिहार के पूर्णियाँ जैसे जिले में भी आन्दोलन की गूँज अपनी सम्पूर्ण चेतना के साथ विद्यमान है। 1945 ई. के बाद यह धारणा प्रबल हो गयी थी कि देश आजाद हो जायेगा। कांग्रेस के नेतृत्व में बनी अन्तरिम सरकार ने काम-काज सम्भाल लिया था। 15 अगस्त 1947 को देश आजाद हुआ तो मेरीगंज गाँव में भी सुराज उत्सव मनाया गया। किन्तु उस सुराज उत्सव में औराही हिंगना का एक सोशलिस्ट नारा लगाता है- "यह आजादी झूठी है! देश की जनता भूखी है।"[2] यह नारा 15 अगस्त,1947 ई. के दिन ही आजाद भारत की वास्तविक स्थिति को बयान कर देता है। साथ ही आजाद भारत की भविष्य की तस्वीर भी प्रस्तुत कर देता है। आजादी के बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी की सरकार बनी। सामाजिक समता की बात करने वाली कम्युनिस्ट पार्टी को आजादी के बाद भी संदेह की नजर से देखा जाता रहा, क्योंकि वह अन्याय का विरोध करती है। 'मैला आँचल' के डाक्टर प्रशान्त को कम्युनिस्ट पार्टी से सम्पर्क रखने के कारण गिरफ्तार कर लिया जाता है। उन पर आरोप है कि उन्होंने संथालों को भड़का कर हमला करवाया था।

राजनीति में दलबदल और अवसरवादिता की प्रवृत्ति बढ़ गयी थी। सत्ता कांग्रेस के पास थी, इसलिए अनेक लोग कांग्रेस पार्टी में शामिल हो गये थे। यह सिलसिला आजादी के पूर्व ही शुरू हो गया था। बड़े-बड़े जमींदार और व्यापारी राजनीतिक लाभ के लिए पार्टी में शामिल हो गये थे। सोशलिस्ट बासुदेव कहता है- "कांग्रेस तो खिचड़ी पार्टी है। इसमें जमींदार हैं, सेठ लोग हैं और पासंग मारने के लिए थोड़ा किसान मजदूरों को भी मेंबर बना लिया जाता है।"[3] तहसीलदार साहब विश्वनाथ प्रसाद भी चार सौ रुपये देकर पार्टी के मेंबर बन जाते हैं और सत्ता का प्रयोग अपने हित में करते हैं। राजनीति में आस्था रखने वाले लोगों का आजादी के बाद राजनीति से ही सबसे पहले मोहभंग हुआ।

'मैला आँचल' उपन्यास में राजनेताओं और व्यापारियों की साँठ-गाँठ भी उजागर हुई है। यह आजाद भारत की भविष्य की राजनीति की ओर संकेत करती है। आने वाले समय में राजनीति व्यापारियों के हित का साधन और उनके हाथ का खिलौना बनने वाली है। इसलिए व्यापारी राजनीति का पोषण करते हैं। तीलझाड़ी के शंकर बाबू अपने दस कार्यकर्ताओं को पूरी मिठाई का जलपान कराते हैं और पैसा देता है मारवाड़ी चोखमल जुहारचन्द का बेटा। आजाद भारत की राजनीति स्वार्थ केन्द्रित हो गयी थी। कांग्रेस पहले वाली कांग्रेस नहीं रह गयी थी। इसलिए जो पक्के कांग्रेसी थे, उनका कांग्रेस और राजनीति से मोहभंग हो रहा था। बावन दास कहते हैं- "ससांक जी परांती सभापति हो गये हैं, वह भी पटना में ही रहेंगे।....सब आदमी अब पटना में रहेंगे। मेले लोग तो हमेशा वहीं रहते हैं। ... सुराज मिल गया, अब क्या है!....छोटन बाबू का राज है। एक कोरी बेमान, बिलेक मारकेटी के साथ कचहरी में घूमते रहते हैं। हाकिमों के यहाँ दाँत खिटकाते फिरते हैं। सब चौपट हो गया..... देस को भसम कर देंगे ये लोग ! भसमासुर !.....सोसलिस ? क्या कहेगा सोसलिस हमको ? सब पाटी समान। उस पाटी में भी जितने बड़े लोग हैं, मंतरी बनने के लिए मार कर रहे हैं। सब मेले संतरी होना चाहते हैं बालदेव! देस का काम, गरीबों का काम, चाहे मजूरों का काम, जो भी करते हैं एक ही लोभ से ।...."[4] बावनदास जैसे कांग्रेसियों का राजनीति से इसलिए मोहभंग हो रहा था कि उनके सामने राजनेताओं का और राजनीति का वास्तविक चेहरा सामने आ रहा था। राजनीति स्वार्थ का अखाड़ा बन गयी थी। उसमें स्वार्थी तत्व राजनेता का नकाब ओढ़कर घुस गये थे और जो पहले से थे, वे भी पहले जैसे नहीं रह गये थे। अवसर का लाभ उठाने में वे भी पीछे नहीं थे। भाई-भतीजावाद राजनीति में बढ़ गया था।

भारत में कानून बनाकर जमींदारी प्रथा को समाप्त कर दिया गया था। "जमींदारी प्रथा खतम हो गयी। अब जमींदार जमीन से बेदखल नहीं कर सकता। हमने उन्हें जमीन से बेदखल कर दिया। जो जोतेगा, जमीन उसकी है।"[5] किन्तु यह केवल कागजों में ही हुआ था। किसानों से जबरदस्ती अंगूठा ले लिया गया कि मैं यह खेत नहीं जोतता। जो लोग नहीं माने, उन्हें खूनी संघर्ष करना पड़ा। संथालों का संघर्ष इस बात का गवाह है। इसके वावजूद उन्हें जमीन नहीं मिली। उल्टे उन्हें कानून के पेंच में फँसकर जेल जाना पड़ा।

इतना ही नहीं, जमीनों को इस प्रकार बाँटा गया कि उस पर जमींदारी उन्मूलन एक्ट लगा ही नहीं। 'परती: परिकथा' उपन्यास में फणीश्वरनाथ रेणु ने लिखा है- "मुंशी जलधारीलाल ने इसी पतनी शब्द के बल पर प्रान्तीय सरकार के रेवेन्यू डिपार्टमेण्ट की आँखों में धूल झोंकी। सन् 1937 की कांग्रेसी मिनिस्टरी के समय ही उसने सारे स्टेट को तेरह टुकड़ों में बाँटकर छोड़ दिया था। इस बार जमींदारी उन्मूलन के समय बड़े-बड़े हाकिम सिर पटककर रह गये। लेकिन मुंशी जलधारीलाल की कलम की मार और मार की बारीकी को वे नहीं पकड़ सके। परानपुर स्टेट बेदाग बच गया। इससे छोटी हैसियत के जमींदारों की जमींदारी चली गयी।"[6] पूरे देश में ऐसे अनेक स्टेट आज भी जमींदारी उन्मूलन एक्ट को मुँह चिढ़ाते हुए पूरी शान के साथ अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं।

सोशलिस्ट पार्टी के जो लोग जमींदारी उन्मूलन को लागू करवाने के लिए संघर्ष कर रहे थे, उन्हें डकैती के झूठे केस में जेल में डाल दिया गया। कालीचरन, बासुदेव, सुन्दर, सोमा आदि डकैती के केस में जेल में हैं और चलित्तर कर्मकार को पुलिस तलाश रही है। जिस सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट पार्टी ने भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में सामाजिक-आर्थिक समानता का उद्देश्य जोड़ा, वही आजाद भारत में सत्ता विरोधी और राष्ट्र विरोधी घोषित कर दी गयी थी, क्योंकि वह राजनेताओं के स्वार्थ में आड़े आ रही थी। सुमिरतदास कहता है- "खबरदार? सुसलिट पाटी का नाम भी नहीं लेना। पूछे तो कहना, हम लोग कांग्रेस में हैं। कालीचरन से कोई रिस्ता मत बताना।..... समझे ? लाल झंडा जिसके घर से निकलेगा तुरंत गिरिफ्फ हो जायेगा।"[7] सोसलिस्ट पार्टी सत्ता विरोधी होने के कारण राष्ट्रद्रोही होने का पर्याय तो बन ही गयी थी, किन्तु केवल उनके लिए जो वास्तव में गरीब किसानों और मजदूरों के लिए लड़ रहे थे। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए राजनीति करने वाले सोसलिस्ट पार्टी में भी मौज कर रहे थे और सत्ता के लिए लालायित थे। फणीश्वरनाथ रेणु ने इसे बखूबी समझा था और अपने उपन्यासों में व्यक्त भी किया। ऐसे ही लोगों के कारण पूरी पार्टी की विचारधारा पर प्रश्नचिह्न लग रहा था। 'परती: परिकथा' के थाना कांग्रेस के सभापति वामपंथी विचारधारा को कटघरे में खड़ा कर देते हैं- "जनता खुद फैसला करे कि किसान और मजदूरों का असली साथी कौन है ? कांग्रेस के लोग या वे लोग जो सुबह उठकर मक्खन और अण्डा चाभते हैं, दिन में चार बार दाढ़ी बनाते हैं और सिगरेट का धुँआ उड़ाते हुए किसान मजदूर राज की दुहाई देते हैं ? वे अपने आप को बामपन्थी कहते हैं।"[8] जबकि वास्तविकता यह है कि यही हाल दोनों पार्टियों का है। दोनों पार्टियों के नेता केवल अपना व्यक्तिगत हित साध रहे थे। जनता के हित से उनका कोई लेना देना नहीं था। दोनों पार्टियों का उद्देश्य जनता को जातियों में बाँटकर अपने लिए वोट हासिल करना है। गरीब जनता की समस्याएँ ज्यों की त्यों रहती है। छुटभैये नेताओं का राजनीति से मोहभंग होता रहता है, क्योंकि वह बड़े नेताओं के भाषणों को ही वास्तविक मान लेता है और उसी के अनुरूप कार्य करता है। 'मैला आँचल' के बावनदास ऐसे ही नेता हैं। वे कांग्रेसी नेताओं के कुकृत्यों का पर्दाफाश करने की कोशिश में मारे जाते हैं। सोशलिस्ट पार्टी का कालीचरन भी ऐसा ही पात्र है। वह जेल से इस विश्वास पर भागता है कि पार्टी के सेक्रेटरी उसकी बात का विश्वास करेंगे और उसे कानूनी कार्यवाही से बचायेंगे, किन्तु वे कालीचरन को देखकर 'डकैत' कहते हुए मुँह फेर लेते हैं। कालीचरन खुद को ठगा हुआ महसूस करता है। उसे अपना पूरे जीवन का संघर्ष

व्यर्थ नजर आता है। अन्ततः वह चलित्तर कर्मकार के रास्ते पर जाने पर मजबूर होता है।

जिस पार्टी में जितना अधिक आदर्शवाद होगा, उससे आकांक्षाएँ भी लोगों को अधिक होगी। स्वयं को किसान मजदूर की पार्टी बताने वाली कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों से भी लोग यही उम्मीद लगाते हैं कि वह भी किसान मजदूर जैसा जीवन व्यतीत करे और किसानों-मजदूरों के हित की बात करे। किन्तु चरित्र की फाँक उनके यहाँ भी दिखाई देती है और वे आलोचना के पात्र बनते हैं- "बड़ा कौमलिस्ट बना है। तीनों भाई मिलकर उधर गरीबों का गला घोंट रहे हैं। इधर मियाँ साहब बनकर किसान मजदूर की लीडरी करना चाहता है मकबूल नौकरों को बड़ा भाई मारता है तो कौमलिस्ट भाई चुप नहीं रहता। कहता है, और मारिये साले को ! बड़ा काबिल हो गया है। बात का जवाब उलटा कर मुँह पर देता है! मारिये साले को !..... लुत्तो अच्छी तरह जानता है। सभी बाभन-छतरी-भूमिहार बाभन एक तरफ हैं।"[9]

आजादी पूर्व सामाजिक समता का जो स्वप्न देखा गया था, दलित-पिछड़ी जातियों के मन में बराबरी की जो उम्मीद जगाई गयी थी, आजादी के बाद वह कहीं भी पूरी होती नहीं दिखाई देती है। इससे छोटी जातियों का मोहभंग होता है। दलित-पिछड़ी जातियों का उपयोग केवल वोट के लिए किया जाता है। सामाजिक असमानता समाज के प्रत्येक कार्य में दिखाई देती है। गाँव में संचालित होने वाली नाटक मंडली में भी यह सामातिक ऊँच-नीच का भेद दिखाई देता है- "गाँव में दलित वर्ग को हर तरह से मर्दित करके रखा गया था, अब तक ! नाटक मंडली के लिए प्रत्येक वर्ष खलिहान पर ही चन्दे का धान काट लेते थे बाबू लोग। लेकिन कभीं भी द्वारपाल, सैनिक अथवा दूत का पार्ट छोड़कर अच्छा पार्ट, माने हीरो का पार्ट, नहीं दिया सवर्ण टोली के लोगों ने।"[10] इसलिए दलित नाटक-मण्डलीवाले सवर्ण टोली से पर्दा-पोशाक माँगकर ले आते हैं तो न देने का निश्चय करते हैं, क्योंकि चन्दा उन्होंने भी दिया था। 'परती परिकथा' उपन्यास में सामाजिक असमानता से उत्पन्न असन्तोष दिखाई देता है। आजादी के बाद सामाजिक समता भले ही फलित नहीं हुई, किन्तु दलित और पिछड़ी जातियों के लोागों के भीतर अस्मिता बोध अवश्य उत्पन्न हुआ। जाति को लेकर किये गये अपमान का विरोध होने लगा। मुंशी जलधारीदास द्वारा खवास जाति के बारे में सार्वजनिक रूप से अपमानजनक बात कहने पर खवास जाति का लुत्तो कहता है- "हुजूर जाति को लेकर बात बढ़ी तो बात बिगड़ जायेगी। समझा दीजिए मुंशी जलधारी लाल को ।"[11] दलित और पिछड़े वर्ग के लोगों का पढ़ना-लिखना और आगे बढ़ना ऊँची जाति के लोगों को अच्छा नहीं लगता। संविधान में भले ही सभी जातियों के लोगों को समान कह दिया गया हो, समाज इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं। मलारी का फोटो अखबार में छपने पर राजपूत टोले की सुवंश की भाभी कहती है- "अकबार में फोटू छापी हो गया तो वह जात में भी बड़ी हो जायेगी क्या ? इस चमारिन ने चार अच्छर पढ़ क्या लिया है, आकाश में छेद.....।"[12] फणीश्वरनाथ रेणु ग्रामीण सामाजिक संरचना से भलीभाँति परिचित थे। आजादी पूर्व जाति-व्यवस्था को समाप्त करने का जो स्वप्न देखा गया था, आजाद भारत में वह विलीन हो गया था। राजनीतिक और व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए भले ही दलित और पिछड़ी जातियों को सहानुभूतिपूर्ण ढंग से देखा जा रहा हो, लेकिन मानसिकता के स्तर पर कोई परिवर्तन नहीं आया था। आरक्षण का लाभ लेने के लिए अगड़ी जाति के लोगों ने भी अनुसूचित जाति का प्रमाण पत्र बनवा लिया था और सरकार की ओर से मिलने वाले सारे लाभ उठा रहे थे- "तीन साल पहले तक जो क्षत्रिय अपने को खास मानसिंह के वंशज बतलाते थे अथवा आल्हा-ऊदल की संतान बताकर दंगा-फसाद करते थे-देख लीजिए उन्हें ! उनके लड़के शिड्यूल्ड कास्ट और एबॉरिजिनल कम्युनिटी की फेहरिस्त मे अपना नाम लिखाने के लिए धक्कम-धुक्की कर रहे हैं।"[13] फणीश्वरनाथ रेणु ग्रामीण सामाजिक संरचना से जमीनी स्तर पर परिचित थे। वे देख रहे थे कि आजादी पूर्व सामाजिक समता का जो स्वप्न दलित और पिछड़ी जातियों ने देखा था, आजादी

के बाद वह पूरा नहीं हुआ। जाति-पाँति का भेद-भाव समाज में पूर्व की तरह ही बना रहा। आरक्षण के द्वारा अनुसूचित जातियों को सामाजिक-आर्थिक समता का जो अवसर प्रदान किया गया था, अगड़ी जातियों ने उसमें भी सेंध लगा दिया था।

जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के साथ ही वेश्यावृत्ति से मुक्ति का भी स्वप्न देखा गया था। सदियों से चली आ रही इस शर्मनाक वृत्ति के कारण कितनी ही स्त्रियों को देह बेचने के लिए मजबूर होना पड़ता था। वेश्याओं ने भी यह स्वप्न देखा था कि आजादी के बाद उन्हें इससे मुक्ति मिलेगी और वे सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत कर पायेंगी, किन्तु आजादी के साथ ही उनका यह स्पप्न भंग हो गया। उन्हें तो वेश्यावृत्ति को जारी रखना ही पड़ा, देश-विभाजन के बाद शुरू हुए भीषण दंगों के कारण गरीबी और भुखमरी इतनी बढ़ी कि दूसरी अन्य स्त्रियों को भी पेट भरने और परिवार चलाने के लिए वेश्यावृत्ति को अपनाना पड़ा। 'परती परिकथा' उपन्यास में फणीश्वरनाथ रेणु ने उनकी इस पीड़ा को उजागर किया है।

आजादी के बाद गरीबी दूर करने के लिए जमींदारी उन्मूलन से लेकर अन्य अनेक योजनाएँ सरकार द्वारा चलाई गई, जिससे गरीब जनता को लाभ मिल सके और उनकी भूख की समस्या सहित अन्य आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। किन्तु स्वार्थी राजनेताओं की मिलीभगत से नौकरशाहों ने उन योजनाओं को जनता तक पहुँचने ही नहीं दिया और यदि वे पहुँची भी तो आधे-अधूरे रूप में। 'परती परिकथा' में जितेन्द्रनाथ कहते हैं- "मुझे ऐसा भी लगता है कि जानबूझकर ही आपको अन्धकार में रखा जाता है। क्योंकि आपकी दिलचस्पी से उन्हें खतरा है। ....इन कामों से आपका लगाव होते ही नौकरशाहों की मनमानी नहीं चलेगी। एक कप चाय पीने के लिए तीन गैलन तेल जलाकर वे शहर नहीं जा सकेंगे। सीमेण्ट की चोर-बाजारी नहीं कर सकेंगे। एक दिन में होने वाले काम में एक महीने की देर नहीं लगा सकेंगे।.....नदियों पर बिना पुल बनाये ही कागज पर पुल बनाकर बाद में बाढ़ से पुल के बह जाने की रिपोर्ट वे नहीं दे सकेंगे ! और इस जुलूस के राजनीतिक संगठनकर्त्ताओं से एक अर्ज.....। राजनीतिक पार्टी के कार्यकर्त्ताओं से मैं कहूँगा। जनता की सरलता का दुरुपयोग अपने स्वार्थ के लिए न करें। .....क्षतिपूर्ति, पुनर्वास तथा जमीन वितरण आदि मसले ऐसे हैं जिससे सरकारी लाल फीता और घूसखोरी से आप ही बचा सकते हैं जनता को।"[14]

महात्मा गाँधी ने स्त्रियों को राजनीति से जोड़कर उन्हें राजनीति और समाज की मुख्य धारा में शामिल किया था। वे अब मात्र पुरुष के भोग की वस्तु नहीं थीं, बल्कि पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाली सहचरी बन गयी थीं। उन्हें भी यह आशा थी कि आजाद भारत में वे भी घर की चहारदीवारी से निकलकर अपनी प्रतिभा का प्रयोग राष्ट्र-निर्माण के लिए कर सकेंगी। किन्तु आजादी और देश-विभाजन का सबसे अधिक दंश उन्हें ही झेलना पड़ा। इरावती के माध्यम से फणीश्वरनाथ रेणु ने देश-विभाजन की त्रासदी को 'परती: परिकथा' में व्यक्त किया है। इरावती आजाद भारत में भी बलात्कार और यंत्रणा का शिकार होती है। राजनीति में जाने पर बड़े-बड़े नेता उसे इस्तेमाल करना चाहते हैं। फणीश्वरनाथ रेणु ने 'पल्टू बाबू रोड' उपन्यास में राजनैतिक और आर्थिक सम्बन्धों में यौन-व्यापार की बढ़ती भूमिका का चित्रण किया है। राजनैतिक और व्यापारिक लाभ के लिए घर की स्त्रियों का इस्तेमाल नैतिक पतन की चरम सीमा है। आजादी के बाद की ये स्थितियाँ मोहभंग की कारक हैं। 'कलंकमुक्ति' उपन्यास में नारी जीवन के अन्तर्विरोधों को दर्शाया है। 'वर्किंग वीमेंस हास्टल' का वेश्यालय में बदल जाना आजाद भारत के नीति नियंताओं के दुहरे चरित्र को दर्शाता है। सभाओं में नारी कल्याण के लम्बे-लम्बे भाषण और रात में उन्हीं नारियों को अपने बिस्तर पर लाने की सोच उनके दुहरे चरित्र को उजागर करती है। साथ ही यह भी साबित करती है कि आजाद भारत में जो लोकतन्त्र स्थापित हुआ है, वह झूठा है। वह सबको अपनी इच्छानुसार जीने और कार्य करने की आजादी नहीं देता। बेला

गुप्त जैसी महिलाओं का लोकतन्त्र और कानून पर से विश्वास उठ जाना स्वतन्त्रता, समता, न्याय जैसे संवैधानिक शब्दों पर प्रश्नचिह्न लगाता है। वह आजादी के पहले क्रान्तिकारियों द्वारा छली जाती है और आजादी के बाद गरीबों के रहनुमाओं द्वारा।

फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'जुलूस' बंगाल के शरणार्थियों पर लिखा गया हिन्दी का अकेला उपन्यास है। बंगाली शरणार्थियों की ओर ध्यान ही नहीं दिया गया। आजादी के बाद भी वे आजाद भारत में रोटी, कपड़ा, मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से भी वंचित हैं। आजादी के बाद देश-विभाजन के साथ ही अनगिनत लोगों को मजबूरी में अपनी मातृभूमि छोड़कर भारत और पाकिस्तान के नीति-नियंताओं द्वारा थोपी गयी नागरिकता को स्वीकार करना पड़ा था। उन्हें शरणार्थी होकर जीवन व्यतीत करना पड़ा। उनके पुनर्वास के लिए चलाई गई योजनाओं को स्थानीय नेताओं और सरकारी अफसरों ने मिलकर हड़प लिया। इसका जिक्र उपन्यास में हुआ है- "मोहन दफादार को तालेवर गोढ़ी की बात को काटने का अवसर मिला-नेहरू जी को काहे दोख देते हैं? और सरकार का ही क्या कसूर है?

तालेवर गोढ़ी आज डरा नहीं। उसने बात को सिर्फ पलट दिया- अजी, नेहरूजी को कौन 'दोख' देता है! सब कसूर है ई 'चोरवा' सबका।

- चोरवा ?

तालेवर गोढ़ी स्थानीय कांग्रेसियों को 'चोरवा' कहता है।"[15]

फणीश्वरनाथ रेणु के अधूरे उपन्यास 'रामरतन राय' में भी रामरतन राय के माध्यम से राजनेताओं और सरकारी अधिकारियों की वास्तविकता का पर्दाफाश हुआ है। रामरतन राय कहता है- "खतरा है तो सिर्फ-दोनों देशों के ऐसे क्रिमिनल्स से, जिनके मुखौटे मैं कभीं भी उलट दे सकता हूँ।... उनकी राष्ट्रीयता, उनके देशप्रेम, मानवता की बोलियाँ और नैतिकता की बड़ी-बड़ी बातें ?"[16]

आजादी के बाद भारत सरकार द्वारा जनता के कल्याण के लिए विभिन्न योजनाएँ चलाई गईं। उनमें जमींदारी उन्मूलन, पुनर्वास, क्षतिपूर्ति, सड़क, नहरें, पुल आदि थे। इनके माध्यम से भूख और गरीबी से सामान्य जन को मुक्ति दिलाना था। पंचवर्षीय योजनाएँ चलाई गईं। किन्तु ये सारी योजनाएँ नौकरशाहों और राजनेताओं की मिलीभगत से कालाबाजारी और रिश्वतखोरी की भेंट चढ़ गईं। फणीश्वरनाथ रेणु ने एक सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में इन सारी चीजों को नजदीक से देखा था। फलस्वरूप उन्होंने अपने उपन्यासों में व्यक्त किया। उनका सबसे ज्यादा मोहभंग राजनीति से ही हुआ। कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी दोनों में स्वार्थी तत्वों का प्रवेश हो चुका था। अधिकतर जमींदार कांग्रेस पार्टी के सदस्य बनकर ऊँचे पदों पर आसीन थे। कुछ अपनी पार्टी बनाकर सत्ता में प्रवेश की जुगत में थे। दलित और पिछड़ों की जनसंख्या अधिक होने के कारण सभी पार्टियाँ इन्हें अपना वोट बैंक बनाने की कोशिश में थीं। इन्हें लाभ दिलाने के लिए इनके लिए बनाई गई योजनाओं में रिश्वतखोरी और दलाली को बढ़ावा देकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे थे। सामान्य जनता और बुद्धिजीवियों ने आजादी के जो स्वप्न देखे थे, सामाजिक आर्थिक समानता के जो नारे लगाये थे, गरीबी, भुखमरी दूर होने की जो उम्मीद लगाई थी, वे कहीं भी आजाद भारत में पूरे होते नजर नहीं आते थे। राजनीति, जो कभी देशभक्ति की पर्याय थी, स्वार्थ का केन्द्र बन गयी थी। इसलिए सामान्य जन का आजादी से मोहभंग हो रहा था। सामबत्ती पीसी कहती है- "आम कटाये, बबुल लगाये, फल जे फलय मँहकार; उचित कहत सो चित्त नहीं भावे, चुगलन के दरबार ! सो चुगलखोर का राज है, यह। कहता है सुराज है। राम-राम ! मुँह मारो ऐसे सुराज का !"[17]

❑

सन्दर्भ :

1. विपिन चन्द्र, आजादी के बाद का भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, तृतीय संस्करण, 2004, पृ. 01
2. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-2, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृ. 226
3. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-2, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृ.128
4. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-2, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृ. 287-288
5. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-2, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2007, पृ. 179
6. परती: परिकथा, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-2, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृ. 375
7. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-2, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृ. 279
8. परती: परिकथा, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-2, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृ. 372
9. परती: परिकथा, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-2, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृ. 414
10. परती: परिकथा, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-2, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृ. 509
11. परती: परिकथा, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-2, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृ. 333
12. परती: परिकथा, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-2, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृ. 395-396
13. परती: परिकथा, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-2, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृ. 403
14. परती: परिकथा, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-2, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृ. 633
15. जुलूस, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-3, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृ. 122
16. रामरतन राय, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-3, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृ. 419
17. परती: परिकथा, फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली, भाग-2, सं0 भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृ. 625

●●●

'भिखारी ठाकुर' का जीवन संघर्ष और 'सूत्रधार' उपन्यास

❍ मनीष कुमार[1]

"उपन्यास ऐसी कला है जिसमें मनुष्य सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि से निरुपित होकर सामने आता है।" मिशेल जेराफ्रा के इस कथन का प्रच्छन्न आशय यह भी है कि जिसे हम 'मनुष्य' कहते हैं मूलतः तो वह व्यक्ति-समूहों की मनो-सामाजिक तथा रूप-क्रियागत आधारों पर बनने वाली सार्वभौम-सामान्यीकृत पहचान को संज्ञापित करने वाला एक प्रत्यय मात्र है जिसका समयानुसार निरुपण स्वाभाविक तौर पर होता चलता है; किंतु यही मनुष्य जब किसी उपन्यास में सामाजिक, ऐतिहासिक दृष्टि से निरुपित होकर सामने आता है, तो वह ठीक वैसा ही नहीं रह जाता जैसा कि वह अपने जीवन वास्तव के ठेठ दायरों में होता है। लेखक के आग्रह, अनुभव और दृष्टि के 'योग' से निर्मित होने के कारण उपन्यास का यह मनुष्य अपनी वास्तविक जीवन-छवियों की झलक लिए होकर भी वस्तुतः तो स्वयं लेखक के दृष्टिकोण को रुपायित करने के उद्देश्य से गढ़ा गया चरित्र-नायक ही होता है। 'सूत्रधार' का भिखारी ठाकुर नामक नायक (पात्र) इस बात का प्रतिनिधित्व करता है।

'सूत्रधार' उपन्यास करुणा का सागर है जिसमें भिखारी ठाकुर का जीवन डूबता-उतरता रहता है। पाठक भी इसी के साथ चलता रहता है। अमृतलाल नागर ने भी ऐसे ही 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन' में क्रमशः तुलसीदास और सूरदास के जीवन-संघर्ष को रूपायित किया है। यह संघर्ष रचनाकार का भी संघर्ष है। रचनाकार समाज में टकराता है, समाज उसे फूल भी देता है और शूल भी। रचनाकार समाज को आलोचनात्मक दृष्टि प्रदान करता है ताकि लोग समाज में व्याप्त कुरीतियों और पुरातनता के विरुद्ध लड़ सकें और उससे मुक्ति पा सकें। इस उपन्यास में भी कथाकार ने एक रचनाकार के निर्माण उसके संघर्ष और पूरे जीवन की आपाधापी को किस्से का जामा पहनाया है।

यह उपन्यास सतह से उठते हुए एक आदमी की संघर्ष गाथा है। जाति प्रथा से पीड़ित भारतीय समाज एक दलित को लोक का रचनाकार के रूप में आसानी से कैसे स्वीकार कर सकता था। उच्च जाति के लोगों के

1. *सहायक आचार्य, हिन्दी, एम.एम.वी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005*
मो. न. 9425478745; ईमेल : mkmsewa@gmail.com

लिए 'भिखारिया' या 'नचनिया' था, लौंडा था। जिस समय भिखारी ठाकुर नाई से 'कलावंत' बनने का प्रयास कर रहा था, उस समय सवर्णों के पग-पग पर उन्हें अपमानित करने, उनके आत्मविश्वास को कुचलने में कोई कसर न छोड़ी और उन्हें बार-बार 'नाई' होने का एहसास कराया। भिखारी जग्गशाला में जाने से जग्गशाला भ्रष्ट होती है। भिखारी के साथ हुए व्यवहार को लेखक इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं- "उसके सामने ही गंगाजल का छिड़काव कर मंत्र से शुद्ध करने के बाद काम फिर शुरु गिया गया।"[1] इस कथन से विदित होता है कि सवर्णों द्वारा दलितों को जीवन में घृणा और अपमान को झेलना पड़ता है। दलित सवर्ण के यज्ञ में सारा काम करते हैं। लेखक लिखते हैं- "गंगाजल नाई या कहार ढोकर ले आए थे, लकड़ी लोहार फाड़ रहा था। दूध-दही अहीर के घर से, कलशा-परई कुम्हार दे गया होगा, दोना-पत्तल नट और डोम दे गए होंगे। आम के पल्लव एक मल्लाह का लड़का तोड़ गिरा रहा था.... मगर ये सारे लोग अब इन्हें छू भी नहीं सकते।"[2] इस कथन से पता चलता है कि सवर्णों की सेवा करते हैं फिर भी उन्हें अछूता मानकर उनका शोषण किया जाता है।

भारतीय समाज व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था तथा जातीय व्यवस्था का प्रचलन प्राचीन काल से चलता आया है। दलितों को अस्पृश्य मानने से दलितों की अनेक पीढ़ियाँ गुलामी, वेदना तथा अपमान और घुटनभरी जिंदगी जीती आ रही है। इस संदर्भ में डॉ. महेन्द्र भटनागर लिखते हैं- "छुआ-छूत हिन्दू समाज की एक भयंकर सामाजिक बीमारी है। धार्मिक अंधविश्वासों द्वारा पोषित छुआ-छूत की भावनाएँ हिन्दू समाज की अधिकांशजनों में व्याप्त है। ये लोग चाहे अनपढ़-ग्रामीण स्त्री पुरुष हों या पढ़े-लिखें नागरिक दोनों अपने को इस सामाजिक कुरीति से मुक्त नहीं कर सकें।"[3] इससे पता चलता है कि जब तक समाज में धार्मिक अंधविश्वास की भावना रहेगी तब तक दलितों को अछूत मानकर शोषण होता रहेगा। भिखारी को दलित होने से हर जगह अपमानित होना पड़ता है, परन्तु वह अपने जीवन में हार नहीं मानता है और उच्चवर्गीय समाज से संघर्ष करता हुआ अपनी मंडली के द्वारा समाज में लोक नाट्य करके चेतना भरने का काम करता है। 'बिदेसिया' भिखारी ठाकुर का प्रमुख नाच था। इसके अलावा 'बेटी-वियोग', 'पिया निसइलन', 'गबर छिचोर' आदि लोक-नाटकों के मार्फत भिखारी ठाकुर ने समाज की तस्वीर पेश की। उनके नाच में लेखक-लोक कलाकार की व्यक्तिगत पीड़ा और सामाजिक बोध बार-बार प्रकट होता है। भिखारी ठाकुर के नाटकों से उच्च वर्ग के लोग इस हद तक तिलमिला जाते थे कि हंगामा कर देते थे, क्योंकि भिखारी ठाकुर के नाचों में बेटी बेचने जैसी कुरीतियों की खिल्ली उड़ाई जाती थी और ये सारी कुरीतियाँ अधिकांशत: उच्च जाति के लोगों में ही व्याप्त थीं। कई बार लोग विरोध करते, मारा-मारी करने को उतारु हो जाते पर भिखारी नम्रता से झुककर माँफी माँग लेते। लोक कलाकार का यह रचनात्मक और सामाजिक संघर्ष अनवरत चलता रहा।

भिखारी ठाकुर के बारे में 'पाखी' पत्रिका में लिखा है कि, "इस उपन्यास का नायक भिखारी ठाकुर जन-जीवन के बीच का आदमी है जो अपनी निजी नाच मंडली बनाकर अपने अन्दर हिलोंरे ले रही सामाजिक समस्याओं को मंच पर लाना शुरू करता है, तो समाज के हर तबके के लोग जैसे अपना चेहरा आइने में देख रहे होते हैं। इस नायक के साथ-साथ इसकी मंडली के महत्वपूर्ण सहनायकों की कला को भी संजीव ने अपने उपन्यास में संजीदगी से रेखांकित किया है। इस टीम में बाबूलाल, लालू लच्छन राय, सोमारु, रामचन्नर, सुनरसन इत्यादि लोक कलाकारों के जीवन संघर्ष एवं कला संघर्ष को कलात्मक ढंग से उपन्यास में दर्ज किया है संजीव ने।"[4]

भिखारी ठाकुर नाच में अश्लीलता और फूहड़पन देखते ही तिलमिला उठते थे। उन्हें लगता, यह नाच नहीं, यह तो सीधे-सीधे अश्लीलता है। वे नाच को कला का रूप देना चाहते थे। वे इसे समाज का दर्पण बनाना चाहते थे। वे इसे सम्मान दिलाना चाहते थें अंतत: वे इसमें सफल भी हुए। प्रतिबद्धता, प्रखरता और रचनात्मकता

के कारण राहुल सांस्कृत्यायन ने उन्हें 'भोजपुरी का शेक्सपीयर' कहा, किसी ने 'नट सम्राट' कहा, सरकार की कला अकादमी द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया, पर आलोचना और प्रताड़ना भी कम न सहनी पड़ी। यह आलोचना और प्रताड़ना जातिगत विद्वेष के कारण थी। भिखारी को बार-बार अपमान सहना पड़ता, बिलबिला जाते, निराश भी हो जाते, उदास भी। पर हार न मानने का अदम्य था उनके भीतर। वह जिद करके कलाकार बने थे।

'सूत्रधार' उपन्यास के बारे में एक जगह कहा गया है कि "सूत्रधार भिखारी ठाकुर के जीवन चरित में से उन्नीसवीं शती के उत्तर-काल के उत्तरपूर्वी सामंती समाज की इतिहास-ओझली निबिड़ सच्चाइयों को आविष्कृत कर लेने का प्रयास है। अस्मिता संघर्ष के मौजूदा दौर में वर्ण-विमर्श के छूट गए या छोड़ दिए गए प्रश्नों का वस्तुनिष्ठ निदर्शन कराने वाला यह एक ऐसा उपन्यास बन पड़ा है जो जाति-विमर्श को भू सांस्कृतिक विमर्श तक ऊँचा उठाकर न केवल वर्णवर्चस्वी विमर्श की न्यूनताओं को आईना भी दिखाता है।"[5]

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि संजीव ने 'सूत्रधार' उपन्यास के माध्यम से एक अनपढ़ दलित लोक कलाकार के जीवन संघर्ष को उद्घाटित किया है, और उसका महत्व लोक में कितना होता है उसे बताया है। संजीव ने भिखारी ठाकुर के माध्यम से भारत भर के गाँवों में फैले दलित लोक कलाकारों के महत्व को रेखांकित किया है, जिनका प्रभाव समाज में बहुत ज्यादा होता है और ये लोग अपनी रचनाओं और कलाओं के माध्यम से समाज को समय-समय पर दिशा देते रहे हैं, नियंत्रित करते रहे हैं। समाज सुधार की प्रक्रिया में ये कलाकार असंगठित क्षेत्र में आते हैं। फिर भी संस्थाओं की तुलना में समाज पर इन लोक कलाकारों का शायद प्रभाव ज्यादा पड़ता है। अनपढ़, गंवार किन्तु अपनी कला में हुनरमंद लोक कलाकारों ने समाज को कितना दिया है, यह सूत्रधार के बहाने संजीव ने एक झलक मात्र दिखाने की सार्थक कोशिश की है।

संदर्भ :

1. संजीव, सूत्रधार, पृ. 22
2. संजीव, सूत्रधार, पृ. 23
3. डॉ. महेन्द्र भटनागर, समस्यामूलक उपन्यास का प्रेमचन्द, पृ. 116
4. सं. अपूर्व जोशी, 'पाखी' पत्रिका, सितम्बर 2009, पृ. 132
5. सं. डॉ. गिरीश काशिद, कथाकार संजीव, पृ. 333

●●●

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में अभिव्यक्त पारिवारिक संघर्ष

❍ अंकित अभिषेक[1]

आत्मकथा साहित्य के विकास, उत्कर्ष और सम्पन्नता के लिए महिला लेखन का योगदान महत्वपूर्ण माना जाता है। कुछ महत्वपूर्ण महिला आत्मकथाकारों में अनीता राकेश (चंद संतरे और, 1941), दुर्गा खोटे (मैं, 1980), पद्मा सचदेव (बूँद बावड़ी, 1999), शिवानी (सुनहु तात यह अकथ कहानी, 1998), रमणिका गुप्ता (हादसे, 2005), सुशीला राय (एक अनपढ़ कहानी, 2005), सुशीला हरिष (पति प्रसंग, 2006), मन्नू भंडारी (एक कहानी यह भी, 2007), प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या तक, 2007), कौसल्या बैसंत्री (दोहरा अभिशाप, 2009), चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की (पिंजरे की मैना), सुशीला टाकभौरे (शिकंजे का दर्द) आदि को शामिल किया जा सकता है। हिंदी आत्मकथा साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षरों में से एक मैत्रेयी पुष्पा ने दो खंडों में आत्मकथा लिखी। इनकी आत्मकथा का पहला खंड था 'कस्तूरी कुंडल बसै' इस खंड में माँ और बेटी की दो पीढ़ियों के संघर्षों के इतिहास का यथार्थ चित्रण किया गया है। आत्मकथा के दूसरे खंड 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में लेखिका मैत्रेयी पुष्पा पुरुष वर्चस्व, पुरुष के स्त्री विरोधी विचार, घर-परिवार और दाम्पत्य के अन्यायों को न सिर्फ दर्ज करती नजर आती हैं बल्कि अपने तरीके से किए गए विरोधों का भी वर्णन किया है। इस संबंध में मैत्रेयी पुष्पा ने कहा है कि "मैंने कलम थाम ली। कलम के सहारे मेरी चेतना, जिसे मैंने आत्मा के आवाज के रूप में पाया, तभी तो साहित्य के द्वार तक चली आई। सुना था साहित्य व्यक्ति के लिए स्वतंत्रता देता है। हाँ, लिखकर ही तो मैंने जाना कि मैं न धर्म के खिलाफ थी, न नैतिकता के विरुद्ध। मैं तो सदियों से चली आ रही तथाकथित सामाजिक व्यवस्था से खुद को मुक्त कर रही थी।"[1]

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' को पढ़ते हुए यह बात प्रमाणित हो जाती है कि भारत में के सामाजिक ढाँचे में स्त्री जीवन प्रतिबंधित रहा है। अविवाहित स्त्री का मुख्य कर्त्तव्य भावी पति, परिवार और जाति के सम्मान के लिए अपने कौमार्य, चारित्रिक शुद्धता और पवित्रता की रक्षा करना है। विवाह के बाद

1. अतिथि व्याख्याता, हिंदी विभाग राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली।

भी उसके संयम में पति की सामाजिक प्रतिष्ठा जुड़ी हुई होती है। हिंदी की महिला आत्मकथाओं में पुरुष बंधन के प्रति एक प्रकार का विद्रोह और प्रतिशोध का स्वर दिखाई पड़ता है। पुरुष प्रधान सामाजिक संस्कृति में स्त्री का दर्जा पुरुष की संपत्ति का ही रहा है। प्राचीन काल से ही स्त्री लूटी और कमाई जा सकती थी। पुरुषवादी समाज में स्त्री होकर अपने तरीके से जीवन व्यतीत करना कितना मुश्किल होता है। यह इन आत्मकथाओं के माध्यम से समाज के समक्ष प्रकट होता है। कुछ आत्मकथाओं में लेखिका शत-प्रतिशत सच्चाई बयाँ करने से परहेज करती है ताकि उनके ऊपर कोई आरोप न लग सके।

'समाज में स्त्री समानता की लड़ाई' को लेकर स्त्री समाज की पछली लड़ाई पितृसत्ता के खिलाफ शुरू हुई। इस संघर्ष का मूल लक्ष्य था समाज में 'अपने होने' को साबित करना, अपनी क्षमता को पहचानना। दोयम दर्जे की नागरिकता से मुक्ति के लिए जरूरी था कि समाज में खुद की कार्य क्षमता को साबित करना। किसी स्त्री की आत्मकथा या आत्मकथात्मक लेखन का आरंभ 'स्व'(Self) के चित्रण के जरिए अपनी अस्मिता को हासिल करने का प्रयास है। वह आत्मकथा के माध्यम से अपनी पहचान को तलाश रही होती हैं। यह स्त्री की सामाजिक अवस्थिति का भी सवाल है। स्त्री सामाजिक, राजनीतिक परिघटना है, उसका बोलना भी एक बड़ी घटना है। "स्त्री की आत्मकथा में उसके अनुभव का संसार बोलता है। सदियों से शोषण, अत्याचार, बलात्कार का शिकार बनी नारी में चेतना के नए स्वर पनपने लगे हैं। वह नई विचार, नई परिस्थिति एवं समस्याओं से परिचित होकर शोषण, कुप्रथाओं का विरोध कर रही है।"[2] चेतना संपन्न नारी रूढ़ि-परम्पराओं के चंगुल से छुटकारा पाने हेतु प्रयत्नरत दिखाई देती है। वह नई मानसिकता से प्रेरित होकर पारिवारिक और सामाजिक शोषण के विरुद्ध अपने को प्रस्तुत कर रही है।

वर्तमान में नारी शोषण और अत्यचार का पुरजोर विरोध कर रही है। उसने अपनी एक अलग पहचान बनाने की कोशिश जारी रखी है। उसने अपनी एक अलग जीवन दृष्टि विकसित करने की कोशिश करते हुए अपने जीवन विषयक सिद्धांत बनाए हैं। अपने प्रति किए गए अन्याय-अत्याचार का विरोध करने का साहस आज की नारी दिखा रही है। "वह यह सिद्ध करती है कि नारी मुक्ति का अर्थ केवल शारीरिक मुक्ति ही नहीं मानसिक मुक्ति भी है। जब तक नारी मानसिक दासता से मुक्त नहीं होगी तब तक नारी मुक्ति शब्द निरर्थक है।"[3] मैत्रेयी पुष्पा का लेखन सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति आंचलिक मौलिकता और गहरी संवेदनात्मकता के साथ ही साहसिक होने की वजह से बरबस ही ध्यान आकर्षित कर लेता है। इन्होंने अपनी आत्मकथा में पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता का ही चित्रण नहीं किया है बल्कि पुरुषों के स्त्री विरोधी विचार घर-परिवार को भी चित्रित किया है।

भारतीय समाजिक जीवन में पुरुष को श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण स्थान देने के कारण परिवार का मुखिया पुरुष ही माना जाता है। परिवार का मुखिया बना हुआ पुरुष अपनी प्रभुता स्थापित करने हेतु परिवार के महिला सदस्यों पर जुल्म करता है। उन्हें कुल-परंपरा के बंधनों में जकड़कर अपने अत्याचार का शिकार बनाता है। इसी पीड़ा के ठोस यथार्थ का चित्रण मैत्रेयी पुष्पा ने अपने आत्मकथा में व्यक्त करने का प्रयास किया है- "यादों में जो मुकम्मल तस्वीरें जिंदा हैं वे ही कहानी का आधार हैं, भले ही वे किसी और से सुनी हों, या अपने परिवार के बारें मे किम्वदंतियाँ रही हों। मेरे लिए तो सब कुछ माँ को निकट से जानने की ही पीड़ा और प्रक्रिया रही।"[4]

पुरुष वर्चस्वीय सामाजिक बंधन में स्वतंत्र और आत्मनिर्भर होने के प्रयास में स्त्रियों को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, स्त्री की इस जद्दोजहद का आख्यान मैत्रेयी पुष्पा ने इस आत्मकथा में दिया है। "यदि खाने मे नमक-मिर्च की कमी दिखे या ज्यादा लगे तो थाली उठाकर मोरी की ओर फेंकी जा सकती है। घर की स्त्रियाँ इस बात को अपने समान डर के रूप में लेतीं, लगभग घर-घर में ऐसे डरों को बनाए रखने का चलन है।"[5] पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के संबंधों को सर्वाधिक स्वच्छ एवं आदर्श संबंध माना

जाता है। पत्नी को गौरवपूर्ण स्थान एवं गृहलक्ष्मी का सम्मानित पद प्रदान किया जाता है परन्तु पुरुष प्रधान समाज-व्यवस्था, पुरुष का अहं, प्रतिष्ठा के झूठे मानदंड तथा नारी की बेबसी, विवशता का लाभ उठाकर पत्नी को गृह की बंदिनी, पति की आश्रिता, पति से हीन, आत्मसम्मान एवं स्वतंत्र व्यक्तित्व से शून्य समझकर अत्याचारों का शिकार बनाया जाता रहा है। इस संबंध में मैत्रेयी का कहना है कि "एक पतिव्रता ! पति को क्या चाहिए, यह भी जानती थी। मन से ज्यादा तन का समर्पण और उसकी मौन आवृति, कम नहीं ज्यादा से ज्यादा करनी होती है। इसमें छल और छद्म के लिए जगह नहीं। जैसे विवाहित जीवन की यही कसौटी हो।"[6]

पुरुषवादी अहंकार में डूबा हुआ पति अपनी पत्नी को बेजान वस्तु समझकर उस पर अन्याय एवं अत्याचार और तरह-तरह के चारित्रिक आरोप लगाता रहता हैं। ऐसी स्थिति में पति-पत्नी के आपसी संबंधों में तनाव की स्थिति निर्मित हो जाती है और परिवार झगड़े का केंद्र बन जाता है- "तो चलो सुन लो'। वे सख्ती से मेरा बाँह पकड़कर भीतर आ गए। 'सुन लो कि लोग कह रहे हैं, मिसेज शर्मा को डॉ. शर्मा नहीं भा रहे। लोग कह रहे हैं, मिसेज शर्मा को डॉ. सिद्धार्थ डुगडुगी की तरह नचा...' 'डुगडुगी' हाँ, डुगडुगी। वह तुम्हारी कमर में हाथ डालकर मनमाने तौर पर नचा नहीं रहा था ?"[7] मैत्रेयी जी ने अपने और डॉ. सिद्धार्थ के बीच के रिश्ते को कभी भी बुरा नहीं माना। अपने पति डॉ. शर्मा द्वारा उनके और डॉ. सिद्धार्थ के संबंध को लेकर हमेशा शक करने को वे तरजीह नहीं देती थीं। वे इस संबंध को केवल एक स्वच्छ लगाव के रूप में देखती थीं- "लोग माने उसे लम्पट, समझते रहें आशिक। मुझे हीन भावनाओं के गर्त से बाहर खींचने वाला चरित्रहीन कैसे हुआ? मुझे उस संघर्ष में शामिल कर दिया, जो मुझे अपने लिए लाजिमी करना था। फिर वह परपुरुष कैसे हुआ ? मैं नाच के लिए नहीं उठी थी, अपने हकों के लिए खड़ी हुई थी जिनसे मेरी जिंदगी के सम्मान का वास्ता था।"[8] डॉ. शर्मा द्वारा डॉ. सिद्धार्थ के संबंध को लेकर किए जा रहे शक का मूल आधार यह था कि मिसेज शर्मा पार्टी में डॉ. सिद्धार्थ के साथ नाचती हैं। पति को यह बात गँवारा नहीं थी। अपनी स्थिति का खुलासा करते हुए लेखिका कहती हैं कि, "डॉ. सिद्धार्थ मेरे प्रेमी नहीं पति के दोस्त रहे हैं। शादी के बाद मुझे मेरे हिसाब से कारावास मिला है, जिसके लौह-कपाट मैं तभी से तोड़ने में लगी हूँ और देखना चाहती हूँ कि इस दुनिया के अलावा भी कोई दुनिया है? पति के अलावा कितने लोग हैं बाहर? वैसे पति से बैर भाव नहीं पाला, मगर उनके किसी खूँटे से बँधना ?..."[9]

वर्तमान युग में पति-पत्नी के आपसी तनाव, व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा, नारी स्वातंत्र्य, प्रेम संबंध आदि के कारण दाम्पत्य जीवन विघटित हो रहा है। भारतीय दाम्पत्य जीवन में पति की स्थिति पत्नी से श्रेष्ठ मानी जाती रही है। पत्नी पति के अधीन और पति के इशारों पर जीवन जीने के लिए विवश होती है। उसकी अधीनस्थता और विवशता ही उसे शोषण, अत्याचार और अन्याय का शिकार बनाती है। पति की पुरुष प्रधान मानसिकता, विषम सामाजिक परिवेश, परिवार के सदस्यों का स्वार्थी एवं अमानवीय व्यवहार आदि के कारण नारी का दाम्पत्य जीवन दु:खों और यातनाओं से भर जाता है। भारतीय समाज व्यवस्था में दाम्पत्य संबंध को पवित्र और जन्म-जन्मांतर का संबंध माना जाता है। इसका मूलभूत आधार भारतीय चिन्तन प्रणाली, सांस्कृतिक परंपरा और सामाजिक परिवेश है। इन्हीं परिस्थितियों के दबाव के आधार पर स्त्री अपने अस्मिता को भूलने लगती है - "बबली, तू कहती है न अपना नाम कोई नहीं भूलता, पर बेटा हमें गौर से देख, हमारी जैसी औरतें भूल जाती हैं अपना नाम कुल गोत्र और जाति। यही नहीं अपनी नस्ल भी भूलने लगते हैं हम ...। मैं 'मिसेज शर्मा' के सिवा क्या हूँ, बेटा ? तेरे पिता की पत्नी...न औरत हूँ न मनुष्य, केवल पत्नी। इसी रूप में तेरे पिता के परिवार में शामिल हूँ।"[10] मैत्रेयी पुष्पा पूरी आत्मकथा में 'स्व' की तलाश करती नजर आ रही हैं। किसी स्त्री के लिए आत्मकथा संपर्क बनाने का जरिया है, दुनिया और अपने परिवेश की व्याख्या का जरिया है। अपनी स्थिति को

पहचानने का एक जरिया है। बदलाव की अभिव्यक्ति का भी जरिया है। स्त्री आत्मकथा दुनिया पर नियंत्रण की नहीं बल्कि बदलाव और परिवर्तन की माँग करती है। बार-बार मैत्रेयी अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए संघर्ष करती है लेकिन परंपराओं के जकड़न में फँसा समाज स्त्री की स्वतंत्रता का पुरजोर विरोध करता हुआ दिखाई देता है। मैत्रेयी कहतीं हैं कि, "बस परंपराओं का महान बंधन है, नहीं तो तेरी शादी में तेरे पिता निमंत्रण पत्र पर मेरा नाम न लिखवाते ? मेरा कितना मन था, अपनी बेटी की माँ के रूप में अपने नाम की पहचान कराने का, मगर यहाँ भी स्कूल रजिस्टर की तरह तेरे डैडी ही कर्ता रहे। मैं सिरे से गायब, श्रीमती आर. सी. शर्मा के रूप में ...।"[11]

डॉ. शर्मा पति पुरुष वर्चस्व की परंपरागत भूमिका में नजर आते हैं। वे इस बात से सर्वथा अनजान हैं कि जो विवाह उन्होंने किया वे बचपन से ही पिता से वंचित युवती से है। पुरुष के नियंत्रण से पूरी तरह मुक्त एक स्वाधीन स्त्री-प्रधान परिवार। "मैत्रेयी को माता-पिता द्वारा पुरुष प्रधान समाज के पति-पत्नी के रिश्ते की कोई स्मृति ही नहीं है। पति अपनी पृष्ठभूमि के कारण उसी रिश्ते को पाना और जीना चाहता है। लेखिका इस पति को समझने में मनोवैज्ञानिक रूप से अयोग्य है।"[12] इसके परिणामस्वरूप असुरक्षा का शिकार पति उसे अपने नियंत्रण में बनाए रखने के लिए हाँफता और थकता रहता है। पूरी आत्मकथा में मैत्रेयी के लिए पति और दाम्पत्य एक दमनकारी, कुण्ठित कर देनेवाली सत्ता के रूप में सामने आता है। उनका अचेतन विद्रोह और प्रतिशोध की उस सीमा तक पहुँचते-पहुँचते ठिठक कर रह जाता है, "जहाँ स्त्रियाँ प्रेम और मुक्ति के नाम पर अपने तानाशाह पति से बदला लेने के लिए दूसरे पुरुषों की बाहों में समा जाती हैं, अपनी देह को दूसरे को सौंपकर कि मैं इसकी संपत्ति दूसरे पुरुषों को सौंपकर उसे वंचित कर रही हूँ।"[13] मैत्रेयी इस पुरुष प्रधान समाज से टक्कर लेना चाहती हैं। वे कहती हैं कि, "भूल गई मैं अपने घर में बन्द होकर चोट खाई नागिन की तरह क्रुद्ध रही हूँ। उन सबसे बदला लेने की बात सोचती रही हूँ, जिन्होंने इस धरती पर लड़कियों का जीवन मुहाल कर दिया।"[14]

मैत्रेयी का व्यक्तित्व दबंग, अक्खड़, विद्रोही एवं प्रगतिशील रहा है। उनमें अदम्य साहस एवं निडरता कूट-कूट कर भरी दिखाई पड़ती है। स्वचिंतन की गहराई ने उन्हें निर्णय क्षमता दी है। ग्रामीण पृष्ठभूमि की लड़की होकर भी मैत्रेयी सहशिक्षा के कॉलेज में पढ़ी और लड़कों से मैत्री संबंध बनाए। उन्होंने माना कि, "वहाँ मैंने यह तजुर्बा किया कि साथ पढ़नेवाले लड़कों से कई-कई गुणा यह खतरनाक शिक्षक और प्रिंसिपल थे। मैंने मुठभेड़ भी की, लेकिन हर समय की मुठभेड़...मैं स्कूल में कब तक रह पाती? अत: ऐसे मौकों से बचती, जहाँ मर्द के साथ एक कमसिन लड़की अकेली पड़ जाए। ऐसा करते-करते यह बात मेरी आदत में शुमार हो गई।"[15] मैत्रेयी पुष्पा यह मानती हैं कि स्त्री अस्मिता बचाए रखने में स्त्री शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। शिक्षा ही वह हथियार है जिससे स्त्री अपनी अस्मिता को इस पुरुषवादी समाज में बचा कर रख सकती है। वे कहती हैं कि "किताबों ने भी यही बताया कि संतोष पराधीनता का दूसरा नाम है। एक ढ़र्रे पर खड़ी रहो, रेल की पटरियों सा ढ़र्रा, जिन पर चला नहीं जाता, सिर्फ लुढ़का जाता है, ऐसे इतिहास को तुम अस्वीकार करोगी। खुद को बदलोगी, तब दिखलाई पड़ेगा कि एक दिशा निकली है, जिधर आजादी है। स्वतंत्रता तुम्हारा स्वागत करेगी।"[16]

आजादी के पहले पढ़ी-लिखी महिलाओं का प्रतिशत काफी कम था लेकिन स्वतंत्रता के बाद कन्या विद्यालयों की जोरदार शुरुआत हुई। शिक्षा प्राप्ति के बाद महिलाओं में जागरुकता आई है लेकिन अभी भी उसे ग्रामीण परिवेश एवं शहरी परिवेश में सामंजस्य बिठाने में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पढ़े-लिखे होने के बावजूद स्त्रियों को पुरुषों की मदद लेनी पड़ती है। इस संबंध में मैत्रेयी जी ने कहा है, "रास्ते कहाँ खोजूँ , कौने से रास्ते... मेरी दुनिया पढ़ने लिखने के माहौल से कट चुकी है, माताजी। यहाँ तुम्हारा

दामाद ही मेरा पथप्रदर्शक है। दोस्तों में व्यवहार करना, पार्टियाँ करना और पार्टियों में जाकर सलीके से पेश आना मुझे सिखा रहा है। लंच-डिनर में तुम्हारी बेटी के एम.ए. वाले सनद सर्टीफिकेट नहीं दिखते, उसका चेहरा और बाहरी व्यक्तित्व आकर्षक लगना लाजिमी है। मुझे अपना अनपढ़ और गँवार चेहरा सँवारने के निर्देश मिले हैं।"[17]

इस आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी किशोरावस्था, वैवाहिक जीवन और लेखक बनने की कथा का यथार्थ चित्रण पेश किया है। वे पी-एच.डी. करना चाहती थीं पर पति द्वारा इसका बार-बार विरोध किया जाता था। पति डॉ. शर्मा उन्हें ताने मारने से कभी चूकते नहीं हैं, "किताबों का गृहिणियों के घर क्या काम के सिद्धांत को लेकर चलता है हमारा परिवार ! हर सदस्य के लिए गृहिणी हर समय उपलब्ध रहनी चाहिए। किसी भी मदद, जरूरत, सुविधा और शिकायत की बात सुनने के लिए, भले ही वह उसके अपने ही खिलाफ क्यों ने पड़े।"[18] पति डॉ. शर्मा द्वारा हर नाजायज तरीके से इसे रोक दिया गया कभी हतोत्साहित करके तो कभी इंटरव्यू लेटर छिपाकर उनके आगे पढ़ने की लालसा को एक स्वप्न में तब्दील कर दिया।

मधुर दाम्पत्य संबंधों की नींव पति-पत्नी की प्रकृति, आपसी समझ-बूझ एवं पारिवारिक परिस्थितियाँ है। पहले विवाह का लक्ष्य व्यक्ति के स्थान पर परिवार का सुख-संतोष हुआ करता था किन्तु आधुनिक काल में व्यक्तिवादी चिंतन प्रणाली ने विवाह को व्यक्ति सापेक्ष बना दिया है। आज विवाह में व्यक्ति की इच्छा को महत्व दिया जाता है। वैयक्तिक सुख-संतोष का विचार कर आज विवाह संपन्न होते हैं। पति-पत्नी अपने-अपने हितों की रक्षा करते हुए दाम्पत्य जीवन को बनाए रखने की कोशिश करते हैं। छोटी-छोटी बातों को लेकर शुरू हुआ झगड़ा दाम्पत्य जीवन में बड़े से बड़े कलह का रूप धारण कर लेता है। मैत्रैयी कहती हैं, "कलह शुरू हुई उनके पास संस्कारों के हथियार थे। सीता का उदाहरण था और मेरे पास अपने सफाई भी कसूर के रूप में. ..चन्दना कथा मेरे जेहन में... चुप्पी का सहारा लिए रहीं, चुप्पी को ही गुनाह में लिखा। गुस्सा पीकर होंठ सीकर कलह का माहौल बर्दाश्त हो जाए, यह जरूरी तो नहीं। जबकि सामने वाला रोटी भी क्लेश में लपेटकर खाए और नमक मिर्च पर झगड़ा शुरू कर दें।"[19] दाम्पत्य जीवन में स्त्री-पुरुष को परिवार रूपी गाड़ी के दो पहिए माना जाता है। दोनों साथ-साथ चलेंगे तो विकास, उन्नति संभव है पर परंतु पुरुषवादी अहं, विषम सामाजिक परिवेश, रूढ़ि परम्पराओं का दबाव आदि के कारण पति-पत्नी साइकिल के पहिए की भाँति एक आगे और दूसरा पीछे होता है। दोनों की मानसिकता अलग-अलग होती है। दोहरे मानदंडों को निश्चित करने वाले समाज ने नारी के श्रम को गौण और पुरुष के श्रम को श्रेष्ठ माना है। घर का काम, चूल्हा-चौका, बर्तन माँजना, बच्चों की परवरिश नारी का कार्य माना जाता है। इस काम को पुरुष हीन काम मानकर स्त्री को हीन, गौण मानता है। उस पर अत्याचार करता है। नारी के काम में सहयोग देना उसे अपमानजनक लगता है।

ग्रामीण समाज शिक्षा, नौकरी, धन प्राप्ति हेतु नगरों की ओर जा रहा है। वहाँ आवास की समस्या के कारण परम्परागत परिवार को बनाए रखना कठिन प्रतीत हो रहा है। परिणामस्वरूप एकल परिवार को योग्य समझा जाने लगा है। मैत्रेयी के पति डॉ. शर्मा भी बेहतर जीवन शैली व्यातीत करने के उद्देश्य से छोटे शहर की डॉक्टरी छोड़कर दिल्ली के एम्स जैसे उच्च संस्थान में नौकरी करना पसंद करते हैं लेकिन नगरों की भ्रष्ट नकल करने वाले और दिखावे को महत्व देने वालों के कारण परिवारिक जीवन मे टकराहट बढ़ रही है। पुरुष तो शहरी माहौल से जल्दी सामंजस्य बैठा लेता है लेकिन स्त्रियों को सामंजस्य बैठाने में समय लगता है। मैत्रेयी के साथ भी कुछ ऐसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई, "सन् 1967 दिसम्बर की मोहक दोपहर और मैं धानी रंग की साड़ी के साथ सुआपंखी रंग की ब्लाउज पहने हुए। चेहरे पर स्नो और होंठों पर लिपिस्टिक। बालों की दो लंबी और मोटी चोटियाँ अपनी पतली कमर पर छोड़ी हुई। पति ने ऐसे देखा जैसे कह रहे हों अपना कस्बाईपन कब

छोड़ोगी? अब अलीगढ़ का माहौल तुम्हें नहीं जकड़ रहा। उनकी आँखों की भाषा के साथ ही मेरे भीतर अपराध बोध उगने लगा। मैं...मुजरिम सी...सिर झुका लिया।"[20]

अपने पति से लेखिका की लाख असहमति होते हुए भी उसे अपने दुश्मन के रूप में चित्रित नहीं करती हैं। उन्होंने यह माना भी है कि वे पति के अलावा और किसी से नहीं डरती हैं। मैत्रेयी कहती हैं कि, "कहानी लिखने की धुन ऐसी चढ़ी कि यह भी भूल गई कि डॉक्टर साहब के सामने मैं लिखने का काम नहीं किया करती। लिखने का समय आ जाए तो जल्दी से जल्दी कागज को बिस्तर के गद्दे के नीचे छिपा देती हूँ।"[21] वे परिवार तो चाहती हैं किन्तु एक ऐसा परिवार जहाँ सब बराबर हों, जिसमें स्त्री गुलाम और दासी न मानी जाए उसका एक स्वतंत्र अस्तित्व हो।

मैत्रेयी पुष्पा की बेटियाँ नम्रता और मोहिता ने उन्हें लिखने की प्रेरणा दी, लेकिन लेखन के क्षेत्र में भी उनका अनुभव कोई सुखद नहीं रहा। मैत्रैयी अपनी रचनाओं को पति से छिपाकर प्रकाशित करवा रही थीं लेकिन वहाँ भी उन्हें संपादकों की यौन तृष्णाओं वाली दृष्टि का नंगापन देख वितृष्णा हो गई। हर किसी को उनमें दिलचस्पी अधिक थी उनकी रचनाओं में कम। पत्र-पत्रिकाओं या अखबारों के दफ्तरों में उनको जिन स्थितियों से गुजरना पड़ा इससे उनके मन में वितृष्णा के भाव उत्पन्न होने लगे। मैत्रैयी कहती हैं, "सह सम्पादक जी आए, दबे पाँव चल रहे हों जैसे। चोर नजरों से देखते हुए मेरे सामने वाली कुर्सी पर बैठ गए। आँखो में लुकता-छिपता सा भाव, जैसे मैं पति को धोखा देकर उन तक पहुँची हूँ और शायद उनके सम्मिलन के लिए कोई एकान्त कमरा भी... ऐसा ही कुछ निकला था मुँह से।"[22]

जब लेखिका पति डॉ. शर्मा के बहाने पुरुष मानस और सत्ता की उन मिथ्या प्रतिष्ठाओं से पाठक का सामना कराती है तो यह आत्मकथा पाठक को झकझोरती है। आत्मकथा मे लेखिका ने अपने बेबाक वर्णनों से प्रमाणित किया है कि वे साहसी और बेखौफ हैं, उनमें सच कहने की हिम्मत है। वे कहती हैं, "सह संपादक जी के इशारों पर नाचती कठपुतली सी कभी इस होटल तो कभी इस रेस्टोरेंट ...कभी उनकी इच्छा के अनुसार उनके जाने-पहचाने एकान्त कोने और चायघर तो कभी अपने बेबसी से उबरने के उपायों में लोगों से भरी कॉफी शॉपों में...यह डाल-डाल और पात-पात का खेल, स्त्री जीवन के दाँव-पेंच यहाँ साहित्य में भी ? ऐसी ही होती है लेखिका के जीवन की नियति ?"[23]

इसी हिम्मत की बदौलत उन्होंने डॉ. सिद्धार्थ और राजेन्द्र यादव के साथ अपने संबंधों को बेबाकी के साथ स्वीकार किया है। अपने पति के उन मानसिक हालातों का भी स्पष्टता से चित्रण किया है जो अपनी पत्नी की सफलताओं पर गर्व और यश को लेकर उत्साहित तो है मगर उसके संपर्कों को लेकर हमेशा सशंकित रहते हैं। राजेन्द्र यादव ने शुरू-शुरू में तो उनकी उपेक्षा की किंतु बाद में उन्होंने मैत्रेयी पुष्पा के लेखन को विकसित करने में काफी सहयोग दिया। घर में आना-जाना बढ़ा तो पति डॉक्टर साहब इस व्यक्ति की पत्नी मैत्रेयी के साथ बढ़ती हुई नजदीकियों पर ताने कसते रहे। कुछ आलोचकों ने कहा कि इस आत्मकथा ने लेखिका ने राजेंद्र यादव प्रसंग में जितना बताया है, उससे अधिक छिपाने की कोशिश की है। राजेंद्र यादव को लेकर तनाव पति-पत्नी के बीच दिखाई पड़ता है। राजेंद्र यादव ने मैत्रैयी से अपने संबंध को सखा-सखी भाव की संज्ञा दी है जैसे कृष्ण और द्रौपदी। राजेन्द्र यादव के साथ अपने संबंध और उनके व्यक्तित्व के बारे मैत्रैयी का मानना है कि, "पता नहीं लोग क्यों राजेन्द्र जी को स्त्रियों के लिए बदनाम करते हैं, मुझसे तो उन्होंने केवल इतना कहा, सिर उठाकर बात करिए मैत्रेयी पुष्पा, कहानी लिखती हो, हमसे कहानी पर बहस करनी होगी।"[24]

इस आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा स्त्री विमर्श को एक नई दिशा प्रदान करती नजर आ रही हैं। इन्होंने जैसा

कि आमतौर पर होता है पुरुषों के खिलाफ आवाज बुलंद करने का काम नहीं किया है बल्कि वे यह स्थापित करने का प्रयत्न करती हैं कि उसे बराबर की हिस्सेदारी मिले, स्वतंत्रता मिले। तभी तो मैत्रेयी कहती हैं कि, "जो भी हुआ, यही मेरे जिंदगी का रूप है। यही सम्बल है। यही जीवन का आधार...'त्रिया चरित्र' कहो तो कह सकते हो। इस पौराणिक शब्द को मैंने गाली नहीं माना, इसे मैं 'सर्वाइविल ऑफ फिटेस्ट' मानती हूँ। जिंदगी को बचाकर रखने का तरीका।"[25] यह एक लोकतांत्रिक माँग है जिसमें स्त्री को सह नागरिक का दर्जा मिल सके। मैत्रेयी पुष्पा अपने पति से असहमति जरूर रखती थीं लेकिन वे उन्हें दुश्मन नहीं मानती थीं। कुछ मामलों में मैत्रेयी को डॉक्टर साहब की महानता का सबूत मिलता है। जब मैत्रेयी ने एक के बाद एक तीन लड़कियों को जन्म दिया, तो उनकी वही गति हुई जो आमतौर पर ऐसी स्त्रियों की होती है। गाँव जाने पर उन्हें पता चला कि डॉक्टर साहब की वंश-परंपरा को बचाने के लिए उनकी दूसरी शादी की सामूहिक तैयारी चल रही है। पहला विरोध लेखिका की माँ की ओर से आया और निर्णायक प्रतिवाद डॉक्टर साहब की और से "यार, तुम्हारा गाँव है यह ? मूर्खों का झुंड !' यह एकमात्र मौका था, जब मैत्रेयी को उनके प्यारे गाँव ने हक्का-बक्का कर दिया। इसके बाद अवसाद तेजी से लहराता हुआ आया उस रेतीले दूह पर, जहाँ मैत्रेयी अवसन्न खड़ी थी। यदि हताशा के उस माहौल में उनकी बेटियों नम्रता और मोहिता ने उनका हाथ पकड़ कर उन्हें उठाया न होता और लिखने की सबल प्रेरणा न दी होती तो शायद लेखिका के रूप में मैत्रेयी का जन्म लेना असंभव सा था।"[26]

मैत्रेयी पुष्पा का पारिवारिक संघर्ष यह बताता है कि पुरुष अभी तक स्त्री का सच्चा साथी नहीं बन पाया है। एक स्नेहपूर्ण, आत्मीय साथी की तालाश मे स्त्री अभी तक भटक रही है। बीसवीं सदी का अंतिम दशक स्त्री की आवाज बनकर आया। पारम्परिक लज्जा व मौन से उबरकर स्त्री ने अपने लिए बोलना शुरू किया। स्त्री ने जब पीछे मुड़कर देखा और पाया कि परिवार ही नहीं संस्कृति और इतिहास से भी वह निष्कासित है। अब तक पुरुष प्रदत्त जिन अत्याचारों पर वह लज्जावश बंद रहती थी, उन पर स्त्री ने साहस पूर्वक अपनी आत्मकथा के माध्यम से बोलना आरंभ किया। सभी स्त्री आत्मकथाकारों का जन्म, परिवेश, पारिवारिक और सामाजिक स्थितियाँ अलग-अलग हैं लेकिन सबका आत्मकथा लेखन का उद्देश्य औरत की जिंदगी को स्पष्टता से समझाने और उनके बारे में एक मानवीय दृष्टिकोण अपनाने का है। मैत्रैयी पुष्पा का यह मानना है कि स्त्री को घर भी चाहिए और परिवार भी। उनका स्त्रीवाद इन संरचनाओं का विरोधी नहीं है।

संदर्भ :

1. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, निवेदन वाले भाग से, पृ. 8
2. महिला आत्मकथा लेखन में नारी, डॉ. रघुनाथ गणपति देसाई, पृ. 120
3. महिला उपन्यासकारों के उपन्यास में नारीवादी दृष्टि, डॉ अमर ज्योति, पृ. 108
4. कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रयी पुष्पा, 'इसे उपन्यास कहूँ या आपबीती' भाग से
5. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 19
6. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 13
7. वही, पृ. 12
8. वही, पृ. 17
9. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 15
10. गुड़िया भीतर गुड़िया- मैत्रयी पुष्पा, पृ. 130
11. वही, पृ. 131

12. संवेद, जुलाई-2012, पृ. 18
13. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रयी पुष्पा वही, पृ. 18
14. वही, पृ. 122
15. वही, पृ. 312
16. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रयी पुष्पा वही, पृ. 304
17. वही, पृ. 47
18. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 19
19. वही, पृ. 285
20. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 26
21. वही, पृ. 190
22. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 176-77
23. वही, पृ. 185
24. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 333
25. वही, पृ. 350
26. मैत्रयी पुष्पा : स्त्री होने की कथा, सं. विजय बहादुर सिंह, पृ. 268

●●●

कामायनी की भाषिक प्रतीकात्मकता

❍ त्रिपुरेश गोंड[1]

जयशंकर प्रसाद हिंदी के युग प्रवर्तक कवि और साहित्य सर्जक तो थे ही, एक असाधारण समीक्षक और दार्शनिक भी थे। प्रसाद का समय एक तरफ नव्य वेदांत दर्शन के प्रचलित होने का समय है तो दूसरी ओर, इसी समय मार्क्स, फ्रायड, स्पेंसर जैसे पश्चिमी दर्शनिक भी भारतीय बुद्धिजीवियों की चिंतन प्रणाली को प्रभावित कर रहे थे। प्रसाद ने अपने समय के अन्य कवियों की तरह इन प्रभावों का संश्लेषण किया है, उन का मूल दर्शन भारतीय परंपरा से जुड़ा आनंदवाद है किंतु उसके साथ उन्होंने कई पश्चिमी तथा भारतीय दर्शनों का समन्वय स्थापित किया है, उनका महत्व इस दृष्टि से बहुत अधिक है कि वह इतिहास की सूखी रूप-रेखा पर तत्कालीन व्यापक उन्नति के कारणों और रहस्यों का रंग चढ़ा देते हैं। कोरी भौतिक घटनाओं का इतिहास या कोरा पारमार्थिक दर्शन उनके लिए कोई महत्व नहीं रखता।

कामायनी प्रसाद के कृतित्व की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है, इसमें सर्वांगीण जीवन दर्शन, नारी-पुरुष का सम्पूर्ण चित्रण एवं नई परिस्थितियों का व्यापक निरूपण है। नये ज्ञान का विस्तृत उपयोग इसमें किया गया है। कामायनी में कवि प्रसाद ने आदि मानव का आख्यान लिया है, उसमें प्राचीन कथावस्तु लेकर नये उपकरणों में सज्जित किया है। कथानक में मनोविज्ञान के साथ मानव सभ्यता के विकास का वैज्ञानिक चित्र भी दिखाया गया है। इस प्रकार काव्य का कथानक तो नये विज्ञान का उपयोग करता है, उसे गति और विस्तार देता है। इसे विज्ञान सम्मत विकास की सार्थकता और आलोक देने के लिए कवि ने भारतीय दर्शन का सुंदर उपयोग किया है, उसी के अनुरूप कामायनी में दो नारी चरित्र भी हैं। एक श्रद्धा, भारतीय भावना और दर्शन की प्रतिनिधि, दूसरी इड़ा, नये वैज्ञानिक आकाश का प्रतीक। इन दोनों का संतुलन और समन्वय नवीन भारतीय संस्कृति को कामायनी के कवि की नई देन है।[1]

कामायनी की कथा का अध्ययन करने से यह प्रमाणित होता है कि उसकी कथा में अप्रस्तुत अर्थ व्यक्त करने हेतु प्रसाद ने अपनी ओर से अधिक प्रयत्न नहीं किया है, क्योंकि उसमें प्राचीन काल से ही रूपक-तत्व

---

1. शोध छात्र, दल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली; ईमेल : tripureshgond@gmail.com

भर दिया गया था। उन्होंने कामायनी के ऐतिहासिक स्वरूप को उद्घाटित करते हुए गौण रूप में उसके प्राचीन रूपात्मक स्वरूप को भी स्वीकार कर लिया है। क्योंकि उस प्राचीन आख्यान में निहित इतिहास के रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है और प्रसाद उसके भाषा मूलक रूपक तत्व को स्वीकार करने का मोह त्याग सके हैं।[2]

कामायनी के संबंध में बात करते समय हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रसाद जी इड़ा, श्रद्धा, मनु आदि की ऐतिहासिक सत्ता भले ही स्वीकार करें, काव्य ग्रंथ में इन तीनों का जो मानव चरित्र स्थापित हुआ है, उसी के आधार पर कामायनी की व्याख्या की जा सकती है। साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि लेखक मनु, श्रद्धा और इड़ा को अपनी दार्शनिक मनोवृत्तियों के अनूकूल चाहे जैसा प्रतीकत्व प्रदान करें, कामायनी में वर्णित मानव चरित्र ही वह मूल तार है जिसके द्वारा हम पात्रों पर आरोपित प्रतीकत्व के औचित्य अथवा अनौचित्य की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। अत: कामायनी के सत्य को पाने के लिए हमें अंकित मानव चरित्रों की वास्तविकताओं को समझना होगा। उसके अनन्तर ही हम यह कह सकेंगे कि मनु वस्तुत: मानव के मन के प्रतीक हैं।

कामायनी के प्रतीक संरचना के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण संकेत के आरम्भ में रचनाकार के निम्नलिखित कथन से मिलता है- "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है, इसलि मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक महत्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का संबंध कमशा: श्रद्धा और इड़ा से लग जाता है। इन्हीं सब के आधार पर कामायनी की सृष्टि हुई है।"[3]

डा. नगेंद्र ने कामायनी को रूपक काव्य माना है। वे स्पष्ट करते हैं कि कामायनी रूपक के दो परंपरागत अर्थों, समस्त दृश्य काव्य तथा उपमान उपमेय, के आरोप संबंध से युक्त साम्यमूलक् अलंकार के अर्थ में रूपक नहीं है। रूपक का एक दूसरा अर्थ भी है जिसे कथारूपक (एलेगरी) कहा जाता है। इसका तात्पर्य ऐसी रचना से है जिसकी कथा द्वयअर्थक हो, जिसका एक अर्थ प्रस्तुत तथा दूसरा अप्रस्तुत हो।[4] कामायनी इसी अर्थ में रूपक काव्य है। डाक्टर नगेंद्र ने कामायनी के प्रतीकों की व्याख्या निम्नलिखित पद्धति से की है,

"यह जलन नहीं सह सकता मैं, चाहिए मुझे ममत्व,
इस पंचभूत की रचना में, मैं रमण करूं बन एक तत्व।
अहंकार की स्थित में वह स्वार्थ केंद्रित है-
"वह, गुहा, कुंज, मरु, अंचल में,
हूं खोज रहा अपना विकास।"

श्रद्धा : श्रद्धा उदात्त भावनाओं की प्रतीक है। वह विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति है। यह अहंकार या बौद्धिकता के विपरीत मन की उदत् भावनाओं जैसे समर्पण, त्याग, ममता दया आदि का प्रतिनिधित्व करती है-

"दया, माया, ममता, लो आज, मधुरिमा लो आगाध विश्वास।
हमारा हृदय-रत्न-निधि स्वच्छ, खुला है आज तुम्हारे पास।"

इड़ा : इड़ा तर्क बुद्धि की प्रतीक है। आरंभ में यह भेद बुद्धि की तरह कार्य करती है लेकिन बाद में यह विश्वास युक्त मार्ग अपना लेती है। इसका आरंभिक परिचय ही है-

"बिखरी अलके ज्यों तर्क जाल"

कुमार (मानव) : कुमार श्रद्धा और मनु का पुत्र है जो इड़ा के साथ रहकर बड़ा होता है। यह इस बात

का परिचायक है कि मानव के विकास के लिए तार्किकता भी आवश्यक है। आकुति- किलात- ये दो राक्षस हैं जो आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं, इनका उल्लेख दो स्थलों पर है; पहला जब वे मनु को हिंसा के लिए प्रेरित करते हैं एवं दूसरी जब वे मनु के विरुद्ध प्रजा के विद्रोह का नेतृत्व करते हैं। इस तरह से पहले मनुष्य को दुष्कर्म के लिए प्रेरित करते हैं तथा बाद में उस दुष्कर्म के लिए परिणाम की भयानकता को बताते हैं।

देव : देव अबाध इंद्रियभोग के प्रतीक हैं। ये निर्बाध सुख व संतुष्टि के पोषक हैं जो अंततः प्रलय का कारण बनती है।

"सुख केवल सुख का वह संग्रह केंद्रीभूत हुआ इतना,
हो रहा या मोह, करुणा से सजीव सनाथ।"

वृषभ : यह भारतीय परंपरा में धर्म का प्रतीक है। कामायनी में वृषभ को सोमलता से युक्त बताकर वैराग्य मूलक धर्म के स्थान पर प्रवृत्ति मूलक धर्म की स्थापना की गयी है।

'या सोमलता से आवृत्त, वृष धवल धाम का प्रतिनिधि'

जल प्लावन की घटना अत्यधिक इंद्रियलिप्सा के कारण होने वाले प्रलय का प्रतीक है। त्रिलोक मानव चेतना की तीन प्रवृत्तियों ज्ञान, क्रिया व इच्छा के समूह का प्रतीक है, जिनका समन्वय श्रद्धा के द्वारा हुआ है। कैलाश पर्वत आनंदमय कोश या समरसता का प्रतीक है। सारस्वत प्रदेश विज्ञानमय कोष का प्रतीक है, जहाँ बौद्धिकता एवं तार्किकता की प्रधानता है।

"जा बुद्धि कहे उसको ना मानकर फिर नर किसकी शरण जाए"

डॉ० नगेंद्र का मानना है कि कामायनी के प्रतीक पारंपरिक के साथ-साथ आधुनिक अर्थ भी रखते हैं। भाववृत्ति धर्म, कला से युक्त संस्कृति की परिचायक है; कर्मवृत्ति राजनीति एवं अर्थव्यवस्था की तथा ज्ञानवृत्ति दर्शन एवं विज्ञान की प्रतीक है। इसी प्रकार, आधुनिक अर्थ बोध की दृष्टि से मनु उस पूंजीवादी व्यक्ति का प्रतीक है जो वैयक्तिकता, सुखवाद अधिकतम अर्जन एवं लाभ पर बल देता है। इड़ा सभी सुखों के संग्रह का प्रतीक है। श्रद्धा अहिंसा की प्रतीक है।'

कुछ समीक्षकों की व्याख्या आनंदवादी दर्शन तथ दार्शनिक वृत्ति मानव से किए जाने का विरोध किया तथा आधुनिक समाजसशास्त्री प्रतिमानों के आधार पर उसका निर्वचन किया। ऐसी पहली महत्वपूर्ण व्याख्या मुक्तिबोध ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक (कामायनी: एक पुनर्विचार) में की। आगे चलकर डॉक्टर नामवर सिंह ने इसी दृष्टिकोण का विस्तार किया तथा कामायनी के सारे प्रतीक आधुनिक जीवन से लिए गए हैं, ना कि पौराणिक या मिथकीय संदर्भों से।

डॉक्टर नामवर सिंह ने खुद यह सवाल उठाया है कि यदि कामायनी के प्रतीक आधुनिक जीवन से लिए गए हैं तो रचना में आधुनिक जीवन साफ नजर क्यों नहीं आता? उनके अनुसार इसका कारण यह है कि प्रसाद ने प्रतीकों पर रहस्यवाद का पर्दा डाल दिया है। वे आधुनिक समस्या को पहचान तो गए थे, किंतु यह नहीं समझ पाए की यह समस्याएं सिर्फ आधुनिक जीवन की हैं। उन्होंने इन समस्याओं को शाश्वत समझा, इसलिए उनका कारण मानसिक जगत में ढूँढ़ा, ना कि वास्तविक जगत में। बहुत खोजने के बाद उन्हें प्रतीत हुआ कि जड़ बुद्धिवादी चिंतन में है और बुद्धिवादी चिंतन की परंपरा उन्हें वैदिक युग में दिखाई दी। कामायनी के रूपक प्राचीन है, भाव शस्वत् है जबकि समस्याएँ आधुनिक हैं।

नामवर सिंह ने अपने आधुनिक तथ समाजशात्री दृष्टिकोण से कामायनी के प्रतीकों की व्याख्या की। उनके अनुसार देव सभ्यता का ध्वंस वस्तुतः 19वीं शताब्दी में हिन्दू राजाओं, मुसलमान नवाबों और मुगल बादशाहों

के समाप्त हो जाने का प्रतीक है। ये वर्ग नवीन युग की दृष्टि से अगतिमय रह थे, अत: अंग्रेजों ने इन्हें एक-एक करके तोड़ किया। प्रलय के बाद हिम से आच्छादित संसार पर उषा का आगमन नवजागरण का प्रतीक है जो सामंतवादी समा की जड़ताओं को तोड़ता है। हिमाच्छादन का हटना और वनस्पतियों का उगना यह दर्शाता है कि नवजागरण के दौरान कैसे समाज की नई शक्तियों ने प्राचीन रूढ़ियों का तोड़ दिया। मनु उनका संश्लिष्ट प्रतीक है जो मूलत: आधुनिक मध्यवर्गीय व्यक्ति है। यह नवजागरण का अग्रदूत भी है और आगे चलकर क्रांतिकारी दृष्टिकोण का प्रतीक भी बनता है। श्रद्धा और इड़ा क्रमश: भाव पक्ष और बुद्धि पक्ष का प्रतिनिधित्व करती हैं। मनु की चिंता नवजागरण के दौर में स्वर्णिम अतीत के नष्ट हो जाने के कारण अकेले हो जाने की चिंता है। श्रद्धा का आगमन उसकी आस्थापरक भावनाओं का उदय है तथा मनु और श्रद्धा का इन्द्र नवजागरण के दौर में चल रहे निराश और आशा का द्वन्द्व है।

हिंसा यज्ञ के संदर्भ में मनु और श्रद्धा का वैचारिक संघर्ष क्रांतिकारी आतंकवाद तथा गांधीवाद का संघर्ष है जो 1930 ई. के आसपास राष्ट्रीय आंदोलन को विफल कर रही थी जबकि मनु समाजवाद से प्रेरित क्रांतिकारी आतंकवाद का प्रतीक है जो हिंसा को अनिवार्य समझता है। मनु का श्रद्धा को छोड़ कर जाना क्रांतिकारी का गांधीवाद से मोहभंग है। पहली बार मनु की चिंता श्रद्धा ने दूर की थी किंतु इस बार इड़ा करती है जो तार्किकता की शक्ति है। यह साहित्य में प्रगतिवाद के आरंभ की सूचना है।"[6]

सारस्वत नगर का विकास औद्योगिक क्रांति तथा उनकी गोद में जन्में आधुनिक लोकतंत्र का प्रतीक हैं। मनु द्वारा इड़ा पर अधिकार स्थापित करने की कोशिश का प्रतीकात्मक अर्थ यह है कि लोकतंत्र के भीतर से ही किस प्रकार फासीवाद का उदय होता है। यहाँ मनु की पराजय फासीवाद के पराजय का प्रतीक है, किंतु मनु का श्रद्धा का प्रतीक है। इसी अंच श्रद्धा के प्रभाव में वह जीवन की वास्तविक समस्याओं के समाधान का उपाय काल्पनिक तथा मानसिक जगत में खोजता है जिसकी अभिव्यक्ति आनंद सर्ग में की गई है।

मानव (कुमार) प्रजातंत्र मूलक व्यवस्था का अग्रदूत है। उनके पालन-पोषण का दायित्व जान बूझ कर इड़ा को ही सौंपा गया है। क्योंकि आधुनिक सभ्यता भावनाओं से नहीं, तर्कबुद्धि से विकसित होती है। अन्य समाजशास्त्री समीक्षकों की तरह डॉक्टर नामवर सिंह को भी शिकायत है कि श्रद्धा एवं इड़ा की तुलना करते हुए प्रसाद मध्यकालीन विचारधारा के पक्ष में खड़े नजर आते हैं। प्रसाद ने अहिंसावादी श्रद्धा को तर्कमयी इड़ा से श्रेष्ठ बताया है किंतु कार्यों से इड़ा ही श्रेष्ठ नजर आती है। "नारी तुम केवल श्रद्धा[7] हो जैसे कथन शालीनता के नहीं अपितु नारी पराधीनता के हैं। नारी मुक्ति का स्वर तो इड़ा के व्यक्तित्व में दिखता है। जहाँ प्रसाद की सहानुभूति श्रद्धा के प्रति दिखाई पड़ती है, वहीं प्रगतिवादी समीक्षकों ने इड़ा को अधिक सम्मान दिया है।

स्पष्ट है कि नामवर सिंह ने कामायनी की लगभग सम्पूर्ण कथा को आधुनिक जीवन के प्रतीकों के आलोक में व्याख्या की है। व्याख्या में दो सीमाएं स्पष्ट दिखती हैं, प्रथम यह की निर्वेद सर्ग के बाद की व्याख्या अधूरी और उलझी हुई है, दूसरी समस्या यह है कि इस व्याख्या में समीक्षक रचनाकार पर हावी होता हुआ दिखता है। इसके बावजूद यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं कि डॉ० नामवर सिंह से प्रगतिवादी समीक्षक आधुनिक समाजवादी संदर्भ में कामायनी की प्रतीकात्मकता को खोलते हैं, कामायनी एक संश्लिष्ट अर्थ विधान वाली रचना है जिसमें प्रस्तुत कथा का महत्व कम किए बिना रचनाकार नये अप्रस्तुत अर्थों की शृंखला को भी जोड़ रखा है, किसी कृति में अर्थ बहुलता की संभावना उसकी रचनात्मकता का प्रमाण होती है। कामायनी की विशेषता यह है कि उसकी प्रतीक संरचना न सिर्फ पारम्परिक जीवन बल्कि आधुनिक जीवन को भी धारण करती हैं।[8]

कामायनी में रूपक तत्व संबंधी समस्त तथ्यों पर गौर करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि कामायनी में रूपक का जो विधान किया गया है वह औचित्यपूर्ण एवं संगत बैठता है। कामायनी के रूपक तत्व को अधिकांश विद्वानों ने स्वीकार किया है।

यह अवश्य है कि इसमें कुछ असंगतियाँ रह गई हैं, इससे बचने के लिए ही शायद प्रसाद जी ने कामायनी के आमुख में अपना मत प्रस्तुत किया है। कहा जा सकता है कि कामायनी में कथा, चरित्र और स्थानों के जो सांकेतिक अर्थ निकलते हैं वह सहज रूप में ही निकलते हैं। अत: काव्य की रूपकात्मकता सहज ही स्वीकृति की श्रेणी में आ जाती है।

संदर्भ :

1. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, बच्चन सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 153.
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, सं डॉ० नगेंद्र एवं डॉ० हरदयाल, मयूर पेपरबैक्स, पृ. 532
3. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, पृ. 39.
4. हिंदी साहित्य का इतिहास, सं डॉ हरदयाल, मयूर पेपरबैक्स, पृ. 532
5. हिंदी साहित्य का इतिहास और संवेदना का विकास, डा राम स्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 140.
6. हिंदी काव्य का इतिहास, डा० राम स्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 140.
7. आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास, नंद किशोर नवल, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. 232.
8. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डा० नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 53.

●●●

'शेखर : एक जीवनी' में शेखर के विद्रोह का स्वरूप

❍ सर्वेश कुमार[1]

अज्ञेय अपने पीढ़ी के उन कम लेखकों में से हैं जिन्होंने साहित्य सृजन के बाहर स्वयं 'रचनात्मक सृजन' को अपनी चिन्ता व मनन का विषय बनाया। एक लेखक के रूप में उनका विकासक्रम भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के चरमोत्कर्ष का समय है और साथ ही भारतीय पुनर्जागरण का वह दौर भी जिसमें नई परिस्थितियों की सटीक पहचान और उनके द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों का सर्जनात्मक प्रत्युत्तर देने का आत्मविश्वास भी अर्जित होता दिखाई देता है। यहाँ पर विचार करने के क्रम में हम प्रथमतया अज्ञेय के स्वातंत्र्य बोध पर विचार करने के तदुपरांत शेखर के विद्रोही व्यक्तित्व पर विचार करेंगे।

अज्ञेय अपनी मानसिक संरचना में बहुत हद तक 'बंगाल रेनेसेंस' के बुद्धिजीवियों के उत्तराधिकारी रहे हैं, और एम.एन. राय का राजनीतिक चिन्तन उनकी आरंभिक प्रेरणाओं में प्रमुख रहा है। मानवेन्द्रनाथ राय से सहमत होते हुए वह मानवीय स्वतन्त्रता को इतिहास का सारतत्व या उसकी केन्द्रिय प्रेरणा मानते हैं। अपने इस मन्तव्य की पुष्टि वह अधुनातन वैज्ञानिक शोध के आधार पर भी करते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जहाँ विकासवाद के सिद्धान्त का इस्तेमाल एकरेखीय कालबोध और इससे प्रसूत इतिहासवाद में मनुष्य को कैद कर देने के लिए होता रहा है, वहीं राय उसी विकासवाद को सिद्ध करने के लिए उद्धृत करते हैं, और अज्ञेय उसी में लोकोत्तर की भावना भी देख लेते हैं।

समय को नया मोड़ देने वाले लेखक में समय की वास्तविकता का बोध अनिवार्य है। इसलिए यह स्वाभाविक ही लगता है कि जहाँ स्वतन्त्रता की बहुआयामी तलाश अज्ञेय के रचना संसार का केन्द्रिय सरोकार है, वहीं एक लेखक के रूप में नई सामाजिक परिस्थिति और नई संप्रेषण-परिस्थिति के दबाव का भी पूरा अहसास उन्हें है। एक ओर उनका लेखन समकालीन संवेदन के सूक्ष्मातिक्ष्म स्तरों तक स्वातंत्र्य के भाव की प्रतिष्ठा करता है, तो दूसरी ओर एक ऐसी भाषा और रचना-रूपों का सर्जन भी करता है जो सम्प्रेषण की नई परिस्थितियों से उत्पन्न चुनौतियों का सर्जनात्मक प्रत्युत्तर हो सकें।

अज्ञेय ने 'वैयक्तिक स्वतन्त्रता' को सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि, यह

---

1. शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय; Sarveshkumar742@gmail.com

विद्रोह मात्र वैयक्तिक नहीं है और न उसकी व्याप्ति केवल राजनीतिक है बल्कि वह मानवीय सर्जनशीलता से प्रेरित है जो कि मानवीय स्वातंत्र्य का ही एक व्यापक आयाम है। विद्रोह, स्वातंत्र्य की तलाश और व्यक्तित्व की खोज के ये सरोकार 'शेखर: एक जीवनी' में पूरी तीव्रता और सान्द्रता के साथ व्यक्त हुए हैं।

अज्ञेय के संदर्भ में यह तथ्य काफी हैरान करने वाला होता है कि किसी लेखक का 'स्वाधीनता बोध' जो हर समय, हर देश में लेखन-धर्म की बुनियादी प्रतिज्ञा माना जाता रहा है; वही अज्ञेय को हिन्दी परिवेश में सबसे अधिक विवादास्पद बनाता रहा है? यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि अज्ञेय का स्वाधीनता बोध अमूर्त नहीं था। वह सीधा-सादा सृजन और कर्म की उन समस्याओं से जुड़ा था, जिनसे लगभग हर संवेदनशील लेखक जूझता है। इन्हीं संदर्भों के मद्देनजर निर्मल वर्मा का मानना है कि "अज्ञेय को 'अभिजात' मानने के पीछे कोई यह भावना नहीं थी कि वह किसी उच्च, सामंती वर्ग से आए थे, बल्कि उनका स्वभावगत स्वाधीन विवेक हमारी गुलाम मानसिकता में कहीं फिट नहीं हो पाता था। गुलामी एक सहज अवस्था है जबकि स्वतन्त्रता को अर्जित करने के लिए असीम संघर्ष करना पड़ता है।"

'शेखर एक जीवनी' में 'स्वातंत्र्य की खोज' का चित्रण है। ऐसा स्वयं लेखक का भाव है। अज्ञेय की समूची कला-साधना का केन्द्रीय तत्व है - "व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास, ऐसा स्वतन्त्र की दूसरों को भी स्वतन्त्र करे।" यही वह सत्य है जो अज्ञेय की रचनाओं में रागदीप्त हो उठा है और समीक्षात्मक लेखन में भी बार-बार उभरकर आया है। उनकी मान्यता है, "संस्कृति के विकास के लिए मानसिक स्वातंत्र्य अनिवार्य है, स्वतन्त्रता सहज ही शान्ति से अधिक मौलिक आवश्यकता है, क्योंकि शान्ति के नाम पर स्वतन्त्रता की बलि देने से स्वतंत्रता तो जाती ही है, शान्ति भी हाथ नहीं आती। नारों की ही बात करनी हो तो, "पहले स्वतन्त्रता बुरा नारा नहीं है। वह स्वयं भी प्राणवान है और प्राण फेंकने की भी क्षमता रखता है।" यहाँ स्मरणीय है कि अज्ञेय का स्वातंत्र्य दायित्व से निरपेक्ष नहीं है।

शेखर के विद्रोही व्यक्तित्व पर विचार करते हुए उसे अपनी सरलता हेतु केवल टुकड़े-टुकड़े में करके देखना यथा सामाजिक प्रणालियों, विवाह, प्रेम इत्यादि के विरुद्ध विद्रोह एक हद तक अनुचित होगा। शायद इससे वह कृति सम्पूर्ण न्याय से वंचित हो जाए। क्योंकि किसी के 'व्यक्तित्व' को अलग-अलग टुकड़ों में करके देखने की क्रियाविधि को उसके व्यक्तित्व का ट्रेलर कहा जा सकता है; जिसकी एक सीमा होती है, जिसके कारण हम या तो उस चरित्र के व्यक्तित्व की केवल एक विमा को जान सकेंगे या कुछ भी नहीं। जिससे व्यक्तित्व का समग्रता बोध खण्डित होता है, और रचना में निष्प्राणता उत्पन्न होती है।

जिस प्रकार हम मोतियों से बनी हुई माला को तोड़कर प्रत्येक मोती को अलग-अलग कर देने से उसके माला होने का बोध समाप्त हो जाता है ठीक उसी प्रकार किसी के व्यक्तित्व पर विचार करते समय यह सर्वविदित तथ्य हमें टुकड़ेबाजी करने से रोकता है कि व्यक्तित्व का निर्माण एक सतत् विकास की प्रक्रिया होती है। यहाँ विकास शब्द से तात्पर्य है कि 'अभी और बनना है।' इसलिए हम शेखर के विद्रोही व्यक्तित्व के सूत्रों पर विचार प्रथम भाग के प्रथम खण्ड से लेकर द्वितीय भाग के अंतिम खंड तक एक क्रमबद्ध रूप में करेंगे, क्योंकि सूत्रों की क्रमबद्धता को भंग करना केवल रचना के साथ ही नहीं बल्कि रचनाकार के विचारों के साथ भी नकारात्क छेड़छाड़ होगी।

जब हम शेखर के विद्रोही व्यक्तित्व पर विचार करते हैं तो हम देखते हैं कि उसका प्रथम विद्रोह उन रूढ़िवादी शक्तियों (भिक्षु अतिथि, ब्राह्मण, जाति-धर्म, पिता, माँ) के विरुद्ध दर्ज होता है जो उसके जन्म के समय उसके जन्मजात प्राकृतिक उन्मेष को काट-छाँट कर रूढ़ बनाने में लगे हुए थे। "बोध होने से पहले ही

बालक का जीवन एक रूढ़ि में बंध गया, बहुत से अनुभूत किन्तु सुदृढ़ बन्धन उसके जीवन में छा गये, वह बिक गया, कहते हैं कि मानव अपने बंधन आप बनाता है, पर जो बंधन उत्पत्ति के समय से ही उसके पैरों में पड़े होते हैं, और जिनके काटने भर में अनेक के जीवन बीत जाते हैं, उनका उत्तरदायी कौन है?" इन पंक्तियों में अज्ञेय का स्वभावगत स्वाधीन विवेक भी स्पष्टत: परिलक्षित होता है जो अधिकांश लोगों की गुलाम मानसिकता में हमेशा खटकता रहा। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि 'चेखव' अपने एक मित्र को पत्र लिखते हुए अपने बाल्यकाल के भंयकर अनुभवों के बारे में कहते हैं "तुम मेरे बारे में एक कहानी लिखो कि कैसे एक युवक को अपना समूचा यौवन बलिदान करके स्वाधीनता अर्जित करनी पड़ी... मैंने अपने भीतर के गुलाम को बूंद-बूंद निचोड़कर बाहर निकाला है।"

तदुपरान्त शेखर उन तीन महती प्रेरणाओं का उल्लेख करता है जो प्रत्येक मानव जीवन का अनुशासन करती हैं अहन्ता, भय और सेक्स। घास-फूस से मढ़े शेर से डरने वाला शेखर अपनी अहंता के बल पर ही अनुभव करता है कि डर डरने से होता है। डर पर आघात करने की बात यह विद्रोही के मन में ऐसे जम जाती है कि वह शासन के डर पर भी आघात कर तत्कालीन दण्ड व्यवस्था के प्रति विद्रोह दर्ज कराते हुए कहता है कि "फांसी क्यों? अपराधी को दण्ड देने के लिए। पर इससे क्या वह सुधर जाएगा? इससे क्या उसके अपराधों का मार्जन हो जाएगा? जो अमिट रेखा उसके हाथों खिंची है वह क्या उसके साथ मिट जाएगी? फाँसी दूसरों को शिक्षा देने के लिए। पर यह कैसी शिक्षा है कि जीवन के प्रति आदर-भाव सिखाने के लिए उसी की घोर हृदयहीन उपेक्षा का प्रदर्शन किया जाए। और, इससे भी कभी कोई सीखा है...।"

इसके बाद शिक्षा का दौर आता है। जहाँ यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि परम्परा का एक शिकंजा शिक्षा के रूप में व्यक्ति की गरदन को कसता है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि शिक्षा देना संसार अपना सबसे बड़ा कर्त्तव्य समझता है, किन्तु अपने मन की, शिष्य के मन की नहीं। जो कि प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व कुचलकर एक टाइप में रूपान्तरित कर देती है। जिससे वह मूल रचना न होकर प्रतिलिपि मात्र बना दिया जाता है। इस कारण शेखर शिक्षा के रूप में शिक्षण का तिरस्कार कर अवज्ञा सीखता है क्योंकि उसे यह ज्ञात हो चुका होता है कि "जो नियमों से नहीं चलते, किन्तु नियमों की मूल प्रेरणा को समझकर अपना नियम स्वयं बनाते हैं, जीवन तो उन्हीं का है।"

इसी कड़ी में उसे पक्षियों व जंगलों का संसार प्रभावित करता है- "उसके संसार के अलावा एक और संसार है, जिसमें पक्षी रहते हैं, जिसमें स्वच्छन्दता है, जिसमें विश्वास है, जिसमें स्नेह है, जिसमें सोचने की या खेलने की अबाध स्वतन्त्रता है, जिसका एकमात्र नियम है, 'वही होओ जो कि तुम हो।' "कितना उन्मुक्त होगा वह स्थान जहाँ सब कुछ तो स्वतन्त्र होगा ही, ये पौधे भी स्वच्छन्दता से उग-फूल-फल सकेंगे और तब उसकी कल्पना के स्वर्ग को एक मूर्त आकार भी मिला, और एक नाम भी मिला जंगल ...।" उपरोक्त दोनों उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि स्वतन्त्रता के प्रति पैदा इस आकर्षण के कारण ही बन्धन डालने वाली हर शक्ति के प्रति उसमें तिरस्कार के फलस्वरूप विद्रोह है। पक्षियों के संसार से प्रभावित होकर वह सोचता है कि "उस तोते की तरह, वह भी पंख नहीं फड़फड़ाता कि पिंजरे से चोट न लगे।... पर क्या उसकी आत्मा भी बद्ध है, क्या उसके भी चोट लग सकती है, क्या वह भी पंख नहीं फड़फड़ा सकती?"

इसी क्रम में हम देखते हैं कि जाति-व्यवस्था के संदर्भ में रसोइए का प्रसंग जहाँ हास्यास्पद है, वहीं दलित जाति की फूलां और उसकी माँ का प्रसंग गहराई से शेखर को जाति-व्यवस्था के प्रति कुरेदता रहता है - "यदि यह छोटी जात है, तो वे इसे छिपाते क्यों नहीं? क्या कारण है कि माँ अपनी बेटी को बार-बार याद दिलाती

है? और, और माँ के स्वर में अभिमान भी होता है।" रूढ़ि व अज्ञानता के मिश्रण से ऊपजी इस समस्या को और अधिक स्पष्ट करते हुए अज्ञेय कहते हैं कि "आत्माएँ इस सम्बन्ध में इस तरह जकड़ी गयी हैं कि वे स्वयं नहीं जानते कि वे किस शृंखला में बँधे हैं और स्वयं उसकी कड़ियाँ पक्की करने में सहायक होते है..."

असल में शेखर जैसा जन्मजात विद्रोही का व्यक्तित्व कुछ ऐसा तरल परिवर्तनशील और संवेदनशील होता है कि हर नया सौन्दर्यानुभव उसके लिए अपने व्यक्तित्व को अतिक्रांत करने का और नए स्तर पर उसे पुनः संगठित करने का कारण बनता है। सौन्दर्य में हरखना, लय में डूबना, महावीर की नग्न प्रतिमा में सौन्दर्यानुभव करना शांति की मधुर शीतल साँस मानो उसके मन पर एक हल्का-सा परिमल बिखेर गयी। सारनाथ के अजायबघर की नीरवता में खो जाना वह एक भव्य सुन्दर आनन्दमयी विह्वल शांतियुक्त, आत्मविस्मृत स्वीकृति में बैठा रहा, बैठा रहा, बैठा रह गया। वह सौन्दर्य की अनुभूति का एकांत क्षण भी किसी विद्रोह से कम नहीं है। क्योंकि वह सर्वव्यापी जड़ता के प्रति विद्रोह है। असल में पैदाइशी कलाकार जड़ता को अतिक्रमित कर हर क्षण विद्रोह ही करता है। तैरते समय पानी को चीरने वाली पंखयुक्त काँपते हुए बाण की तरह अग्रसरण करने वाली गति के आकर्षण में तन्मय होकर पानी में कूद पड़ने वाला शेखर मृत्यु को पदार्थ मानकर सदैव चुनौती की स्थिति में रहता है तार्किक दृष्टि से नास्तिकता से भी महत्वपूर्ण यह विद्रोह है।

शेखर के जीवन में मातृपक्ष की भूमिका अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। कुछ घटनाएँ है माँ के उस पर अविश्वास की, जिससे उसे चोट पहुँचती है, घृणा हो जाती है। उसी के शब्दों में "पिता आवेश में आततायी हैं और, माँ आवेश की कमी के कारण निर्दया।" किंतु आवेश उतर जाने पर पिता मित्रवत् लगने लगते हैं। शेखर को अपने पिता से सहानुभूति है, माँ से नहीं। किंतु एक घटना ऐसी घटती है जिसके कारण पिता भी शेखर की नजरों में गिर जाते हैं। गाँधी जी की अहिंसा को लेकर बालक शेखर की जो भद्द उड़ती है पिता के एक मित्र के सामने, उसके बाद "गाँधी जी गये, गाँधीवाद भी गया और शेखर के देवता उसके पिता भी फिर वहीं कभी नहीं हुए।"

परिवार, मुक्तिकामी और स्वतन्त्रचेता व्यक्ति को अनेक सूक्ष्म लेकिन चीमड़ धागों से बाँधता है। माता-पिता की सुरक्षितता का कवच, आर्थिक आश्रय, प्रेम और भय, अनुशासन, भविष्य की चिंता इत्यादि कतिपय शृंखलाओं से यह व्यक्ति को बाँधता है। शेखर इनका सफल असफल विरोध करता है। कभी ऊपर से अनुशासन का पालन करते हुए वह 'भला' बनने का नाटक भी करता है और विकृत मानसिकता का शिकार बन जाता है। वयः संधि का विकृत विद्रोह बंधनों से संघर्ष करने का ही एक उपाय है। माँ जन्म देती है, परवरिश देती है, पिता बुद्धि देते हैं, लेकिन व्यक्तित्व, अपने को ही सहने की सामर्थ्य वह वहाँ से नहीं मिलता। शेखर परिवार के किसी व्यक्ति की परम्परा को साँचे के रूप में नहीं अपनाता, वह अपनी शर्त पर स्वीकार या अस्वीकार करता है। अधिकतर अस्वीकार ही करता है "नहीं, कहीं नहीं है वह अबाध, कहीं नहीं है, छुटकारा, कहीं नहीं है मुक्ति। न बुद्धिमत्ता में, न बेवकूफी में, न एकानत में, न साथ में; न कविता में, न नाटक में; न काम में, न निठल्लेपन में, न घृणा में, न प्यार में उस विशाल, आततायी, उदार पिता के प्यार में भी नहीं।"

इन अनुभवों ने शेखर को वेध्य और विद्रोही बना डाला।... "ईश्वर को और अपने जीवन को नाऽस्ति कहकर शेखर मानों अपने चारों ओर के जीवन के लिए नंगा हो गया।" छोटी बहिन का जन्म होने पर उसके भीतर फिर वही दुर्दान्त प्रश्न कैसे सिर उठाता है जिसका संतोषजनक उत्तर कोई नहीं देता है।

'मैं क्यों हार मानूं? माँ के अविश्वास की असह्य चोट से तिलमिलाकर शेखर सोचता है। "मैं योग्य बनूँगा। सारे संसार का आदर और विश्वास पाकर उसे माँ के मुँह पर पटक दूँगा।" शेखर घृणा और वासना का महत्व

लगभग एक साथ पहचानता है। विवाहितों के लिए लिखी गई एक पुस्तक उसके पढ़ने में आती है और उसे धक्का लगता है कि "सारी चीजों की गति एक ही घृणित पाप कर्म की ओर है। ... यह है ज्ञान, यह है सत्य।" इसके आगे स्वयं उपन्यासकार के शब्दों में "इसके आगे अंधकार का एक परदा है। व्यक्ति का अभिन्नतम अंग।" यहाँ पर रोमां रोलां का एक वाक्य शेखर उद्धृत करता है "सत्य उनके लिए है, जिनमें उसे सह लेने की शक्ति है।"

इसी क्रम में शेखर मद्रास में पढ़ने आता है। कॉलेज के सहपाठियों और मित्रों में भी शेखर अलग रहा क्योंकि विद्रोही व्यक्ति का परिपाटी पर चल रहे मित्र सम्बन्धों में भी मन नहीं रमा। अज्ञेय, शेखर के बारे में एक महत्वपूर्ण टिप्पणी करते हैं, "वह सदा अपने ही भीतर घुलता रहा। अपने से बाहर आने की, जीवन को अपनाने की, संसार को अपना बनाने की। चेष्टा छोड़कर अपने को संसार का बनाने की चेष्टा उसने कभी नहीं की। वह प्यार को भोगता ही रहा है, प्यार देना उसने जाना ही नहीं...।" यह वह बिन्दु है जहाँ से शेखर के मानसिक क्षितिज का विस्तार प्रारंभ होता है। संसार के साथ प्यार के धरातल पर जुड़ने का क्रम यहीं से शुरू होता है। एक ओर कॉलेज की गतिविधियों और दूसरी ओर कुछ बाद में शशि के साथ प्यार को बाँटता चलता है।

मद्रास में शेखर सवर्णों के छात्रावास को छोड़कर अछूतों के छात्रावास में चला जता है और कहता है कि "कहते हैं धीरे-धीरे सबकुछ हो जाएगा, कि धीरे-धीरे अज्ञान दूर होगा, वह आत्मा पर छाया हुआ कुहरा उठ जायेगा। कहते हैं बहुत कुछ, पर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं, प्रतीक्षा के युग बीत जाते हैं, और कुछ नहीं होता। कुहरा उठ सकता है, परदा भी उठ सकता है; पर दीवार नहीं उठ सुकती, उसे फोड़ना ही पड़ता है, गिराना ही पड़ता है, नहीं तो वह नहीं मिटती...।"

तत्पश्चात् शेखर एण्डटीगोनम क्लब बनाता है। सामाजिक प्रश्नों पर विद्रोही नजरिए से सोचता है, और एक पत्र भी निकालता है। इसी कड़ी में राघवन के शादी का प्रसंग आता है। शेखर, राघवन द्वारा दिए गये दलीलों पर उसे ललकारते हुए कहता है "शादी तब होती जब तुम स्वयं अपनी इच्छा से उधर बढ़ते, स्वयं अपनी संगिनी चुनते, और फिर सारी दुनिया से लड़कर उसे ग्रहण करते। यही नहीं शेखर उसके रुढ़िगत जवाबों के प्रत्युत्तर में प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर मानतवा के ऋण की बात कहता है। इसके साथ ही वह तत्कालीन समाज में युवाओं की मानसिकता व आत्मविश्वास के संदर्भ में कहता है कि "प्रत्येक भारतीय नौजवान अपनी शादी पर पछताता है, और प्रत्येक उसके लिए माँ-बाप को दोषी ठहराता है। मैं तो नहीं चाहता था, लेकिन माँ-बाप ने जोर दिया, परिस्थिति ऐसी हो गयी इत्यादि। इसका अर्थ यही है कि प्रत्येक भारतीय नौजवान अपने माँ-बाप का गुलाम है और चाहते हैं शासक की गुलामी से निकलना, समाज की गुलामी से निकलना, अज्ञान की और प्रकृति की गुलामी से निकलना स्वयं परमात्मा की गुलामी से निकलने की बात हैं वे। वे जो जीवन के अन्धकूप में खचाखच भरे हुए हैं; और जो अपने ऊपरी कुटुम्बरुपी ढक्कन देकर उस अन्धकूप को और भी अँधेरा और प्राणघातक बना रहे हैं..।"

उपरोक्त मानसिकता के कारण युवाओं की जो स्थिति है उस ओर शेखर संकेत करते हुए कहता है कि- "... साहित्य में, समाज में, कला में, जीवन में, सब जगह वही मनमोहक आरंभ, वही मनमोहक प्रवाह, और अन्त में वही गहरी खड्ड। प्राणों का पक्षी उड़ान भरता है, लगता है कि वह आकाश की छत को छू लेगा, लेकिन एकाकए टूटकर गिर जाता है, मानो बिजली की मार से नष्ट हो गया हो। हम लोग खूब बढ़िया इमारत बनाते हैं, एक-एक पत्थर जोड़कर मन्दिर सजाते हैं लेकिन अन्त में जब पलस्तर होने लगता है, तब सारा घटाघोप

पैरों की धूल हो जाता है, मिट्टी में मिल जाता है... यह क्यों? यह इसलिए है कि हमारे आदर्श डर की भीत पर कायम हैं, हमारे विशाल भवनों की नींव खोखली है, और जैसे कि शास्त्र भी कहते हैं, हमारे देवताओं के पैर भूमि पर नहीं टिकते हैं.... समाज की सड़ती हड्डियों को भड़कीले लाल रेशम में लपेट कर हम कहते हैं- देखो, हमारा युवक समुदाय ...।"

इसी क्रम में शेखर स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को दकियानूसी दृष्टि से छोड़कर देखने का प्रयत्न करता है "क्या यह आवश्यक है कि स्त्रियों को एक ही दृष्टि से देखा जाए, एक ही प्रश्न उनसे पूछा जाए? क्या यह जरूरी है कि स्त्रियों की ओर उसी डाकू वृत्ति से देखा जाए समझा जाए कि या तो वे एक पाप कर्म-विशेष में पुरुषों की संगिनी हैं और या पुरुषों की शत्रु हैं, भयंकर हैं?" शेखर स्त्रियों के इस प्रकार की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के लिए, पुरुष प्रधान सभ्यता में पुरुषों के अधिकारों को बनाये रखने के लिए रचित षड्यन्त्र को दोषी ठहराते हुए कहता है कि "इस पुरुषप्रधान सत्यता का अपनी सम्पूर्णता में संतोष तोड़ देना होगा, उसका यह औचित्य का दावा झूठ कर दिखाना होगा, तभी हमें आगे बढ़ने का भार्ग मिलेगा। यह नारी-मात्र में अविश्वास, नारीत्व को ही पापात्मा मानने का संगठित षड्यन्त्र नष्ट करना होगा। नारी मूल पाप-भावना है। महाभाया है, पतन है और इस प्रकार हम अपने में संतुष्ट रहते हैं और संगठित अविश्वास की दीवार खड़ी करते हैं। वह दीवार हमें तोड़नी होगी।"

इसी क्रम में शेखर पढ़ाई के सिलसिले में पंजाब आता और वहीं के वातावरण को समझने का प्रयास करता है। इसी दरम्यान छुट्टियों के दौरान शेखर घर जाने के बजाय काश्मीर जाने का निर्णय करता है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि शेखर ने परम्परागत तौर पर स्थापित सौन्दर्य के मानकों व मान्यताओं के प्रति भी विद्रोह दर्ज किया। क्योंकि जिस तथ्य को लोगों ने सौन्दर्य जानकर अपने मस्तिष्क में नियुक्त कर रखा था वे शेखर को अप्रभावी व गणितीय आकृतियों यथा रेखाएँ, कोण, वृत्त आदि महसूस हुई। इसलिए वह श्रीनगर के रमणीय स्थलों व उद्यानों की सैर करके हिमालय की अक्षत शुभता में छिपी हुई झील की तरफ प्रयाण कर कुलियों के विद्रोह के बावजूद उस स्थान पर गया जहाँ पर किसी का भी खेमा नहीं गड़ा था; और कहा कि "वहीं तो मिलेगा सौन्दर्य।" वहाँ पर जाकर शेखर ने यह पाया कि, "सौन्दर्य और बुद्धि का सम्मिलन कभी भी बन्ध्य नहीं होता।"

शेखर काश्मीर से वापस आकर राष्ट्रीय कांग्रेस के शिविर में स्वयंसेवक की हैसियत से भाग लेता है। जहाँ वह सामूहिक जीवन, व राष्ट्रीय कांग्रेस की दुर्बलता से परिचित होता है। उसका विद्रोही मन समझौतावादी सिद्धान्त-विहिन आचरण व रुख का घोर विरोध करता है - "गुजारा? आप गुजारा करना चाहते हैं? तब यह सब वर्दियों क्यों, ओहदे क्यों?... मैं तो यह जानता हूँ कि अगर संगठन है तो अनुशासन है।"

इसी क्रम में जब शेखर जेल भेज दिया जाता है तो वह जेल में ऐसे लोगों के सम्पर्क में आता है जो उसके चिन्तनशील मानस पर गहरा प्रभाव डालते हैं। जेल का जीवन शेखर के जीवनानुभव के विस्तार, जीवन विषयक आकलन की गहनता और नि:संग जीवन दृष्टि की प्रक्रिया की पाठशाला सिद्ध होता है। जेल में शशि-शेखर की भेंट व उनके पारस्परिक सम्बन्धों का जटिल विधान, मोहसनि की अकड़ व जीवटता, मदन सिंह की चिंतन-प्रक्रिया ये सभी चीजें रससिक्त हैं। इनके साथ ही जेल में घटे अन्य प्रसंगों में एक मूल्य-संपृक्त समृद्ध जीवन दृष्टि का जो आधार है, उसके मूल में शेखर का विद्रोही व्यक्तित्व है। मदन सिंह से सीखे कुछ अनुभव सूत्र 'क्रांति के लिए चरित्र की आवश्यकता है', 'दर्द से भी बड़ा एक विश्वास है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शेखर जेल से टूट कर नहीं, अधिक सम्पन्न होकर बाहर निकला।

इसके बाद शेखर की दुनिया कुछ समय के बाद शशि के साथ साझे जीवन और उसके स्वास्थ्य की चिन्ता

तक सिमट आती है। यहाँ शशि के लिए समर्पित जीवन एक तरह से नारी के व्यक्तित्व के विकास के प्रति समर्पण था। शशि की सहायता क्रांतिधर्मिता का ही अलग प्रकटीकरण था, क्योंकि शशि के वैवाहिक जीवन नारीमुक्ति की बाधकता का सबसे बड़ा उदाहरण था। वह क्रांति की प्रेरणा प्रदान करने वाला साहित्य रचना चाहता है, जिसकी प्रेरणा देवी शशि है। इसी क्रम में हम देखते हैं कि शेखर अंग्रेजी में लिखकर यश और अर्थ प्राप्त करने की अपेक्षा हिन्दी में लिखता है "हिन्दी जनभाषा है। करोड़ों व्यक्तियों के प्राण इसमें बोले हैं।" वह स्थायी नौकरी नहीं करना चाहता। गिरस्थी जमाना नहीं चाहता, सेक्योरिटी की चिन्ता वह नहीं करता है। ये सब बातें शेखर के मूल विद्रोह तत्व से जुड़ी हुई हैं। शेखर और शशि जीवन में जिस रास्ते पर चलते हैं वह बिना विवाह के साझा जीवन जीने की इधर की परिपाटी का मूल स्रोत बिन्दु है, किन्तु उसमें उपभोगवादी दृष्टि शून्य है। दोनों प्रेम के उस स्तर तक जाते हैं, जहाँ तक पहुँचने के लिए उन्हें बहुत कुछ तोड़ना पड़ा और नए सिरे से सिरजना पड़ा। इसके अंतर्गत हम रूढ़ हिन्दू संस्कारों व देह की पवित्रता, जूठेपन आदि को देख सकते हैं। यहाँ एक सूक्ष्म मानसिक विद्रोह है।

एक समग्र रूप में हम देख सकते हैं कि अहं, सेक्स, भय, हिंसा, प्रेम, घृणा जैसी प्रवृत्तियाँ, परिवार और स्कूल-कॉलेज के माध्यम से, रिश्तेदारों के रूप में, साथियों और परिचितों के मार्फत आए सम्बन्धों से शेखर का व्यक्तित्व संगठित होने लगा। परन्तु उसमें यह भूमिका निभाई है शेखर की अंतर्मुखता, उत्कट संवेदनशीलता व विलक्षण कल्पना-शक्ति ने। इस शक्ति का एक स्रोत शशि के व्यक्तित्व में विद्यमान था। इस सबके मूल में शेखर का जन्मजात विद्रोही स्वभाव है जो निर्माण के लिए अपने व्यक्तित्व को भी ध्वस्त कर एक नए संगठन की ओर उन्मुख होता है।

अंततः हम यह कह सकते हैं कि शेखर, साहित्यिक कृतियों के उन उत्कृष्ट पात्रों में से एक है जो समाज के आईने में अपने प्रतिबिम्ब को नहीं देखता है, बल्कि वह आईने को तोड़कर अपने से परे जाता है, अपनी संवेदना के अंतिम छोर पर। शेखर अपने विद्रोह के द्वारा मानव जीवन के मूल सत्य को उद्घाटित करता है वह यह है कि मनुष्य का मनुष्यत्व उसकी यथास्थिति में नहीं, उसके अतिक्रमण में; उसकी औसत अवस्था में नहीं, उसके उल्लंघन में प्रगट होता है। यह वह अवस्था होती है, जब मनुष्य अपनी छद्म मर्यादाओं की ओढ़-बिछावन फेंककर नग्न बीहड़ क्षेत्र में प्रवेश करता है।

सन्दर्भ :

1. शेखर एक जीवनी, अज्ञेय, संस्करण 2009, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
2. आत्मनेपाद, आग्नेय, संस्करण III, 2010, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।
3. नव मानववाद, एम.एन. राय, संस्करण प्रथम 1998, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर।
4. अज्ञेय संचयन, सं. नंदकिशोर आचार्य, संस्करण:प्रथम 2001, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
5. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, रामस्वरूप चतुर्वेदी, संस्करण: पाँचवा, 2006, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।
6. सर्जना पथ के सहयात्री, निर्मल वर्मा, संस्करण: प्रथम ज्ञानपीठ, 2008, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।
7. भारत और यूरोप प्रतिश्रुति के क्षेत्र निर्मल वर्मा, संस्करण द्वितीय 2001, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
8. दूसरे शब्दों में, निर्मल वर्मा, संस्करण छठवां 2008, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।
9. अज्ञेय, रमेशचन्द्र शाह, पुनर्मुद्रण 2012, साहित्य अकादेमी, दिल्ली।
10. शेखर एक जीवनी विभिन्न आयाम, खंड। डॉ. राजकमल राय, संस्करण: पुनर्मुद्रण, 2009, अभिव्यक्ति प्रकाशन,

इलाहाबाद।
11. अज्ञेय कथाकार और विचारक, विजयमोहन सिंह, संस्करण: प्रथम, 2012, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
12. शेखर एक जीवनी का महत्व, सं. परमानन्द श्रीवास्तव, संस्करण : तृतीय, 2011, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
13. अज्ञेय कुछ रंग कुछ राग, श्रीलाल शुक्ल, संस्करण प्रथम, 2012, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
14. केन्द्र और परिधि, अज्ञेय, संस्करण प्रथम, 1984, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

●●●

इतिहासबोध के निकष पर मोहन राकेश और सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन

❍ अमित[1]

नाटक के क्षेत्र में यें दो नाम, मोहन राकेश और सुरेन्द्र वर्मा, आधुनिक नाटक के आधार स्तम्भों में से हैं। इन रचनाकारों ने रचनाकारों ने ऐतिहासिकता के माध्यम से प्रयोग कर नाटक जगत में एक नई प्रकार की नाट्य रचनाओं का प्रतिपादन किया। इतिहास के प्रति मोह इनके नाटकों में साफ तौर पर दिखायी पड़ता है। इतिहास के माध्यम से समकालीन समस्याओं को उठाने का यह प्रयोग सफल भी हुआ। नाट्य साहित्य सृजन के आधार पर देखने पर पता चलता है कि मोहन राकेश के उपरान्त अनेक रचनाकारों का साहित्य मोहन राकेश के साहित्य से प्रभावित है। उन्हीं रचनाकारों में सुरेन्द्र वर्मा का भी नाम आता है। स्वयं सुरेन्द्र वर्मा भी इस बात को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि, "*प्रभाव की बात मैं नहीं जानता, हो भी सकता है, शायद है भी..... दिल्ली के टी-हाऊस में पहली भेंट हुई। बड़े आत्मीय और प्यारे ढ़ंग से मिले। मैंने अपना हर नाटक उन्हें सुनाया और बहुत-बहुत अपनेपन से उन्होंने सुना। सचमुच बहुत बड़े इन्सान थे राकेश जी।*"[1] वर्मा जी का यह बयान उनकी और मोहन राकेश के साहित्य की तुलना करने पर मजबूर करता है। किन्तु दोनों रचनाकारों की ऐतिहासिक दृष्टि पर आलोचकों द्वारा प्रश्नचिह्न भी लगते रहे है।

जिस तरह मोहन राकेश का इतिहास वर्तमान को सम्बोधित करता है, उनका एक-एक शब्द का सरोकार वर्तमान से है। इसी प्रकार सुरेन्द्र वर्मा का उद्देश्य भी ऐतिहासिकता के माध्यम से वर्तमान को इंगित करना रहा है। केवल तीन नाटकों के बल पर मोहन राकेश श्रेष्ठ नाटककारों की श्रेणी का हिस्सा बनते हैं जिसमें से दो नाटकों की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक रही है। वहीं सुरेन्द्र वर्मा ने कई ऐतिहासिक-मिथकीय नाटकों की रचना की किन्तु दोनों ही रचनाकारों का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि चुनने का उद्देश्य एक सा ही रहा। दोनों की रचनाकारों की प्रवृत्ति ऐतिहासिकता के माध्यम से स्वानुभूति किन्तु जहाँ तक मोहन राकेश के नाटकों में भावनात्मकता की प्रधानता है वहीं सुरेन्द्र वर्मा के साहित्य में भावनात्मकता का आवरण ओढ़े वैचारिकता प्रधान है। मोहन राकेश के पात्र भावनात्मक संवाद बोलते हैं किन्तु सुरेन्द्र वर्मा के पात्रों में वैचारिकता अधिक है। वे पात्र एक-दूसरे

1. असिस्टेंट प्रोफेसर (अतिथि), राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

से संवादात्मक बहस करते हैं। उदाहरण के लिए कालिदास, मल्लिका, नंद, सुंदरी के चारों पात्र एक भावना के स्तर पर पहुँचकर अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में जाकर मूक हो जाते हैं किन्तु सुरेन्द्र वर्मा के पात्र प्रवरसेन, प्रभावती, कंपिजल, कालिदास, शीलवती इत्यादि विरोध कर वैचारिक संवाद करते हैं।

मोहन राकेश और सुरेन्द्र वर्मा की ऐतिहासिकता के प्रति भावनात्मकता पर प्रश्नचिह्न तो लगते ही रहे हैं। कि दोनों ही रचनाकारों ने प्रयोगधर्मिता के नाम पर इतिहास के साथ, ऐतिहासिक चरित्रों के साथ न्याय नहीं किया। वस्तु, घटनाएँ, पात्र समसामयिक नहीं होते रचनाकार की दृष्टि समसामयिक होती है। इसलिए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लेने के पीछे पाठक का उन पात्रों, परिस्थितियों का जानना ही रचनाकार को सहूलियत देता है। "राकेश ने इस विचार को काफी स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि कोई चीज अपने विषय के कारण आधुनिक नहीं होती वरन् जिस ढंग से उस विषय को व्यवहृत किया जाता है उससे होती है। इस प्रकार नाटक का अर्थ ही आधुनिकता का आधार बनता है।"[2] तो वही वर्मा जी समसामयिक को कहने के लिए इतिहास का सहारा अपनी इच्छा पूर्ति के लिए लेते हैं क्योंकि उनका मन इतिहास में अधिक रमता है। "व्यक्तिगत रूप से मेरा मन अतीत की स्वर्णिम छवियों में बहुत रमता है। अतीत के झरोखे से अपने वर्तमान को देखना सुखद अनुभव है।"[3] किन्तु ऐसा बिल्कुल नहीं कि ऐतिहासिकता एवं मिथकों का प्रयोग ये रचनाकार केवल सुगम्य होने के लिए नहीं है। बल्कि इसलिए करते हैं कि इसके माध्यम से आज की समस्या का अतीत के गौरवमयी संस्कृति, समाज से निवारण प्राप्त किया जा सकता है। इनकी ऐतिहासिकता अतीत के गौरव की प्रतिष्ठा और सांस्कृतिक चेतना के पूर्नजागरण जैसी ऐतिहासिकता नहीं, बल्कि इसके माध्यम से आधुनिक व्यक्ति की समस्याएँ, अन्तर्द्वन्द्व, पीड़ा, संत्रास, अभिजातवर्गीय मूल्यों उनके संस्कारों और रोजमर्रा की समस्याओं का चित्रण और विश्लेषण करना रहा है।

परिवर्तनशील होने के कारण भाषा समय-समय पर अपना रूप बदलती रहती है। अन्य भाषाओं के शब्दों को अपने में समाहित करती चलती भाषा सदैव विकासशील अवस्था में रहती है। ऐसे में कुछ सालों के अन्तर में ही भाषा में कुछ परिवर्तन दिखायी देने शुरू हो जाते हैं। यही कारण है कि जो भाषा प्राचीन काल में थी वह आज के समय से भिन्न है, या यूं कहा जाए कि ऐतिहासिक भाषा और समसामयिक भाषा में कुछ अन्तर होता है। एक नाटककार अपने समय से भिन्न जब ऐतिहासिक नाटक लिखता है तो उस नाटक के पात्र, परिवेश, संवाद, भाषा, देशकाल ऐतिहासिकता से जुड़ा होता है। किन्तु रचना जिस समाज, पाठक, दर्शक वर्ग के लिए की जाती है वह समकालीन होता है। ऐसे में नाटककार को सावधानी बर्तनी पड़ती है, उसे तत्कालीन समय की भाषा को इस प्रकार रखना पड़ता है कि वह समसामयिक पाठक के लिए भी सुगम्य हो, अन्यथा नाटक में सम्प्रेषणहीनता का दोष उत्पन्न हो सकता है। यह नाटककार के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य होता है जिसपर खरा उतरना नाटककार होने के नाते अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

मोहन राकेश और सुरेन्द्र वर्मा ने अपने ऐतिहासिक नाटकों के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया। वह ऐतिहासिकता का पुट लिए हुए समकालीन हिन्दी भाषा ही है। किन्तु दोनों रचनाकारों में से किस रचनाकार की भाषा साधारण पाठक, श्रोता या दर्शक के लिए बोधगम्य है इसका अध्ययन आवश्यक है। मोहन राकेश और सुरेन्द्र वर्मा दोनों ने ही कालिदास के काल से सम्बन्धित नाटक की रचना की है। मोहन राकेश का आषाढ़ का एक दिन और सुरेन्द्र वर्मा का आठवाँ सर्ग। दोनों की नाटकों की भाषा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी है। किन्तु मोहन राकेश के वाक्यों की बनावट और शब्दों का चयन इस प्रकार का है कि एक साधारण पाठक, श्रोता, दर्शक को वह आसानी से समझ आ जाते हैं, संस्कृत-हिन्दी के ऐसे शब्दों का प्रयोग के जोकि आज में समाज की बोल-चाल की भाषा में कहीं न कहीं आ ही जाते है। मोहन राकेश की भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी समसामयिक हिन्दी

के नजदीक है। 'आषाढ़ का एक दिन' का एक उदाहरण इस प्रकार है-

"प्रियंगु: आतिथ्य की बात मत सोचो। मैं तुम्हारे यहाँ अतिथि के रूप में नहीं आयी हूँ।....सम्भव था तो ये न भी आते, परन्तु मैं ही विशेष आग्रह के साथ इन्हें लायी हूँ । मैं स्वयं एक बार इस प्रदेश को देखना चाहती थी।"[4]

तो वहीं जहाँ तक सुरेन्द्र वर्मा के नाटक आठवाँ सर्ग की बात है तो इनकी भाषा भी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी है जो कि समकालीन भाषा के निकट हैं किन्तु इसकी निकटता में थोड़ा अन्तर है। सुरेन्द्र वर्मा के नाटक के वाक्यों की बनावट और शब्दों का चयन मोहन राकेश से भिन्न है। इनके नाटक के शब्द आम व्यक्ति की बोल-चाल में जल्दी से नहीं मिल पाते। वाक्य संरचना कठिन है तो शब्द क्लिष्ट। सुरेन्द्र वर्मा के कुछ नाटक तो ऐसे हैं जिसे पढ़ते समय भाषा के शोधार्थी को भी शब्दकोष साथ लेकर बैठना पड़ता है। सुरेन्द्र वर्मा के 'आठवाँ सर्ग' से एक उदाहरण इस प्रकार है-

"प्रियंगु: तो क्या हुआ?....(कुछ पल मन्द स्मित सहित कालिदास की ओर देखती रहती है।) तुम सर्ग-पाठ प्रारम्भ करोगे और लोगों के सामने नवदम्पत्ति के अंतरंग जीवन की परतें खुलने लगेंगी। तुम पन्ने पर पन्ने पलटते जाओगे और श्रोता जैसे दर्शक बनकर पति-पत्नी की उन्मुक्त प्रणय-लीला देखेंगे...यौवन के उष्ण रक्त में ज्वार आने के चित्र...उत्तेजना और उन्माद और तृप्ति के आरोहावरोह...।"[5]

इस तरह एक ही समय, परिवेश, व्यक्ति पर लिखे गए नाटक की भाषा में भिन्नता से पता चलता है कि जहाँ मोहन राकेश की रचना की भाषा ऐतिहासिकता का पुट लिए समकालीन भाषा है तो वहीं सुरेन्द्र वर्मा की भाषा समकालीन होते हुए भी ऐतिहासिक भाषा के अधिक निकट है। जिस कारण उसमें बोधगम्यता का दोष है। जबकि मोहन राकेश की भाषा वर्मा जी की तुलना में अधिक बोधगम्य है।

ऐतिहासिक नाटकों के पात्रों का चयन भी इतिहास से ही किया जाता है, यदि काल्पनिक भी हो, उनकी भाषा, वेशभूषा भी ऐतिहासिक ही होती है। किन्तु यह अनिवार्य नहीं है कि उनके द्वारा किये गए संवाद पूर्णत: ऐतिहासिक ही हो वे संवाद आधुनिकता को भी उजागर कर सकते हैं। मोहन राकेश और सुरेन्द्र वर्मा के ऐतिहासिक नाटकों के पात्र ऐतिहासिक अथवा आधुनिक मानव का मिश्रण कहे जा सकते हैं। इन पात्रों के संवाद, विचार समकालीन परिस्थितियों पर कटाक्ष का कार्य करते हैं। मोहन राकेश के दोनों ऐतिहासिक नाटक आषाढ़ का एक दिन और लहरों के राजहंस के पात्र ऐतिहासिक परिवेश में ऐतिहासिक भाषा शैली के माध्यम से आधुनिक विचारों को व्यक्त करते हैं। किन्तु यह पात्र ऐतिहासिक नाटक की ऐतिहासिक सीमा का उल्लंघन नहीं करते। वे कितने ही आधुनिक संवाद क्यों न हो, प्रतीत ऐतिहासिक ही होते है। मोहन राकेश के नाटकों में आधुनिक संवादों का तलाश करना पड़ता है। उन्हें जानना समझना पड़ता है। उन्हें समकालीनता से जोड़कर देखना होता है। जबकि सुरेन्द्र वर्मा के ऐतिहासिक नाटकों के संवाद पूर्णत: आधुनिक जान पड़ते है। उन्हें जोड़कर नहीं देखना पड़ता वह तो स्वत: समकालीन नजर आते है। वर्मा जी के पात्र प्रश्न को उठाते हैं। मोहन राकेश के नाटक के पात्र पीड़ा से गुजरते हुए अन्तर्द्वन्द्व को प्राप्त करते हैं। किन्तु वर्मा जी के पात्र अन्तर्द्वन्द्व की एक सीमा पर आकर बिफर पड़ते हैं। वे गलत के खिलाफ प्रश्नचिह्न लगाने को तत्पर रहते हैं। जैसे-कालिदास, कपिंजल, शीलवती इत्यादि। जबकि मोहन राकेश के पात्र अपने विरुद्ध कार्य होने पर भी प्रश्न नहीं उठाते। जैसे-कालिदास, नन्द, मल्लिका इत्यादि।

इस प्रकार ऐतिहासिक नाटकों के चयन और उनकी रचना में मोहन राकेश और सुरेन्द्र वर्मा में दिखायी देने वाली समानताएँ आवरण मात्र है। भीतर जाने पर पता चलता है कि यह दोनों रचनाकार के विचार, लेखन शैली

में अन्तर है।

संदर्भ :

1. समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच, रचनाकार की अनिवार्य नियतिः अकेलापनः सुरेन्द्र वर्मा, जयदेव तनेजा, पृ. 164
2. Sangeet Natak Journal of Sangeet Natak Akademi (3), p-19
3. सुरेन्द्र वर्माः व्यक्ति और अभिव्यक्ति, डॉ. जिजाबराव पाटील, पृ. 121
4. आषाढ़ का एक दिन, मोहन राकेश, पृ. 68
5. आठवाँ सर्ग, सुरेन्द्र वर्मा, पृ. 33

●●●

'गिलिगडु' : बुजुर्ग जीवन के संघर्ष और संवेदनाओं की कहानी

❍ प्रीति के.[1]

'गिलिगडु' भारतीय समाज में वृद्धों की दुरवस्था का अत्यंत संवेदनशील और मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास समाज में बुजुर्गों की स्थिति, उनकी उपेक्षा और अकेलेपन को केंद्र में रखता है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने न केवल वृद्धों की समस्याओं को उजागर किया है, बल्कि वर्तमान समाज की कठोर वास्तविकताओं पर भी प्रकाश डाला है। इसमें वृद्धों के प्रति परिवार और समाज की उदासीनता को बड़े ही संवेदनशीलता के साथ उकेरा गया है। विशेषकर बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी के माध्यम से, जिनकी त्रासद कहानियाँ समाज में फैले वृद्धों के जीवन की दयनीय दशा को प्रतिबिंबित करती हैं। भूमंडलीकरण और पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण के कारण भारतीय पारिवारिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। त्याग, प्रेम, और सदाचार जैसे मूल्य आज गौण हो गए हैं, और वृद्धों की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई है।

'गिलिगडु' चित्रा मुद्गल का आकार में छोटा, किंतु संवेदनशीलता में कहीं गहरा उपन्यास है। इस उपन्यास में भारतीय समाज में बुजुर्गों की स्थिति का मार्मिक और सजीव चित्रण किया गया है। 144 पृष्ठों में सिमटा यह उपन्यास अत्यंत संवेदनशील मुद्दे को उठाता है। यह उपन्यास तेरह दिन की कहानी में चलते दो बुजुर्गों के जीवन का पूरा खाका ही नहीं बताता अपितु आज के बदलते जीवन मूल्यों को भी परिभाषित करता है कि कैसे नौजवान पीढ़ी अपने बुजुर्गों को घर में सम्मान न देते हुए अकेला छोड़ देती है। इस उपन्यास में सेवानिवृत्त वृद्धों के जीवन की गहराई से पड़ताल की गई है, जिसमें लेखिका ने भौतिकवाद की चपेट में आते हुए समाज के उन पहलुओं को उजागर किया है, जो वृद्धों के जीवन में अकेलापन, ऊब, और विरक्ति को जन्म देते हैं। उनके द्वारा रचे गए पात्र और घटनाएं न केवल काल्पनिक हैं, बल्कि वे हमारे इर्द-गिर्द बिखरी हुई सच्चाइयों का जीवंत चित्रण भी करती हैं।

दो वृद्ध पात्रों के माध्यम से चित्रा मुद्गल ने यह दिखाया है कि कैसे आधुनिक समाज में बुजुर्गों के जीवन

---

1. *एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कण्णूर विश्वविद्यालय, केरल*
मोबाइल : 8289918100, ईमेल : preethamandeep@gmail.com

से जिजीविषा का ह्रास होता जा रहा है। भौतिकवाद, जिसमें अधिकतर लोग अपनी आकांक्षाओं और लालसाओं के पीछे भाग रहे हैं, वृद्धों को उपेक्षित और अलग-थलग कर देता है। वे न केवल शारीरिक और मानसिक रूप से बल्कि भावनात्मक रूप से भी अपने आप को अकेला महसूस करने लगते हैं।

बुढ़ापा जिंदगी का वह खास मोड़ है। बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी के उदाहरण के माध्यम से लेखिका यह स्पष्ट किया है कि कैसे बुढ़ापा जीवन और मृत्यु के बीच एक पुल का काम करता है। जसवंत सिंह की त्रासदी और कर्नल स्वामी का सपना दो भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। जसवंत सिंह के लिए पारिवारिक संबंध और उसके टूटने की त्रासदी एक गहरी पीड़ा होती है, जबकि कर्नल स्वामी अपने सपनों के माध्यम से आत्म-संतोष और जीवन की सार्थकता खोजते हैं। इस उपन्यास में महानगरों के शिक्षित मध्यवर्गीय परिवारों की यांत्रिकता और आत्मकेंद्रितता को बड़ी बारीकी से चित्रित किया गया है। आधुनिकता और भौतिकता की दौड़ में लोग अपने बुजुर्गों के प्रति संवेदनहीन हो गए हैं। जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी के पात्र इस यथार्थ को उकेरते हैं, जहां वे अपनी जिंदगी के अंतिम पड़ाव पर अकेलापन और उपेक्षा का सामना करते हैं।

उपन्यास का केंद्र बिंदु जसवंत सिंह और कर्नल हैं, जिनके माध्यम से लेखिका ने बुजुर्गों की उपेक्षा और दुर्व्यवहार को उजागर किया है। इसमें जसवंत सिंह ज्यादा स्थान घेरे हुए हैं कथा उन्हीं से शुरू होकर उन्हीं पर अंत हुई है। वही इस उपन्यास के नायक हैं। उनके चरित्रांकन में उपन्यासकार ने पूरी ईमानदारी बरती है- उनकी अच्छाई और बुराई दोनों को दिखाया है। उन्हीं के वर्णन में उनके बेटे-बहू, बेटी, सुनगुनिया आदि चरित्रों की विशेषताएँ भी उभर कर आई हैं।

उपन्यास के मुख्य पात्र, बाबू जसवंत सिंह और कर्नल विष्णु नारायण स्वामी, दो बुजुर्ग हैं जो अपनी जिंदगी के अंतिम पड़ाव पर हैं। बाबू जसवंत सिंह रिटायर्ड सिविल इंजीनियर हैं। अपनी पत्नी के स्वर्गवास के बाद बेटे नरेन्द्र के साथ ग्लैक्सी अपार्टमेंट्स में रहने वे आये। बेटे के मन में बाप के प्रति कोई लगाव नहीं। इसलिए छोटे-छोटे कार्यों से लेकर नरेन्द्र उसे टोकता है। बालकनी बंद कराकर उसमें उनके रहने की व्यवस्था की जाती है। हर समय उपेक्षा के भाव दिखाने वाला नरेन्द्र अचानक उन्हें प्यार दिखाता है। कुछ समय बाद इस अनपेक्षित प्यार का राज खुल जाता है। बाबू जसवंत सिंह के कानपुर वाले लॉकर, घर आदि हथियाना नरेन्द्र का मकसद रहा। नरेन्द्र एन.टी.पी.सी. में चीफ इंजीनियर है। लेकिन वह अमेरिका में जाकर ऐश-आराम की जिन्दगी जीना चाहता है। लेकिन वह अपने बूढ़े पिता को अमेरिका ले जाना नहीं चाहता। क्योंकि पिता उनके लिए एक बोझ सा बन गया है। इसलिए वह अपने पिता बाबू जसवंत सिंह को नोएडा सेक्टर पचपन में आनंद निकेतन वृद्धाश्रम में भर्ती करने का निश्चय करता है।

उपन्यास का अन्य प्रमुख पात्र कर्नल विष्णु नारायण स्वामी भी पत्नी की मौत के बाद अकेले हो गया था। तीनों बेटों ने नई नौकरियाँ लेकर नये सुनहरे भविष्य की तलाश में शहरों में घर बना लिया। किन्तु कोई भी बेटा अपने पिता को साथ नहीं ले गया। एक दिन मझला बेटा श्रीनारायण हैदराबाद से दिल्ली आया। नोएडा वाला फ्लैट बेचकर उससे प्राप्त रकम तीनों भाई बाँटना चाहते हैं। कर्नल स्वामी पहले ही राजनगर स्थित गाजियाबाद वाले कीमती फ्लैट को बेचकर उन्हें फ्लैट खरीदने में मदद कर चुके थे। श्रीनारायण का प्रस्ताव उन्होंने ठुकरा दिया। क्रुद्ध श्रीनारायण ने पिता पर हाथ उठाया। लहूलुहान कर्नल स्वामी को पड़ोस वालों ने पुलिस की सहायता से बचा लिया।

यह उपन्यास सामाजिक समस्याओं और व्यक्तिगत संघर्षों को जिस तरह से प्रस्तुत करता है, वह हर घर में चल रहे छोटे-छोटे युद्धों को सजीव बना देता है। कथारूढ़ि के प्रचलित ढाँचे से बचते हुए लेखिका का यह

भावप्रवण उपन्यास अनायास ऐसे विस्तृत यथार्थ की इबारतें प्रस्तुत करता है। कर्नल स्वामी में मौत को अपनाने का जो साहस है, उसकी यही मानसिकता है। वे खुलकर कहते हैं- 'मौत जब आएगी, आ जाएगी। किसी भी शक्ल में आ जाए। रगड़ेगी हफ्ता, महीना, साल या अचानक झपाटे से उठा लेगी। उठा ले। मगर उन कुछेक कष्टकर दिनों की कल्पना में रात-दिन अधमरे होकर जीना जिंदगी का मजाक उड़ाना नहीं।'[1] जीवन के कठिन और कष्टकर क्षणों के बारे में सोचते रहना वास्तव में जीवन का मजाक उड़ाना है। यह कथन जीवन और मृत्यु के बारे में एक गहरी समझ और दार्शनिक दृष्टिकोण को उजागर करता है। इसमें बाबू जसवंत सिंह के माध्यम से मध्यवर्ग की संवेदनहीनता को अभिव्यक्त किया है।

जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी की कहानियाँ हमारे तथाकथित सभ्य समाज की पोल खोलती हैं। एक ओर जसवंत सिंह अपने बेटे और बहू के साथ अपमानित जीवन जीने को विवश हैं, वहीं दूसरी ओर कर्नल स्वामी की स्थिति और भी अधिक भयावह है। वे अकेलेपन से जूझते हुए, अपनी काल्पनिक दुनिया में खुश रहने का दिखावा करते हैं। एक सुबह कुत्ते को टहलाने को निकलते समय बाबू जसवंत सिंह की मुलाकात कर्नल विष्णु नारायण स्वामी से होती है। सभी तरह से उपेक्षित और अकेलापन से पीड़ित बाबू जसवंत सिंह में कर्नल स्वामी के संपर्क में आकर काफी परिवर्तन हुए। कर्नल स्वामी बाबू जसवंत सिंह के आघात और वेदना को उत्साह और जीवन्तता में बदल देना चाहते हैं - "जीवन मुठभेड़ों से ही जिया जा सकता है, मि. सिंह। सर, लिव लाइक शेर अपनी तरह से, अपनी शर्तों पर।"[2]

इस उपन्यास के माध्यम से चित्रा मुद्गल ने सामाजिक मूल्यों के क्षरण को बड़े ही प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। उपन्यास यह संदेश देता है कि समाज और परिवार को वृद्धों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को समझना होगा। वृद्धाश्रमों की बढ़ती संख्या इस बात का प्रमाण है कि हमारा समाज वृद्धों के प्रति अपने कर्तव्यों से मुंह मोड़ रहा है। इसमें आज की युवा पीढ़ी द्वारा अपने बुजुर्गों की घोर उपेक्षा और अवमानना का बड़ा ही मार्मिक और सजीव चित्रण किया गया है। आज के भरे-पूरे परिवार में भी बुजुर्गों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। महानगरों के शिक्षित मध्यवर्गीय परिवारों का समकालीन जीवन किस सीमा तक आत्मकेंद्रित और अमानवीय हो गया है, यह उपन्यास इसका जीवंत दस्तावेज है।

उपन्यास में नरेंद्र जैसे पात्र आधुनिक युग की मानसिकता को दर्शाते हैं, जहाँ अपनी संपत्ति की चिंता तो होती है लेकिन माता-पिता की सेवा का कोई स्थान नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि किस प्रकार उपभोक्तावाद और भौतिकता ने मानवीय मूल्यों को निगल लिया है। नरेंद्र के बच्चे मलय और निलय को भी दादा जसवंत की आवश्यकता नहीं है। अपनी जीवनशैली और कंप्यूटर में इतने मस्त पोते मलय और निलय को किसी की जरूरत ही महसूस नहीं होती। ममता यहाँ तक गायब हो चुकी है कि वे अपना जन्मदिन 'मैकडॉनल्ड्स' में मनाना चाहते हैं और दादा की उपस्थिति पोते को भी स्वीकार नहीं। "न न दादू! अपने साथ हम किसी बूढ़े को नहीं ले जाएंगे। पार्टी बोरिंग हो जाएगी।"[3]

'गिलिगडु' एक सामाजिक दर्पण है जो हमें हमारे समाज की सच्चाइयों से रूबरू कराता है। यह उपन्यास पाठकों को आत्ममंथन करने के लिए प्रेरित करता है और वृद्धों के प्रति संवेदनशीलता और सम्मान के महत्व को रेखांकित करता है। चित्रा मुद्गल ने अपनी रचना के माध्यम से न केवल एक संवेदनशील विषय को उठाया है, बल्कि समाज को जागरूक करने का प्रयास भी किया है। यह उपन्यास आधुनिक समाज में वृद्धों की स्थिति को उजागर करता है, जहाँ पारंपरिक मूल्यों का पतन और भौतिकता की बढ़ती प्रवृत्ति ने परिवार और संबंधों को कमजोर कर दिया है

उपन्यास में जसवंत सिंह के माध्यम से भूमंडलीकरण और पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण समाज में भौतिक सुख-सुविधाओं को प्राथमिकता देता है, जिससे वृद्धों के प्रति उपेक्षा बढ़ती है। कर्नल स्वामी के जीवन के माध्यम से दिखाया गया है कि कैसे पारिवारिक मूल्य और आपसी प्रेम धीरे-धीरे समाप्त हो रहे हैं। बुढ़ापे में व्यक्ति अकेला, निर्बल और असहाय हो जाता है। उनकी कार्य करने की क्षमता कमजोर होने के कारण, वे अपने दैनिक कार्य और भरण-पोषण के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। यह निर्भरता उनकी समस्या का कारण बन जाती है। बाबू जसवंत सिंह को बीमारी के चलते पायजामे में खून लग जाने पर बहू सुनयना उलाहना देते हुए कहती है- "उनके पायजामे और चड्डी में लगे खून के धब्बे वाशिंग मशीन में नहीं छूटते। उनके बाथरूम में रिन की बट्टी रख दी गई है। कपड़े धोने डालने से पहले वे स्वयं धब्बों को तनिक रगड़ दिया करें।"[4]

बुढ़ापा जीवन का एक ऐसा चरण है जहाँ व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से कमजोर और निर्भर होता चला जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति की कार्य क्षमता कम हो जाती है और वह दूसरों पर निर्भर हो जाता है। यह निर्भरता और कमजोर स्थिति उन्हें समाज में अनुपयोगी और उपेक्षित बना देती है, जिससे वे एकाकीपन और मानसिक तनाव का शिकार हो जाते हैं। आज की पीढ़ी द्वारा उन्हें 'एडजस्टमेंट' करने की सलाह दी जाती है, जो उनके लिए एक कटु सत्य को उजागर करता है। वृद्धों का यह प्रश्न, "क्या तुम कभी बूढ़े नहीं होगे?"[5] हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि बुढ़ापे में मिलने वाली कठिनाइयों और चुनौतियों को समझना और उनका सम्मान करना अत्यंत आवश्यक है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि एक दिन हम भी इस अवस्था में पहुँच सकते हैं, और हमारे साथ भी वैसा ही व्यवहार हो सकता है जैसा हम आज अपने वृद्धों के साथ कर रहे हैं। समाज में बुजुर्गों के प्रति सम्मान, सहानुभूति और समर्पण का भाव बनाए रखना अनिवार्य है, ताकि वे अपने जीवन के इस अंतिम चरण को गरिमा और सम्मान के साथ जी सकें।

शीर्षक 'गिलिगडु' भी आकर्षक है, गिलिगडु माने चिड़ियाँ। दरअसल मलयालम में कहते हैं किलिकलु। मलयालम भाषा के शब्द को हिन्दीकरण करके उपन्यास का शीर्षक बनाकर उपन्यासकार ने इसकी अर्थवत्ता बढ़ा दी है। उपन्यास के प्रमुख पात्र कर्नल विष्णु नारायण स्वामी केरल के हैं, मलयाली हैं। वे अपनी जुड़वां पोतियाँ कुमुदनी और कात्यायनी को गिलिगडु कहकर पुकारते हैं। यहाँ गिलिगडु के प्रति कर्नल का प्रेम हो या जसवंत सिंह का अंत में गिलिगडु के साथ बिताने की चाह हो, स्वाभाविक ही है। वैश्वीकरण के दौर की महत्वपूर्ण समस्या को अपने उपन्यास की कथा का आधार बनाकर चित्रा मुद्गल जी ने अपनी सामाजिक सोद्देश्यता को चरितार्थ किया है।

वृद्धों की समस्याओं को मार्मिकता से प्रस्तुत करते हुए, उपन्यास यह भी दिखाता है कि कैसे वृद्ध अपने जीवन के अंतिम दिनों में एकाकीपन और मानसिक तनाव का सामना करते हैं। यह स्थिति समाज के प्रति एक चेतावनी है कि यदि हम अपनी जिम्मेदारियों को नहीं समझेंगे, तो भविष्य में और भी गंभीर परिणाम सामने आ सकते हैं। "गिलिगडु" उपन्यास समाज को यह संदेश देता है कि हमें अपने बुजुर्गों का सम्मान और देखभाल करनी चाहिए। उनके अनुभव और ज्ञान हमारे समाज की धरोहर हैं और उन्हें उपेक्षित करना हमारे स्वयं के लिए नुकसानदायक है। यह उपन्यास हमें अपने मूल्यों और संबंधों पर पुनः विचार करने को प्रेरित करता है, जिससे हम एक अधिक संवेदनशील और मानवतावादी समाज का निर्माण कर सकें। हमें अपने बुजुर्गों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को नहीं भूलना चाहिए। उनके दुःख-सुख का ख्याल रखना, उन्हें अपनापन और प्यार देना हमारा कर्तव्य है। हमारे समाज को इस दिशा में जागरूकता और संवेदनशीलता बढ़ाने की आवश्यकता है, ताकि बुजुर्गों

को उनके जीवन के अंतिम पड़ाव में सम्मान और प्यार मिल सके। यह उपन्यास समाज में साहित्यिक मूल्यों की सामाजिक सार्थकता को भी उजागर करता है। उपन्यास की पठनीयता, जीवन के यथार्थ का सजीव चित्रण और कला की सहजता इसे एक महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति बनाते हैं। यह उपन्यास इस विश्वास को और भी गहरा करता है कि साहित्यिक मूल्यों में सामाजिक सार्थकता का महत्व हमेशा बना रहेगा।

संदर्भ :

1. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, सामायिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृ. 63
2. वही, पृ. 61
3. वही, पृ. 33-34
4. वही, पृ. 71
5. वही, पृ. 68

●●●

नेपथ्य राग : स्त्री अस्मिता के संघर्ष की अनसुनी गूंज

❍ मीनु के. पी.[1]
❍ डॉ. प्रीति के.[2]

मीराकांत हिंदी साहित्य के प्रख्यात साहित्यकार हैं, जिन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपनी अनूठी छाप छोड़ी है। उन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता, और अन्य साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से अपनी गहरी संवेदनाओं और समाज के प्रति अपने विचारों को प्रकट किया। उनकी रचनाओं में समाज की सामयिक समस्याओं पर तीव्र दृष्टिकोण और उनका समाधान प्रस्तुत किया गया है, जो उनकी साहित्यिक प्रतिभा का प्रमाण है। विभिन्न विधाओं जैसे- नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता तथा अन्य रचनाओं के माध्यम से मीराकांत ने अपनी हृदय की बात को, संवेदना को प्रस्तुत किया है। मीराकांत की कृतियों के माध्यम से उनका व्यक्तित्व और उनके विचार स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आते हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में सामाजिक, राजनीतिक, और व्यक्तिगत मुद्दों पर विशेष ध्यान केंद्रित किया है, जिससे उनकी रचनाएं आज भी प्रासंगिक हैं और पाठकों को गहराई से प्रभावित करती हैं। मीरा कांत की कृतियाँ उनके विचारों, संवेदनाओं, और समाज के प्रति उनकी गहरी समझ का प्रतिफल हैं। उनके साहित्य में भावनाओं की गहराई, विचारों की प्रखरता, और भाषा की सजीवता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जो उन्हें हिंदी साहित्य के गगन में एक चमकते सितारे के रूप में स्थापित करती है।

मीराकांत ने स्त्री की पीड़ा, संघर्ष और उसकी दबी हुई इच्छाओं को अपनी रचनाओं में जीवंत किया, जिससे समाज में स्त्री की स्थिति को लेकर जागरूकता बढ़ी। प्रसिद्ध लेखिका ममता कालिया का कहना है कि-" जब स्त्री को लगा कि उसका अस्तित्व, स्थान, अधिकार और आजादी संकट में है, उसे अपने विचारों को अभिव्यक्ति देनी पड़ी।"[1] जब स्त्रियाँ खुद अपने अधिकारों के लिए मैदान में उतरीं और पुरुषसत्तात्मक समाज से लड़ाई लड़ी, तो हाशिए पर धकेली गई स्त्रियों की जिंदगी में महत्वपूर्ण बदलाव आने लगे। मीराकांत की

1. *शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, कण्णूर विश्वविद्यालय, केरल*
2. *एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभाग अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, कण्णूर विश्वविद्यालय, केरल*

रचनाएँ तत्कालीन समाज का दर्पण हैं। नारी चिंतन पर आधारित उनकी रचनाओं में नारी के स्वत्व और अस्तित्व को स्थापित करने का जद्दोजहद नजर आता है। मिथक और इतिहास को कल्पना के मनमोहक संसार से जोड़कर प्रस्तुत करना उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता है। मीरा कांत एक नाटककार के रूप में साहित्य जगत में अधिक लोकप्रिय हुई हैं। नाटककार के रूप में उनकी पहचान खासकर उनके तीक्ष्ण और प्रभावशाली नाटकों के लिए है, जो सामाजिक और भावनात्मक मुद्दों को गहराई से उजागर करते हैं। उनके नाटक तलवार से भी अधिक तीखे सिद्ध हुए हैं। पृष्ठों की संख्या की दृष्टि से उनके नाटक छोटे लग सकते हैं, लेकिन उनमें गागर में सागर भरने की क्षमता है। उन्होंने अपने नाटकों में ऐसे विषयों को चुना है जो आग से भी अधिक जलते हैं। ईहामृग, नेपथ्य राग, भुवनेश्वर दर भुवनेश्वर, कंधे पर बैठा था शाप, मेघ प्रश्न, काली बर्फ, अंत हाजिर हो, हुमा को उड़ जाने दो आदि उनके बहुचर्चित नाटक हैं।

एक गंभीर नाटककार के रूप में मीरा कांत को प्रतिष्ठित करने वाला नाटक है "नेपथ्य राग"। यह नाटक पुरुष अहंकार के तले दबी हुई स्त्री की आवाज है। पौराणिक संदर्भ को आधुनिक वातावरण के साथ मिलाकर शताब्दियों से दबती हुई नारी जीवन की विवशता को उजागर करने का प्रयास इस नाटक में किया गया है। डॉ. जयदेव तनेजा का कहना है कि " 'नेपथ्य राग' मीरा कांत का गंभीर और महत्वपूर्ण नाटक है। यह अतीत (इतिहास-पुराख्यान) और वर्तमान के बीच सतत बहती काल-सरिता के दो किनारों को जोड़ने वाले सेतु-सा एक आधुनिक नाट्यकृति है।"[2] नाटक के शीर्षक से ही स्पष्ट होता है कि इस नाटक में लेखिका ने सदियों से नेपथ्य के पीछे रहने के लिए मजबूर नारी की व्यथा को चित्रित किया है। प्रस्तुत नाटक में लेखिका अंधेरे में बंधी, लाचार स्त्री की त्रासदी और गूंगेपन को तोड़ने का सफल प्रयास करती है, जिससे एक ज्वालामुखी विस्फोट होता है। वास्तव में, यह नाटक नेपथ्य के पीछे छिपी स्त्री की हयात को अत्यंत गंभीरता से प्रस्तुत करके पुरुषसत्तात्मक समाज के घमंड पर गहरा आघात करता है।

पुरुष वर्चस्ववादी समाज ने हमेशा पुरुष की विद्वता को सर्वोच्च स्थान और सम्मान दिया है। स्त्री की कुशलता और चतुरता को नजरअंदाज कर उसे हाशिए पर धकेल दिया जाता है। समाज में अनादिकाल से यह प्रथा चलती आ रही है कि स्त्री की विद्वता को स्वीकार कर उसकी प्रशंसा करने के लिए पुरुषसत्तात्मक समाज कभी तैयार नहीं होता। प्रस्तुत नाटक असल में इस तथ्य का दृष्टांत है। लेखिका ने नाटक की शुरुआत से पहले ही एक ऐसे वक्तव्य देकर युग-युगांतर से समाजरूपी रंगमंच के केंद्र में आने के लिए संघर्षरत नारी की आत्मा को आवाज दी है, "युग-युगांतर से नेपथ्य में खड़ी अनदेखी, अनसुनी खना के नाम..."[3] पौराणिक नारी पात्र खना से लेकर आधुनिक नारी पात्र मेधा तक इसी संघर्ष के बीच पड़ी हुई दिखाई देती हैं। खना एवं मेधा के माध्यम से मीरा कांत नारी की अस्मिता के प्रश्न को एक अलग आयाम देती हैं, जो हमेशा कामयाबी होने के बावजूद भी नेपथ्य से वापस नेपथ्य की ओर ही धकेली जाती है। वह अपनी बुद्धि एवं क्षमता के बल पर मुख्यधारा तक आने की कोशिश करती है, लेकिन पुरुषसत्तात्मक समाज की कूटनीति में फंसकर वापस अपने आप में ही सीमित हो जाती है।

कथावाचन शैली में शुरू होने वाला यह नाटक मेधा से लेकर खना की कहानी तक को अत्यंत रोचक ढंग से उकेरता है, जो पाठकों के दिल की छटपटाहट को एक विस्तृत आयाम देता है। नाटक के आरंभ में आधुनिक विचारों वाली मेधा अपनी माँ से कार्यालय के पुरुष मेधावियों की शिकायत करती है, जो मेधा की पदोन्नति पर बैर करते हैं। मेधा अपने काम के प्रति कर्मठ एवं निष्ठावान युवती थी। आत्म-सम्मान एवं आत्म-विश्वास का दृढ़ संकल्प उसमें नजर आता है। लेकिन दफ्तर के पुरुष सहकर्मियों को मेधा का प्रभारी बनना पसंद नहीं आता। मेधा ऑफिस के तनाव भरे वातावरण से अत्यंत परेशान होती है। मेधा इन स्थितियों की

समीक्षा करना चाहती है कि तभी उसकी माँ उसे दृष्टांत के रूप में चौथी-पाँचवीं शताब्दी की प्रतिभावान महिला खना की कहानी सुनाती है, जो मेधा के दर्द को एक बृहत्तर आयाम देती है। यानी यहाँ माँ और मेधा के संवाद के सूत्र में खना, यानी एक प्रतिभावान, अध्यवसायी स्त्री के दर्द की कथा को पिरोया गया है, जो आज की ठहरी हुई स्थिति को दर्शाती है। मेधा की माँ का कहना है कि "तभी तो कहानी सुनाऊँगी। सदियों से चली आ रही कहानी... वॉक करते हुए एक चली आ रही कहानी।"[4] अत: यहाँ मेधा की माँ इसी बात को और स्पष्ट करती है कि समाज में स्त्री की उन्नति चाहने वाले पुरुष नगण्य हैं। पुरुष के लिए स्त्री केवल घर की चारदीवारी के अंदर रहकर अपनी महत्वाकांक्षाओं, कामनाओं और शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति करने का साधन मात्र है। शिक्षित नारी को तो वह स्वीकार करेगा लेकिन सिर्फ एक शर्त पर कि वह सदा समाज के सामने मूक रहे। आज के सभ्य और समृद्ध समाज में भी स्त्री की यही दशा रही है। खना की कहानी के जरिए लेखिका स्त्री की इस हकीकत का खुलासा करती है।

खना की कहानी की पृष्ठभूमि चौथी-पाँचवीं शताब्दी की उज्जयिनी है। तब वहाँ मालव गणनायक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का शासन था। ज्ञान प्राप्त करने की हसरत को लेकर खना उज्जयिनी में अपने काका सुबंधुभट्ट के पास पहुँचती है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नवरत्नों में एक अद्वितीय ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर का शिष्य बनना उसकी जीवन की सबसे बड़ी कामना थी। इसी ज्ञान प्राप्ति की तृष्णा उसे वराहमिहिर की ओर खींच लायी। पुरुषसत्तात्मक समाज के अनुसार स्त्री का जीवन तभी संपूर्ण होता है जब उसकी गले में शादी की वरमाला पड़ती है। इसलिए सभी लोग स्त्रियों को हमेशा ऐसा आशीर्वाद देते हैं कि सदा सुमंगली रहो। यहाँ वराहमिहिर भी खना को ऐसा ही आशीर्वाद देता है कि- "शून्य ललाट पर शीघ्र किसी के अनुराग का सौभाग्य-चिह्न दिखाई दे। ..... इतने से संतोष नहीं है तो चलो आज तुम्हें यह आशीर्वाद देते हैं कि किसी कुलीन संभ्रांत श्रीमंत के घर की कुललक्ष्मी बनो।"[5] लेकिन खना वराहमिहिर की शिष्या बनकर ज्ञान प्राप्त करने की अपनी जिज्ञासा को किसी भी तरह पूरा करना चाहती है। वह अपनी बातों से वराहमिहिर का मन जीत लेती है। खना की विलक्षण बुद्धि एवं ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा को देखकर वराहमिहिर उसे अपनी शिष्या बना लेता है। लेकिन एक स्त्री होने का अभिशाप खना को भी नहीं छोड़ता। वराहमिहिर के पुत्र पृथुयशस खना के सौंदर्य से आसक्त होकर उससे शादी करने का आग्रह करता है। लेकिन खना शादी के प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होती। वह तो ज्ञान प्राप्ति के लिए उत्सुक थी। वह स्त्री की जिंदगी में शादी को जरूरी नहीं समझती थी। वह इसका विरोध भी करती है। लेकिन सुबंधु काका की बातें सुनकर खना असमंजस में पड़ जाती है और उनके स्नेहसंपन्न दबाव से खना शादी के बंधन में जीने के लिए विवश हो जाती है और पृथुयशस की पत्नी बनकर वराहमिहिर के यहाँ रहने लगती है। हर स्त्री की जिंदगी में शादी एक ऐसा बंधन बन जाता है जिससे वह कभी बाहर नहीं निकल पाती, जो अपनी पूरी जिंदगी परिवार के लिए न्योछावर करती है। पठित एवं शिक्षित स्त्रियाँ भी इस तरह शादी के बंधन में पड़कर नेपथ्य में ही रह जाती हैं। रंगमंच की रोशनी से तो वह प्रभावित होती हैं लेकिन रंगमंच तक पहुँचने का रास्ता हमेशा अंधकारमय होता है। शादी के बाद मेधा भी एक अच्छी गृहिणी बनकर रह जाती है।

एक दिन मालव गणनायक विक्रमादित्य निर्धन पुरुष के रूप में वेश बदलकर वराहमिहिर के यहाँ जाता है। वह अपने प्रशासन में आए उलझन को सुलझाने के लिए वराहमिहिर से उपाय पूछता है। तभी विक्रमादित्य की भेंट खना से होता है। खना की भविष्यवाणी सुनकर दोनों आश्चर्यचकित हो जाते हैं। खना की भविष्यवाणी सच भी निकलती है। खना की अतुलनीय प्रतिभा और प्रवचन की निजता से प्रभावित होकर विक्रमादित्य उसे अपनी राजसभा में एक सभासद के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। लेकिन पुरुष वर्चस्ववादी समाज के

प्रतिनिधि नवरत्नों का अंहकार एक स्त्री के अपने समकक्ष होने की संभावना मात्र से ही आतंकित और आहत कर देते हैं। वे अपने कुटिल तंत्रों से इस प्रयास को ध्वस्त कर देना चाहते हैं। लेकिन अपने सम्राट की इच्छा का सम्मान करने या उसके नाराज होने के दुष्परिणाम से डरकर, वे एक मूक सभापद के रूप में खना के राजसभा में प्रवेश को अपनी सहमति प्रदान करते हैं। स्वयं वराहमिहिर भी इस षड्यंत्र में शामिल होता हुआ नजर आता है। वराहमिहिर खना से कहते हैं कि, "विक्रमादित्य को नवरत्नों की सभा में जिह्वाविहीन स्त्री सभासद चाहिए..... उनका कहना है कि यदि स्त्री सभासद बने तो पहले जीभ काट ली जाये।"[6] यहाँ खना की विद्वता को बड़ी चतुराई से जबान काटकर खामोश कर दिया। नाटक में ऐसा कहा जाता है कि खना की जीभ काट दी गई थी। कुछ लोगों का मानना है कि उसने अपने परिवार और ससुर को अपमान से बचाने के लिए अपनी जीभ खुद काट ली थी। और ऐसा भी कहा जाता है कि खना की जीभ खुद वराहमिहिर ने ही काटी थी। आज भी खना जैसी स्त्रियाँ हैं, वो अपने पुरुष सहकर्मियों के अनुचित एवं असभ्य व्यवहारों से तंग आकर अपनी जिन्दगी का समाप्त करने के लिए मजबूर बन जाती है। कार्यालयों में स्त्री को डरा-धमकाकर उसकी आवाज को दबाकर रखते हैं। अत: पुराने समाज में स्त्री जहाँ खड़ी है आज भी स्त्री वही खड़ी हुई है। जितना वह नेपथ्य से रंगमंच में आने की कोशिश करती है उतना ही उसे नेपथ्य की ओर धकेलने का षड्यंत्र रचा जाता है। यहाँ सिद्ध होता है कि देश-काल चाहे कुछ भी बुद्धिमति ख्र विदुषी स्त्री को पुरुष कभी सह न पाते। यहाँ पितृसत्तात्मक समाज द्वारा खना को जिह्वाविहीन रूप में स्वीकारना स्त्री के विदुषी रूप को अस्वीकार करने के पीछे की वजह को प्रत्यक्ष करता है। चौथी-पाँचवी शताब्दी की खना हो या इक्कीसवीं शती की मेधा, युगान्तर से स्त्री अपने विदुषी होने के कारण मानसिक-शारीरिक प्रताड़ना झेलती आ रही है। समानाधिकार की बातें करने वाला यह पुरूष समाज स्त्री की वैचारिक क्षमता तक को अपने अधीन बनाकर कुचला देना चाहता है। पुरुष वर्चस्ववाद के घमंड स्त्री की विद्वता को सदा समाज रूपी रंगमंच के नेपथ्य में रखने का कोशिश करता रहता है और आज भी उस अवस्था में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है। खना नाटक के अंत में इस सच्चाई को पेश करते हुए कहती है, "आषाढ़ अभी नहीं आया... आषाढ़ आने में कई संवत्सर बीत जाएंगे... कई युग... यह नेपथ्य है... इसे मंच तक पहुंचने में समय लगेगा... कल्पांत... कई युग..."[7]

वास्तव में प्रस्तुत नाटक सदियों से मुख्यधारा में आने के लिए संघर्षरत नारी जीवन की व्यथा को प्रस्तुत करता है। नाटक आदि से अंत तक इतिहास और पौराणिकता की देहरी पर प्रज्वलित होते आधुनिक युग की वास्तविकता का बयान करता है। आज के समान अधिकारों और अवसरों वाली जनतांत्रिक स्थिति में भी स्त्रियों के लिए आरक्षण की जरूरत है। क्योंकि आज भी समाज में, कुछेक अपवादों को छोड़कर, स्त्री की वास्तविक स्थिति कमोबेश 'खना' की नियति जैसी ही है। पुरुष कभी भी स्त्री को अपने से आगे या बराबर देखना पसंद नहीं करता। उनके यही विचार हैं कि स्त्री का स्थान सदा उनके नीचे रहे। पुरुष वर्चस्ववादी समाज में यह विचार जहर के समान ठहरा हुआ है। चाहे परिवार में हो, राजनीति में हो या कार्यालयों में, स्त्री के साथ भेदभाव होता चला आ रहा है। पुरुष के लिए विचारहीन स्त्री ही स्वीकार्य है। प्रस्तुत नाटक में एक ओर मेधा, एक कामकाजी युवती, अपने कार्यालय में पुरुष सहकर्मियों की सहायता न मिल पाने के कारण दु:खी है, तो दूसरी ओर पौराणिक पात्र खना, ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर की पुत्रवधू, जो अपने पाण्डित्य के कारण समाज के सामने मूक बनने के लिए मजबूर हो जाती है। चौथी-पाँचवीं शताब्दी में जो खना के साथ हुआ था, आज भी स्त्रियों के साथ वही हो रहा है। प्रस्तुत नाटक समकालीन संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध हो रहा है।

मीरा कांत का यह नाटक वास्तव में पिंजरे में बंधी स्त्री की रूह को मुख्यधारा में लाने के प्रयास का परिणाम है। आज के इस चुनौतीपूर्ण रचना संदर्भ में इतिहास प्रसिद्ध पुरुष पात्रों को लेकर स्त्री विमर्श का तेर

चलाना कोई मामूली बात नहीं है। प्रस्तुत नाटक में लेखिका ने इतिहास प्रसिद्ध एवं सर्व-सम्मान्य पुरुष पात्रों को केंद्र में रखकर खोई हुई स्त्री अस्मिता पर सवाल उठाया है। यह पौराणिक और आधुनिक संदर्भों के माध्यम से स्त्री की सदियों से चली आ रही दमन और उपेक्षा को उजागर करता है। यह नाटक स्त्री की विद्वता और कुशलता को नजरअंदाज करने वाले पुरुष वर्चस्ववादी समाज की मानसिकता पर कठोर प्रहार करता है। खना और मेधा जैसे पात्रों के माध्यम से, लेखिका ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि समय चाहे कोई भी हो, स्त्री को उसकी अस्मिता और विद्वता के लिए संघर्ष करना पड़ता है। खना का पाण्डित्य, जो उसे राजसभा में स्थान दिला सकता था, पुरुष अहंकार के चलते नेपथ्य में धकेल दिया जाता है। इसी प्रकार, आधुनिक समाज में मेधा भी अपने पुरुष सहकर्मियों के साथ संघर्षरत है। यह नाटक यह स्पष्ट करता है कि स्त्री के संघर्ष का इतिहास बहुत पुराना है और आज भी समाज में उसके अधिकारों और पहचान के लिए एक लंबी लड़ाई बाकी है। "नेपथ्य राग" एक स्त्री के विद्रोह की आवाज है, जो मुख्यधारा में आने के लिए निरंतर प्रयासरत है, और यह दर्शाता है कि स्त्री की अस्मिता और उसकी विद्वता को स्वीकार करने में समाज को अभी भी लंबा सफर तय करना है।

संदर्भ :

1. ममता कालिया, भविष्य का स्त्री विमर्श, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 14
2. जयदेव तनेजा, आधुनिक भारतीय नाट्य विमर्श, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, पृ. 274
3. मीरा कांत, नेपथ्य राग, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2022, पृ. 5
4. वही, पृ. 12
5. वही, पृ. 16
6. वही, पृ. 61
7. वही, पृ. 61

●●●

'वेताल का जीवन कितना एकाकी' कहानी में अभिव्यक्त वृद्ध जीवन का यथार्थ

❍ दिलना सी.[1]
❍ डॉ. प्रीति के.[2]

साहित्य समाज को देखने का एक सफल माध्यम है। समय के साथ साहित्य भी अपना चेहरा बदलकर सामने आता है। साहित्यकारों ने अपने ज्ञान और अनुभवों के माध्यम से साहित्य सृजन करके समाज में घटित घटनाओं से साक्षात्कार कराया है। साहित्य की विभिन्न विधाएँ जैसे कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि में इसका प्रतिबिंब मिलता है। कहानी साहित्य की एक सशक्त विधा है। कहानी तत्कालीन सामाजिक जीवन की यथार्थता से टकराती है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, किन्नर विमर्श, आदिवासी विमर्श, प्रवासी विमर्श, किसान विमर्श, वृद्ध विमर्श आदि इस कोटी में आते हैं। वर्तमान समय में वृद्ध विमर्श पर काफी चर्चा हो रही है। समाज के शोषित और पीड़ित लोगों के जीवन और दर्द को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। उन्हें मुख्य धारा में लाने के प्रयास कहानी में गूंज रहे हैं। प्रवासी साहित्य वृद्ध विमर्श के प्रभाव से अछूता नहीं रहा है। प्रवासी साहित्यकारों की रचनाओं में वृद्धों का अकेलापन अधिक देखने को मिल रहा है।

वृद्ध विमर्श एक ऐसा विमर्श है जिसमें वृद्धों की परिस्थितियों और समस्याओं को समझकर समाधान प्रस्तुत किया जाता है। वृद्धावस्था जीवन का एक सच है। वृद्ध होना एक प्राकृतिक घटना है। यह घटना सभी में मौजूद है। वृद्धावस्था अनेक परेशानियों से गुजरती है जैसे तनाव, घुटन, उपेक्षाएँ, द्वंद्व, अकेलापन आदि। आज करियर को चमकाने की दौड़ चल रही है। इस दौड़ में परिवार के लिए बिताने का समय भी नहीं मिलता। माता-पिता अपनी पूरी जिंदगी बच्चों की पढ़ाई और करियर के लिए समर्पित कर देते हैं। जीवन भर उनकी भलाई के लिए महत्वपूर्ण प्रयत्न करते हैं। परिणामस्वरूप, बच्चे अपनी जिंदगी में सेटल हो जाते हैं और आगे बढ़कर रास्ता भी भूल जाते हैं। वे अपनी जीवन की दौड़ में व्यस्त हो जाते हैं। इस स्थिति में वृद्ध विमर्श एक महत्वपूर्ण और प्रासंगिक विमर्श के रूप में सामने आता है।

---

1. शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, कण्णूर विश्वविद्यालय, केरल
2. एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभाग अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, कण्णूर विश्वविद्यालय, केरल

व्यक्तियों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर बसने की क्रिया को प्रवास कहते हैं। यह प्रवास काम के लिए, शिक्षा के लिए या अन्य जरूरतों के लिए भी हो सकता है। जब एक व्यक्ति अपने मूल स्थान को छोड़कर किसी अन्य स्थान पर जाकर रहता है, तो उसे प्रवासी कहा जाता है। वर्तमान समय में समकालीन हिंदी साहित्य प्रवासी समस्याओं और जिंदगी को अनदेखा नहीं कर सकता। प्रवासी साहित्य ने आज विश्वभर में अपनी उपस्थिति को मजबूती से दर्ज कराया है। डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार प्रवासी साहित्य ने हिंदी को नई जमीन दी है।

'वेताल का जीवन कितना एकाकी' नामक कहानी एक ऐसी समस्या को केंद्र में रखकर लिखी गई है जो हमारे देश में एक आम समस्या के रूप में उभरकर आई है। पढ़-लिखकर बच्चे अपना शहर या देश छोड़कर विदेश में चले जाते हैं और वहाँ सेटल हो जाते हैं। आज हमारे देश में युवाओं का पलायन तेजी से बढ़ रहा है। विदेश में जाकर पढ़ाई और नौकरी का चलन अब कोई नई बात नहीं है। पिछले कुछ वर्षों में यह चलन तेजी से बढ़ा है। यह हमारे लिए चिंतन का विषय है। विदेश में जाने वाले अधिकांश लोगों का कहना है कि भारत की शिक्षा प्रणाली में विकल्पों की कमी है और यहाँ के विश्वविद्यालयों में उपलब्ध पाठ्यक्रम को निरर्थक मानते हैं। आज की युवा पीढ़ी उच्च शिक्षा प्राप्त कर विदेश में सेटल होना चाहती है। विदेशों में उच्च जीवन स्तर और आधुनिक सुविधाओं की उपलब्धता, रूढ़िवादिता से मुक्ति, सामाजिक स्वतंत्रता, अंतर्राष्ट्रीय अनुभव प्राप्त करने की इच्छा आदि विदेश में पलायन करने के कारण बनते हैं। लेखक ने इस कहानी में इसके परिणाम को प्रस्तुत किया है। आज हर उच्च शिक्षित युवा वर्ग अच्छी नौकरी और करियर के लिए अपना देश छोड़कर विदेश की ओर पलायन कर रहा है। इस वजह से माता-पिता अकेलेपन के साथ जीवन बिताने के लिए विवश हो जाते हैं। यह स्थिति हमारे देश, समाज और परिवार के लिए एक बड़ी चोट है। बच्चों के विदेश बसने का दुष्परिणाम यह है कि बुजुर्ग माता-पिता हमेशा के लिए अकेलापन का शिकार बन जाते हैं। 'वेताल का जीवन कितना एकाकी' नामक कहानी में पंकज सुबीर ने एक बूढ़े के माध्यम से अपने जीवन में झेले यथार्थ को प्रस्तुत किया है। इस कहानी में लेखक ने कई मुद्दों का पर्दाफाश किया है। अकेलापन एक मानसिक स्थिति है। यहाँ बूढ़े का अकेलापन शिद्दत के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि, "क्या होता है परिवार? कुछ लोग जो आपके साथ जुड़ते हैं, कुछ दूर तक साथ चलते हैं, फिर अचानक एक दिन छोड़ जाते हैं हमें, एकदम अकेला. .. बहुत सारी यादों के साथ..."[1] इस पंक्ति में बूढ़े की यातना की ओर इशारा किया गया है। बूढ़े के दो बच्चे हैं। अब दोनों अमेरिका में नौकरी कर रहे हैं। शादी भी हो गई है। दोनों परिवार के साथ वहीं सेटल हो गए हैं। वे अपने पूरे समय को कंपनी के लिए बेच देते हैं, क्योंकि इसके बदले में उन्हें डॉलर मिल रहे हैं। बूढ़ा अपने बच्चों की इस हरकत पर व्यंग्य करते हुए कहता है कि "हमने बच्चों को पैदा किया, पाला, पढ़ाया, बड़ा किया. .. हर माँ-बाप का काम ही है, उसमें हमने नया क्या किया ? मगर इन सबमें हमने बहुत बार अपनी इच्छाओं को मारा। बहुत कुछ ऐसा किया जो हम नहीं करना चाहते थे।"[2] बूढ़ा सरकारी नौकरी में था। जब बच्चों की इच्छाओं का खर्च सैलरी से पूरा नहीं कर पाया, तो उसने भ्रष्टाचार शुरू किया। रिश्वत लेना, गलत काम करना सब शुरू किया। बूढ़ा अपने बच्चों के मोह में फँस गया था। वह उन्हें सब सुख देना चाहता था। उसने अपनी पूरी जिंदगी बच्चों के लिए समर्पित की। लेकिन जब बच्चों को विदेश में काम मिला तो बूढ़े को नजरअंदाज किया गया। आजकल हर माता-पिता के साथ यही स्थिति बनी रहती है। इसी वास्तविकता को लेखक ने यहाँ दर्शाया है।

बच्चे अमेरिका में सेटल हो जाने के बाद उनकी माँ अक्सर अपने पति को भारत में छोड़कर अमेरिका के चक्कर काटती रहती हैं, नाती-पोतों को पालने और बड़ा करने के लिए। मोह में बँधी हुई चौदह-पंद्रह घंटों की कष्टप्रद यात्रा करते हुए आवाजाही करती रहती हैं। जीवनभर कभी हवाई जहाज में नहीं बैठने वाली ये

हाउसवाइफ लंबी-लंबी यात्राएँ बच्चों के लिए करती हैं, करती रहती हैं। अपने घुटने के दर्द, लो बीपी, शुगर, कोलेस्ट्रॉल सब कुछ भूलकर अकेले ही हवाई यात्रा पर निकल जाती हैं। यहाँ माँ की हालत को इस प्रकार व्यक्त किया गया है: "यहाँ आती थी तो बच्चों की चिंता उसे सताती थी और वहाँ जाती तो मेरी। मैं जॉब के कारण जा नहीं पाता था उसके साथ। वहाँ रहती तो मेरी चिंता में घुलती और यहाँ रहती तो बच्चों की, नाती-पोतियों की चिंता में। वह कहीं भी सुखी नहीं थी। उसका परिवार बंट गया था। वह बंटे हुए हर हिस्से के साथ रहना चाहती थी, जो संभव नहीं था।"[3] माँ विदेश जाने के बाद पिता एकदम अकेला हो जाता है। लेखक ने आज की पीढ़ी की मानसिकता को भी इस कहानी में प्रस्तुत किया है। वह कहता है: "नब्बे के बाद पैदा हुए तुम लोग हमारी तुलना में बहुत सुखी हो। तुम लोग इमोशनल नहीं हो, तुम लोग मूर्ख नहीं हो। तुम नॉस्टेल्जिक नहीं होते। तुम लोग अंदर से सूखे हुए हो। तुम लोग इंसान, पशु, पक्षी, वस्तुएं, जगहें... किसी के साथ कभी अटैच नहीं होते, हर समय डिटैच मोड में रहते हो।"[4, 3] आज के युवा पीढ़ी किसी बात पर ज्यादा ध्यान नहीं देती है। वे रिश्तों को ज्यादा महत्व नहीं देते और हमेशा अपने आप में सीमित रहना पसंद करते हैं।

माता-पिता अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए अपनी संतान के लिए जीवन भर का संघर्ष करते हैं, उनकी शिक्षा, करियर और हर छोटी-बड़ी जरूरत का ध्यान रखते हैं। वे अपनी इच्छाओं का त्याग करते हुए अपने बच्चों को सर्वोत्तम सुविधाएं प्रदान करने का प्रयास करते हैं। लेकिन जब ये बच्चे बड़े होकर आत्मनिर्भर हो जाते हैं, तो अक्सर माता-पिता की देखभाल करने के बजाय उन्हें वृद्धाश्रम में भेज दिया जाता है। यह एक गहरी सामाजिक समस्या है जो केवल माता-पिता की उपेक्षा को नहीं, बल्कि पारिवारिक संबंधों में आ रही दरारों को भी उजागर करती है। यह प्रवृत्ति हमारे समाज में नैतिकता और मूल्यों के पतन का प्रतीक है, जहां अपने ही माता-पिता की सेवा और सम्मान करने का भाव धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है।

पंकज सुबीर की यह कहानी न केवल वृद्ध जीवन की असहायता को चित्रित करती है, बल्कि क्रूर और असंवेदनशील समाज की जीती-जागती तस्वीर भी पाठक वर्ग के सामने प्रस्तुत करती है। यह कहानी सबके अंतर्मन को छू जाती है और सोचने को विवश करती है। लेखक ने वृद्धों की द्वंद्वात्मक जीवन को बड़े संवेदनशील ढंग से उठाया और उनकी उपेक्षा, पीड़ा, यातना, तिरस्कार आदि को व्यापक स्थान दिया। इस कहानी में लेखक ने वृद्धावस्था की चुनौतियों को बड़ी मार्मिकता के साथ चित्रित किया है, विशेषकर उन बुजुर्गों के अनुभवों को जिन्होंने अपने बच्चों की बेहतर भविष्य की खातिर अपना सब कुछ त्याग दिया। विदेश में सेटल होने वाली युवा पीढ़ी की प्रवृत्ति और उसके परिणामस्वरूप माता-पिता की स्थिति को बखूबी उजागर किया गया है। यह कहानी वृद्धों के अकेलेपन और उनके साथ समाज की असंवेदनशीलता की कड़ी तस्वीर प्रस्तुत करती है, जिससे समाज को वृद्ध जीवन पर गहन सोचने की आवश्यकता का एहसास होता है। अंततः यह कहानी न केवल सामाजिक यथार्थ की आलोचना करती है, बल्कि बुजुर्गों के प्रति सहानुभूति और सम्मान की आवश्यकता को भी दर्शाती है।

संदर्भ :

1. पंकज सुबीर, हमेशा देर कर देता हूँ मैं, पृ. 51, राजपाल एण्ड सन्ज, प्र.सं. 2021, दिल्ली
2. वही, पृ. 52
3. वही, पृ. 56
4. वही, पृ. 57

●●●

'मंत्र' : सांस्कृतिक टकराव और मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति

❍ वैष्णव पी. वी.[1]
❍ डॉ. प्रीति के.[2]

प्रेमचंद का साहित्य समाज का यथार्थ एवं सजीव चित्रण करता है। उन्होंने समाज से जुड़ी हर समस्या को न केवल कलम से, बल्कि दिल से भी लिखने का प्रयास किया है। कड़वे सत्यों और दर्दनाक अनुभवों को पाठकों तक पहुँचाने की उनकी क्षमता अद्वितीय है। युगांतरकारी दृष्टिकोण रखने वाले प्रेमचंद को आधुनिकता की ओर बढ़ते समाज की गहरी समझ थी। इस भूमंडलीकृत समाज में सांस्कृतिक यथार्थ की चर्चा कहाँ तक सार्थक है, यह 'मंत्र' कहानी के अध्ययन से ही साबित किया जा सकता है। समाज और संस्कृति को कहाँ तक कलंकित किया गया है या निगल लिया गया है, यह हमारी सोच से परे है। भारतीय संस्कृति और समाज को केवल पुराने निशानों के बल पर कायम रखना संभव नहीं होगा, लेकिन सांस्कृतिक विकास की राह में पाश्चात्य संस्कृति की पैनी पकड़ किस प्रकार हुई, इसे समझना अत्यंत आवश्यक है। कौन सी संस्कृति महान है, यह सवाल कभी नहीं उठाना चाहिए। संस्कृति को किस प्रकार अपनाया और प्रस्तुत किया जाता है, यह देखना जरूरी है। पुष्पपाल सिंह प्रेमचंद के बारे में लिखते हैं कि "प्रेमचंद ने कहानी को यथार्थ की प्रस्तुति का नया धरातल प्रदान किया था। उन्होंने मनुष्य, समाज, व्यक्ति और उसके जीवन-परिवेश को कथा के केंद्र में ला खड़ा किया था। सामान्य व्यक्ति उनकी कहानियों का नायक बना था।"[1]

प्रेमचंद ने श्मंत्रश कहानी को सोच-समझकर ही विन्यास किया है। कहानी में प्रतिपादित विषय काल की गति बदल जाने पर भी कालजयी बनता जा रहा है, क्योंकि हम जिस दुनिया में जी रहे हैं, वहाँ सांस्कृतिक टकराव की समस्या अत्यंत गहन है। कहानी का प्रमुख पात्र बूढ़ा भगत है, जो एक साधारण व्यक्ति है। दूसरा पात्र शहर का मशहूर डॉक्टर है, जिसका नाम है डॉ. चड्ढा। कहानी में उस सामाजिक यथार्थ को उल्लेखित

1. शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, कण्णूर विश्वविद्यालय, केरल
2. एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभाग अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, कण्णूर विश्वविद्यालय, केरल

किया गया है, जो वर्तमान समय में काफी देखा जा सकता है। बूढ़ा भगत से लेकर कैलाशनाथ तक के पात्रों के चित्रण में मानसिक दशा के विविध आयामों को बखूबी खींचा गया है। सांस्कृतिक यथार्थ को चित्रित करने के लिए प्रेमचंद ने मनोवैज्ञानिक दशा का सहारा जरूर लिया है। कहानी के विभिन्न पात्रों के व्यक्तित्व एवं व्यवहार से यह गहराई से उभारा गया है।

भारतीय संस्कृति के मूल्यों को पहले से ही पाश्चात्य संस्कृति के चिंतन से संपन्न बनाने का प्रयास हुआ था, जिससे मानवीय संवेदना पर कड़ी चोट पहुँची है। लोग व्यक्तिगत हो गए हैं और अपनी भावनाओं में जीने लगे हैं। दूसरों के लिए अपने पास का वक्त देने के लिए वे तैयार नहीं हैं। कहानी में डॉक्टर के कर्मों से यह स्पष्ट होता है कि स्वयं को सभ्य मानने वाले लोग अपने मनोरंजन को किसी की जान से अधिक महत्व देते हैं। अपने मरणासन्न बेटे की जान बचाने के लिए डॉ. चड्ढा के पास पहुँचे भगत के साथ वह निष्ठुरता से व्यवहार करता है। एक डॉक्टर का धर्म क्या होता है, या क्या होना चाहिए, यह चड्ढा भूल जाता है। सभ्यता और आर्थिक लाभ की लालच में लोग कैसे अपनी सांस्कृतिक मूल्यों को भूल जाते हैं, यह अवांछनीय है। सालों बाद जब डॉ. चड्ढा के बेटे को साँप काटता है, तो विष उतारने और जान बचाने के लिए वह उसी भगत के पास आता है जिसे उसने सालों पहले धकेल कर दूर कर दिया था। उस दिन भगत के साथ केवल अपने बेटे की आत्मा थी। कहानी में पात्रों का संयोगवश मिलना या मिलाना पूर्वनिर्धारित था।

'मंत्र' कहानी को दो सभ्यताओं के रूप में व्यक्त करना उचित रहेगा। एक ओर भारतीय संस्कृति है, और दूसरी ओर उस पर अधिकार जताने के लिए तैयार पाश्चात्य संस्कृति। वर्तमान समय में पूरा समाज पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करने की सोच में है। यह कहानी के एक प्रसंग में व्यक्त होता है- "हरी-हरी घास पर कुर्सियाँ बिछी हुई थीं। शहर के रईस और हुक्काम एक तरफ, कालेज के छात्र दूसरी तरफ बैठे भोजन कर रहे थे। बिजली के प्रकाश में सारा मैदान जगमगा रहा था। आमोद-प्रमोद का सामान भी जमा था।"[2] दूसरी ओर, लेखक मूल्यहीन समाज को देखकर अपनी संस्कृति की नष्ट होती गरिमा पर दुखी होता है- "सभ्य संसार इतना निर्मम, इतना कठोर है, इसका ऐसा मर्मभेदी अनुभव अब तक न हुआ था। वह उन पुराने जमाने का जीव था, जो लगी हुई आग को बुझाने, मर्दे को कंधा देने, किसी के छप्पर को उठाने और किसी कलह को शांत करने के लिए सदैव तैयार रहते थे।"[3] कहानी का मुख्य पात्र भगत एक साधारण गँवार व्यक्ति है। वह अपनी वैद्यकला को सेवा के रूप में देखता है, जबकि डॉ. चड्ढा, जो पढ़ा-लिखा आदमी है, डॉक्टरी सेवा को आर्थिक लाभ का साधन मात्र समझता है। लाखों खर्च करने वाले के मन में मानवीयता का कोई कण नहीं है। वह व्यक्तिगत जीवन की उन्नति पर अधिक ध्यान देता है। मरीजों के लिए समय सीमा रखने वाले डॉ. चड्ढा के शब्दों में संस्कृति की मूल्यहीनता झलकती है- "कल सबेरे आओ, कल सबेरे, हम इस वक्त मरीज को नहीं देखते। यह हमारे खेलने का समय है।"[4] आधुनिक समाज में इस प्रकार की समस्या एक सुनी-सुनाई कहानी तक सीमित हो जाती है। सभ्य कहलाने वाले लोग अपने दायित्व से अधिक संवेदनात्मक मूल्यों को भूल जाते हैं और उन्हें नजरअंदाज करते हैं।

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी अहमियत यह है कि वह सबको स्वीकार करती है और लोगों की मानवीयता, निस्सहायता तथा संकट को पहचानती है। मानवीयता की इज्जत और मूल्यों को दूसरों तक फैलाना इसकी सबसे बड़ी खासियत है। कहानी में भगत अपनी क्षति को भूलकर डॉ. चड्ढा की सहायता करता है। अपनी मानसिक वेदना और गर्व को समझकर वह उचित व्यवहार करता है। मानसिक द्वंद्व को सही रूप से वह निपटाता है।

प्रेमचंद की कहानी पाश्चात्य संस्कृति की असफलता और भारतीय संस्कृति की महानता को उजागर करती है। पाश्चात्य संस्कृति की कमी को देखना व्यक्तियों की निपुणता–हीनता के कारण है, न कि संस्कृति की। यह समस्या केवल डॉ. चड्ढा की नहीं, बल्कि समाज के विभिन्न वर्गों की है। हालांकि, डॉ. चड्ढा के बेटे में एक मानसिक परिवर्तन देखा जा सकता है, जो भारतीय संस्कृति के प्रति उसकी संवेदनशीलता को दर्शाता है। वह आयुर्वेद का उपयोग करता है और जड़ी–बूटियाँ इकट्ठा करता है, जो पाश्चात्य संस्कृति की उपेक्षा के बावजूद भारतीय मान्यताओं के प्रति उसकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है। सांस्कृतिक टकराव के साथ दो लोगों की मानसिकता का चित्रण करने के लिए प्रेमचंद ने इस कहानी का सहारा लिया। डॉ. चड्ढा की मानसिकता को विरूपित मनोभाव की संज्ञा देना स्वाभाविक है, क्योंकि वह इसके लायक है। भगत के अंदर जो मानसिक तनाव और द्वंद्व पैदा हुआ है, उससे भगत को कठोर साबित करना सही नहीं है। यह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया मात्र है। इसी वजह से जब डॉ. चड्ढा के बेटे को साँप काटता है, तो भगत सोचता है – "अच्छा किया...अच्छा किया। कलेजा ठंडा हो गया, आँखें ठंडी हो गईं। लड़का भी ठंडा हो गया होगा। तुम जाओ, आज चौन की नींद सोऊँगा।"[5] भगत एक साधारण व्यक्ति की मनोदशा से सोचता है कि डॉक्टर ने जो गलती उसके साथ की थी, उसकी ठीक सजा मिली है। वह आगे सोचता है कि, "अरे, दोपहर ही होता, तो मैं न जाता। सवारी दरवाजे पर लेने आती, तो भी न जाता। भूल नहीं गया हूँ। पन्ना की सूरत आज भी आँखों में फिर रही है। इस निर्दय ने उसे एक बार देखा तक नहीं। क्या मैं न जानता था कि वह न बचेगा, खूब जानता था, चड्ढा भगवान नहीं थे कि उनके एक निगाह देख लेने से अमृत बरस जाता। नहीं, खाली मन की दौड़ थी। जरा तसल्ली हो जाती। बस, इसलिए उनके पास दौड़ा गया था। अब किसी दिन जाऊँगा और कहूँगा– क्यों साहब, कहिए, क्या रंग है, दुनिया बुरा कहेगी, कोई परवाह नहीं। छोटे आदमियों के तो सब ऐब हैं। बड़ों में कोई ऐब नहीं होता। देवता होते हैं।"[6] भगत की इस सोच को अमानवीय कहना सही नहीं है। क्योंकि अपने परिवार के एक सदस्य को खोने के बाद यह एक साधारण मानसिक दशा की आर्तनाद है। उसे स्वयं पता है कि जिस सोच से वह गुजर रहा है, वह अमानवीय है। लेकिन इसका अंदाजा उसे जरूर था, जो डॉ. चड्ढा में नहीं देखा जा सकता। डॉ. चड्ढा की मनोदशा की तुलना करते समय यह स्पष्ट होता है कि भगत सही है, क्योंकि डॉ. चड्ढा ने अपने ध र्म और सेवा को भूलकर जीवन जिया है।

आज की दुनिया में ज्ञान को आर्थिक लाभ का मार्ग मानने वाले और ज्ञान को सेवा के भाव में देखने वाले दोनों प्रकार के लोग मौजूद हैं। ज्ञानी होने का मतलब यह नहीं है कि सभी मर्यादाओं को तोड़ दिया जाए। लेखक ने कैलाश के माध्यम से इस बात को उजागर किया है। वह अपनी प्रेमिका के सामने खुद को साबित करने के लिए साँप के साथ खेलता है। यह नई पीढ़ी की एक विरूप मानसिकता का चित्रण है– "मगर कैलाश एक न सुनता था। प्रेमिका के सम्मुख अपने सर्प कला का प्रदर्शन का ऐसा अवसर पाकर वह कब चूकता।"[7]

'मंत्र' कहानी समाज में व्याप्त सांस्कृतिक टकराव और स्वयं को सभ्य मानने वाले समाज तथा साधारण भारतीय गंवार संस्कृति पर अटल रहने वाले लोगों की मनोवैज्ञानिक यथार्थ का अंकन है। सभ्य कहलाने वाला समाज साधारण लोगों को किस तरह से देखता है, यह डॉक्टर के माध्यम से साफ वर्णित है– "ऐसे उज्जड़ देहाती यहाँ प्रायः रोज आया करते थे। डॉ. साहब उनके स्वभाव से खूब परिचित थे। कोई कितना कुछ कहे, पर वे अपनी ही रट लगाते जाएँगे। किसी की सुनेंगे नहीं।"[8] यहाँ डॉक्टर चड्ढा साधारण लोगों की मानसिक स्थिति को समझने के लिए तैयार नहीं हैं। दूसरी तरह से देखें तो यह कहानी चिकित्सा के पथ पर प्रविष्ट दो चिकित्सकों की मनोवृत्तियों का चित्रण भी है। पाश्चात्य संस्कृति ने व्यक्ति में अहंकार को बढ़ावा दिया है, जबकि भारतीय संस्कृति ने अहंकार से परे, समग्र सुख की भावना को चित्रित किया है।

प्रेमचंद की कहानी 'मंत्र' उस समय में जितनी यथार्थवादी थी, आज के समय में भी उन सभी मूल्यों और मानदंडों पर खरा उतरती है। इसमें प्रतिपादित विषय काल की गति बदल जाने पर भी कालजयी बनता जा रहा है, क्योंकि हम जिस दुनिया में जी रहे हैं, वहाँ सांस्कृतिक टकराव की समस्या अत्यंत गहन है। यह कहानी आज के समाज के यथार्थ को बखूबी चित्रित करती है। इसमें दो भिन्न सभ्यताओं- पाश्चात्य और भारतीय के बीच का संघर्ष स्पष्ट रूप से दिखता है। इस संघर्ष में एक ओर डॉक्टर चड्ढा जैसे पात्र हैं, जो अपने पेशे को केवल आर्थिक लाभ का साधन मानते हैं, जबकि दूसरी ओर भगत जैसे साधारण लोग हैं, जो मानवीय मूल्यों और सेवा के प्रति समर्पित हैं। डॉक्टर चड्ढा का पात्र पाश्चात्य संस्कृति के उस पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है, जहाँ मानवता की जगह अहंकार और स्वार्थ को अधिक महत्व दिया जाता है। वह साधारण देहाती लोगों को कमतर मानता है और उनकी परेशानियों को उनकी कमियों के रूप में देखता है। यहाँ प्रेमचंद इस मानसिकता पर तीखा प्रहार करते हैं, जहाँ तथाकथित सभ्य समाज साधारण लोगों की समस्याओं को समझने में असमर्थ रहता है। दूसरी ओर, भगत जैसे पात्र भारतीय संस्कृति के उस पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं, जहाँ सेवा और सहानुभूति को प्राथमिकता दी जाती है। कहानी में प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि यह संघर्ष केवल बाहरी नहीं, बल्कि आंतरिक भी है, जो दो पीढ़ियों और दो मानसिकताओं के बीच चलता है। इसमें प्रेमचंद ने जिस सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक यथार्थ को उकेरा है, वह आज भी प्रासंगिक है। चाहे समय बदल गया हो, लेकिन मूल्यों और मानदंडों का टकराव आज भी समाज में विद्यमान है। अत: 'मंत्र' जैसी कहानियाँ सिर्फ साहित्यिक धरोहर नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक मूल्यांकन के साधन भी हैं, जो हमें अपने समय और समाज को बेहतर ढंग से समझने में मदद करती हैं।

संदर्भ :

1. पुष्पपाल सिंह, समकालीन कहानी : सोच और समझ, आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1986, पृ. 19-20
2. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग-5, भारतीय ग्रंथ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण-2010, पृ. 228
3. वही, पृ. 228
4. वही, पृ 227
5. वही, पृ. 233
6. वही,पृ. 234
7. वही, पृ. 230
8. वही, पृ. 227

●●●

अखिलेश की कहानी 'बायोडेटा' में अभिव्यक्त आधुनिक राजनीति की नैतिक विडंबना

❍ विनया एन.[1]
❍ डॉ. प्रीति के.[2]

आज के समाज में व्यक्ति के जीवन में, खासकर उनके सोच-विचारों में, राजनीति विशेष प्रभाव डाल रही है। राजनीति का संबंध केवल चुनाव के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है; वह व्यक्ति के प्रतिदिन के कार्यकलापों पर भी विशेष रूप से प्रभाव डालती है। नेमीचंद्र जैन के अनुसार, 'राजनीति आज इस प्रकार इतने विविध रूपों और इतनी दूर तक समुदाय और व्यक्ति के जीवन में घुस आई है कि उससे किसी के लिए तटस्थ रहने की गुंजाइश नहीं।'[1] समाज, साहित्य और व्यक्ति का अटूट संबंध है। समाज से जुड़े रहने के कारण समाज के हर पहलू का चित्रण साहित्य में होता है। उसी प्रकार साहित्य और राजनीति भी एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से राजनीतिक चेतना का प्रसार करता है और उसके द्वारा जनता को जागृत करता है।

समकालीन हिन्दी कथा साहित्य के सशक्त कथाकार अखिलेश ने हिन्दी कहानी को एक नया मोड़ प्रदान किया है। उनकी रचनाएँ हमारे समय की जटिल स्थितियों का उद्घाटन करती हैं और इस जटिलता की जड़ों की तलाश करती हैं। उनकी कहानियों में दैनिक जीवन के अनुभवों, अपने इर्द-गिर्द जीते-जागते मनुष्यों के घर एवं परिवार के घात-प्रतिघातों, और बदलते समय को केंद्र में रखकर कथा रची-बुनी गई है, जो उन्हें अन्य कथाकारों से अलग करती है। अखिलेश की अधिकांश कहानियाँ राजनीतिक विमर्श पर आधारित हैं। राजनीति को छूकर रचना करने वाले साहित्यकार को अपनी रचनाओं में उसकी अभिव्यक्ति करते समय अपार धैर्य एवं सख्त आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है। अखिलेश की कहानियाँ हमारे समय की जटिल स्थितियों का उद्घाटन करती हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से आधुनिक राजनीति में हो रहे भ्रष्टाचार, नेताओं की

1. शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, कण्णूर विश्वविद्यालय, केरल
2. एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभाग अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, कण्णूर विश्वविद्यालय, केरल

पदलोलुपता, नेताओं की गुंडागर्दी और अन्य राजनीतिक विसंगतियों का चित्रण किया है

राजनीतिक विमर्श पर आधारित एक चर्चित कहानी है 'बायोडाटा'। यह कहानी भारतीय राजनीति के कड़वे सच और नेताओं की नैतिकता के पतन का यथार्थ चित्रण है। कहानी के माध्यम से लेखक ने न केवल राजनीति के गंदे खेल का खुलासा किया है, बल्कि यह भी दिखाया है कि कैसे सत्ता की लालसा एक व्यक्ति को संवेदनहीन और स्वार्थी बना देती है।

इस कहानी का केंद्र पात्र राजदेव मिश्र है। उनका राजनीति में प्रवेश किसी आदर्शवादी या जनसेवी उद्देश्य से नहीं होता, बल्कि एक पारिवारिक दुर्घटना और उसके बाद आए आत्ममंथन से प्रेरित होकर होता है। यह कहानी अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए राजनीतिक पदों को हासिल करने के लिए बेचारी जनता को हथियार बनाने वाले राजदेव के इर्द-गिर्द घूमती है। राजनीति में अधिकार तथा पद प्राप्त करना राजदेव का लक्ष्य था और उसके लिए वह अपने परिवार, पत्नी-बच्चे तक को दाँव पर लगाता है। वह अपने परिवार से प्यार राजनीतिक फायदा मिलने के लिए करता है। सत्ता में बने रहने के लिए वह विभिन्न प्रकार के षड्यंत्र रचता है। अपने हितों की पूर्ति करना राजदेव की प्राथमिकता बन गई थी। वह जानता था कि बड़े नेताओं को खुश करके ही पद हासिल कर सकता है। इसके लिए वह मोती सिंह जैसे नेताओं के यहाँ चापलूसी करके सब कुछ हासिल करना चाहता है। यह आज के आधुनिक नेताओं की साधारण प्रवृत्ति है। कहानी में राजदेव के माध्यम से लेखक ने आधुनिक राजनेताओं का यथार्थ स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत किया है। राजदेव की सोच और कार्यशैली यह दर्शाती है कि उसके लिए नैतिकता, परिवार और रिश्ते कोई मायने नहीं रखते; उसे सिर्फ अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करनी है। वह अपनी पत्नी तथा बच्चे से प्रेम भी राजनैतिक लाभ उठाने के लिए ही करता है। वह कहता है, 'ऐसे ही अगर पार्टी के आला नेता खुश हो जाते तो मजा आ जाता। बस वे चुटकी बजाएँ, तो मुझको लाल बत्ती वाली कार मिल जाए। अर्दली और अंगरक्षक भी ससुरे सेवा करें... कौन ठीक, प्रदेश सचिव बनने के बाद मिनिस्टरी न सही, जल्दी निगम की चेयरमैनी ही अपने तंबू के नीचे आ जाए। तब भी तो लालबत्ती, बँगला, फोन वगैरह का बंदोबस्त पक्का समझो। खसोट लूँ सब रुपया। हड़पकर कंगाल कर दूँगा निगम। किसी दूसरे नेता का जाने का मन नहीं होगा फिर उस कुर्सी पर... जो भी हो, मोती सिंह की कृपा से भविष्य उज्ज्वल दिखाई दे रहा है।'[२] इस प्रकार राजदेव आज के नेताओं के प्रतिनिधि बनकर हमारे सामने आता है।

राजनीतिक नेताओं का मुख्य लक्ष्य प्रजा का हित होना चाहिए। लेकिन आज की राजनीति का स्वरूप बदल गया है। नेताओं का लक्ष्य प्रजा हित के बजाय अपना हित साधना और अपनी जेब भरना बन गया है। राजनीतिक नेताओं के दृष्टिकोण में भी बदलाव आया है। आदर्श नेताओं का मुखौटा पहनकर वे भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी जैसे अनैतिक कार्यों का साथ दे रहे हैं। अखिलेश के कथा पात्र राजदेव भी इसी प्रकार का व्यक्ति है। राजदेव का वास्तविक स्वरूप अखिलेश ने इस प्रकार दिया है- 'वह दृढ़प्रतिज्ञ था कि उसे नेतागीरी करनी है क्योंकि उसने जान लिया था कि सुख की सर्वोत्तम मलाई राजनीति के दूध में पड़ती है। पहुँचे हुए नेता हो, तो चोरी कराओ, स्मगलिंग कराओ, कत्ल कराओ, कोई बाल बाँका नहीं कर सकता। बलात्कार करो, रंडीबाजी करो, प्यार करो या वासना, दारू पियो, कानून की ऐसी-तैसी कर दो, कोई खौफ नहीं। पुलिस, पी.ए.सी. हो, हाकिम-हुक्काम हों, डाकू-बदमाश हो सब हाथ जोड़े मिलेंगे। ईश्वर की अनुकंपा से माल-पानी की कमी नहीं। इंजीनियर वगैरह का ट्रांसफर करा दो, चाँदी। रुकवाओ, तो चाँदी। चुनाव का पैसा है उसमें खसोट लो। सूखा-बाढ़ का पैसा है, उसे हड़प लो। यहाँ भौजाई से जुआँ खोजवाने में लात खानी पड़ी, वहाँ सैकड़ों हसीनाएँ हासिल हो जाएँ। चाहे जितने गुलछर्रे उड़ाओ, कोई चूँ-चपड़ करने वाला नहीं है। ऊपर से फायदा कि पब्लिक में दबदबा भी। हमेशा जय-जयकार होती रहे। काम कुछ खास नहीं। बस, कुर्ता-पाजामा पहन लो और मौका पड़ने पर भाषण झाड़

दो।'[3] हमारे देश जनतांत्रिक है। वोट के द्वारा ही लोग शासकों तथा नेताओं को चुनते हैं। वोट माँगने आते वक्त नेता लोग जनता की सेवा करने के झूठे वादे करते हैं। चुनाव के बाद पद पर विराजमान होते ही जनता का रक्षक रूप बदल जाता है। तब उनका लक्ष्य जनता की सेवा से बदलकर किसी तरह अपने पद की रक्षा करना बन जाता है।

'बायोडाटा' कहानी के अंत में पद प्राप्त करने की लालसा में राजदेव के मन में न पत्नी के लिए प्यार बचा था और न बच्चे के लिए। उसके हृदय में यह सूक्ति उठती है: "हम लोगों के लिए राजनीति जीवनसंगिनी है और जीवनसंगिनी रखैल। जो रखैल को जीवनसंगिनी समझता है, लक्ष्य सदैव उससे दूर रहता है।"[4] वह पछताता है कि इस उम्र में लोग मिनिस्टर बन जाते हैं, जबकि वह बीवी की चरण-रज धोकर पीने में जुटा हुआ है। उसने अपने को धिक्कारा और राजनीतिक चर्या को समर्पित हो गया। पार्टी ऑफिस पहुँचकर बोला, "अब तक मैं भ्रमित था। अब मैं फिर से अपने घर वापस आ गया हूँ।"[5]

पद के मोह और स्वार्थ की छाँव में राजदेव संवेदनहीन हो गया था। उसने अपने बायोडाटा में जोड़ने के लिए अपनी पत्नी और बच्चों की मृत्यु का जिक्र करने पर भी विचार किया। अखिलेश जी राजदेव के माध्यम से आज के नेताओं की असलियत को उजागर करते हैं, यह दिखाते हुए कि पद की लालसा कैसे एक व्यक्ति को अंधा कर देती है। राजनीतिक विसंगतियों का चित्रण करके, अखिलेश जी ने जनता में राजनीतिक जागरूकता पैदा करने की जिम्मेदारी बखूबी निभाई है। राजदेव मिश्र का चरित्र आधुनिक नेताओं के प्रतिनिधि के रूप में उभरता है, जो सत्ता के लिए किसी भी प्रकार के षड्यंत्र और भ्रष्टाचार में लिप्त हो जाते हैं। कहानीकार ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि कैसे आज के नेता अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के लिए जनता को एक साधन के रूप में इस्तेमाल करते हैं। राजदेव के संवाद और सोच यह स्पष्ट करते हैं कि उसका एकमात्र उद्देश्य सत्ता में बने रहना और अपने हितों की पूर्ति करना है, भले ही इसके लिए उसे किसी भी हद तक जाना पड़े। कहानी में राजनीतिक नेताओं की नैतिकता का पतन भी दिखाया गया है कि किस प्रकार राजनेता अपने व्यक्तिगत हितों की पूर्ति के लिए भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, और अनैतिक गतिविधियों का सहारा लेते हैं। प्रजा का हित राजनीति का वास्तविक उद्देश्य होना चाहिए, लेकिन 'बायोडाटा' कहानी यह दिखाती है कि कैसे आज के नेता केवल अपने हितों की पूर्ति में लगे रहते हैं। चुनाव के दौरान जनता से बड़े-बड़े वादे किए जाते हैं, लेकिन पद पाने के बाद नेता जनता को भूल जाते हैं और केवल अपने पद की रक्षा और संपत्ति को बढ़ाने में लगे रहते हैं।

कहानी का सबसे मार्मिक और संवेदनशील प्रसंग सावित्री की पीड़ा और उसकी विवशता है, जब वह अपने पति की उपेक्षा के कारण भावनात्मक और शारीरिक कष्टों से गुजरती है। सावित्री का चित्रण एक ऐसी स्त्री के रूप में किया गया है, जो अपने पति से प्रेम करती है, लेकिन उसके लिए केवल एक साधन बनकर रह जाती है।

राजदेव का चरित्र पूरी तरह से स्वार्थ, लालच और निर्दयता का प्रतीक है। वह अपनी पत्नी सावित्री और नवजात शिशु की उपेक्षा करता है, केवल इसलिए कि उसका ध्यान पूरी तरह से अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति पर केंद्रित है। कहानी में सावित्री के प्रति उसके व्यवहार से न केवल उसकी क्रूरता जाहिर होती है, बल्कि उसकी इंसानियत का भी पता चलता है। उसने सोचा कि अगर ऐसा हुआ, तो वह अपने बायोडाटा में शामिल करेगा: श्पब्लिक की सेवा और पार्टी की खिदमत के चलते मेरी गृहस्थी और परिवार तबाह हो गया।'[6] यहाँ तक कि वह अपनी निजी त्रासदी को भी राजनीतिक उपलब्धि के रूप में पेश करने की सोचता है, जिससे उसकी आत्ममुग्धता और नैतिक पतन स्पष्ट हो जाता है। कहानी का अंत राजदेव के चरित्र की

विडंबना और उसकी अंतहीन महत्वाकांक्षाओं की त्रासदी के साथ होता है।

राजदेव के लिए राजनीति 'जीवन संगिनी' है, जबकि उसकी पत्नी 'रखैल'। यह दृष्टिकोण न केवल उसकी निजी जिंदगी को बर्बाद करता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि वह किसी भी रिश्ते को केवल अपने लाभ के संदर्भ में ही देखता है। उसकी महत्वाकांक्षा और स्वार्थ उसे एक असंवेदनशील और निर्मम व्यक्ति बना देते हैं, जो अपनी पत्नी और बच्चे के स्वास्थ्य और जीवन को भी नजरअंदाज करता है।

निष्कर्षत: यह कहानी राजनेताओं के आत्मकेंद्रित और अवसरवादी चरित्र की गहन पड़ताल करती है। राजदेव का राजनीति में प्रवेश और उसके बाद की यात्रा नैतिकता और मानवता के पूर्णत: क्षरण की यात्रा है। यह कहानी यह दिखाती है कि जब व्यक्ति सत्ता और राजनीति के खेल में नैतिकता, मानवता और रिश्तों की बलि चढ़ा देता है, तो अंतत: उसकी खुद की जिंदगी भी बर्बादी की ओर अग्रसर हो जाती है। जब राजनीति केवल व्यक्तिगत लाभ का साधन बन जाती है, तो इसका परिणाम न केवल व्यक्तिगत जीवन में, बल्कि समाज में भी गहरा नकारात्मक प्रभाव डालता है। अत: 'बायोडाटा' कहानी हमें यह सोचने पर मजबूर करती है कि सत्ता और राजनीति के खेल में नैतिकता और मानवता की कितनी अहमियत होती है। यदि व्यक्ति इनकी बलि चढ़ा देता है, तो उसका अंजाम क्या हो सकता है, यह इस कहानी के माध्यम से साफ तौर पर देखा जा सकता है।

संदर्भ :

1. आलोचना, जुलाई -सितंबर, 1968, सं. नामवर सिंह, पृ. सं 21
2. अखिलेश, बयोडाटा, संपूर्ण कहनियाँ, प्रथम संस्करण:2021, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं 288
3. वही, पृ. सं 283
4. वही, पृ. सं 285
5. वही, पृ. सं 286
6 वही, पृ. सं 291

●●●

आंबेडकर और गांधी के विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण : संविधान निर्माण के विशेष संदर्भ में

❍ शशिकांत कुमार[1]

संक्षिप्ति :

आंबेडकर और गांधी दोनों ने भारतीय समाज को समृद्ध, समान, और सांविधानिक रूप से व्यवस्थित बनाने के लिए अपने विचारों का समर्थन किया। हालांकि, उनके दृष्टिकोण और उनके समाज-निर्माण के प्राधान्य स्थान में विभिन्नताएँ थीं। इनके विचारों का संविधान निर्माण पर प्रभाव विशेष रूप से महत्वपूर्ण रहा है। डॉ. भीमराव आंबेडकर को संविधान निर्माण का मुख्य लेखक माना जाता है। उन्होंने अपने संविधान के माध्यम से समाज में समानता, न्याय, और स्वतंत्रता के सिद्धांतों को अटलता से स्थापित करने का प्रयास किया। उनके विचारों में व्यक्त उत्कृष्टता और सामाजिक समरसता के माध्यम से समाज के विकास को प्रोत्साहित करने की चुनौती थी। वहीं, महात्मा गांधी का दृष्टिकोण समाज में स्वशासन और सार्वभौमिक स्वराज को प्रमुखता देने पर था। उनके आदर्शों में ग्राम सभा और स्वायत्तता के माध्यम से सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्तीकरण को बढ़ावा देने का प्राथमिकता स्थान था। उनके अनुसार, स्वराज उस राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा थी जो स्वाधीनता के उद्देश्य को पूरा करती है और समाज को स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता की दिशा में अग्रसर करती है। वे दोनों ने अपने समाज-विचारों के माध्यम से राष्ट्रीय एकता और समृद्धि के लिए समाजिक समरसता और न्याय के आदर्शों को बढ़ावा दिया।

बीज शब्द : संविधान, आंबेडकर, योगदान, विचार, समाज, सामाजिक न्याय, असमानता, अधिकार।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में दो प्रमुख व्यक्तित्वों का नाम आंबेडकर और गांधी का है। दोनों ने भारतीय समाज और राजनीति में महत्वपूर्ण योगदान किया है, लेकिन उनके जीवन और कार्यों में कुछ मौलिक अंतर भी है। भीमराव आंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को महू, मध्य प्रदेश में हुआ था। उनका परिवार दलित समुदाय

---

1. *पी-एच.डी. शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।*

से था और उन्होंने अपने जीवन में कई चुनौतियों का सामना किया। आंबेडकर ने शिक्षा में उत्कृष्टता प्राप्त की और कोलंबिया विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की (S. Ambedkar & Khan, 2022)। आंबेडकर ने दलितों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया और उन्हें समाज में सम्मान और समानता दिलाने के लिए काम किया। उन्होंने भारतीय संविधान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और दलितों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की (Chitkara, 2002)।

महात्मा गांधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 को पोरबंदर, गुजरात में हुआ था। उनका परिवार एक मध्यम वर्ग का हिंदू परिवार था। गांधी ने शिक्षा में उत्कृष्टता प्राप्त की और लंदन से कानून की उपाधि प्राप्त की। गांधी ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांतों को प्रस्तुत किया। उन्होंने भारतीयों को ब्रिटिश शासन के खिलाफ एकजुट किया और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया (Sharma, 2004)।

आंबेडकर और गांधी के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर उनके दृष्टिकोण में था। आंबेडकर एक अधिक क्रांतिकारी थे, जिन्होंने समाज में गहरे बदलाव की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने दलितों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया और उन्हें समाज में सम्मान और समानता दिलाने के लिए काम किया। दूसरी ओर, गांधी एक अधिक अहिंसावादी सुधारक थे, जिन्होंने समाज में धीरे-धीरे बदलाव की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांतों को प्रस्तुत किया और भारतीयों को ब्रिटिश शासन के खिलाफ एकजुट किया। इसके अलावा, आंबेडकर और गांधी के बीच एक अन्य महत्वपूर्ण अंतर उनके नेतृत्व शैली में था। आंबेडकर एक अधिक केंद्रीकृत नेता थे, जिन्होंने अपने अनुयायियों को संगठित किया और उन्हें एक निश्चित दिशा में ले जाने के लिए काम किया। गांधी, दूसरी ओर, एक अधिक विकेंद्रीकृत नेता थे, जिन्होंने अपने अनुयायियों को स्वतंत्र रूप से काम करने की अनुमति दी और उन्हें अपने स्वयं के निर्णय लेने के लिए प्रोत्साहित किया। गांधी और आंबेडकर के विचारों में अनेकों प्रकार की समानताएँ व अंतर देखने को मिलता है, इन अंतरों के बावजूद, आंबेडकर और गांधी दोनों ने भारतीय समाज में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और उनके कार्यों का प्रभाव आज भी महसूस किया जा रहा है (Mantri, 2009)।

उद्देश्य:

इस शोध का उद्देश्य आंबेडकर और गांधी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करना है, जो संविधान निर्माण के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। इस शोध में हम दोनों महान व्यक्तित्वों के विचारों का विश्लेषण करेंगे और उनके योगदान को समझेंगे जो संविधान निर्माण में महत्वपूर्ण था।

शोध प्रविधि :

इस शोध आलेख में डॉ. आंबेडकर के योगदान को ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया है। इस शोध में हम निम्नलिखित शोध विधियों का उपयोग किया गया है; जैसे,

- पुस्तकालय अनुसंधान : इसकी मदद से हम आंबेडकर और गांधी के लिखित कार्यों और उनके जीवनी का अध्ययन करेंगे।
- दस्तावेज विश्लेषण : इसकी मदद से हम संविधान सभा के दस्तावेजों और अन्य संबंधित दस्तावेजों का विश्लेषण करेंगे।
- तुलनात्मक विश्लेषण : इसकी मदद से हम आंबेडकर और गांधी के विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण करेंगे और उनके योगदान को समझेंगे।

साहित्य समीक्षा :

आंबेडकर और गांधी दोनों ही भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने अपने लेखन और भाषणों के माध्यम से समाज में बदलाव लाने का प्रयास किया। दोनों नेताओं के विचारों में कुछ मतभेद भी थे, जैसे कि जाति व्यवस्था के बारे में उनके दृष्टिकोण में अंतर था। यहाँ उनके कुछ मुख्य बिंदुओं का विश्लेषण किया गया है।

आंबेडकर के लेखन में जाति व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष और समानता की मांग प्रमुख थी। उन्होंने "एनिहिलेशन ऑफ कास्ट" जैसी पुस्तकें लिखीं, जिसमें उन्होंने जाति व्यवस्था के विनाश के लिए तर्क दिया। आंबेडकर ने दलितों और वंचित वर्गों के अधिकारों के लिए आवाज उठाई और सामाजिक न्याय की मांग की। डॉ. अम्बेडकर के लेखन में जाति व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष और समानता की मांग प्रमुख थी। आंबेडकर के भाषणों में दलितों और वंचित वर्गों के अधिकारों के लिए आवाज उठाई गई। जाति व्यवस्था के दृष्टिकोण से दोनों नेताओं के विचारों में कुछ मतभेद भी थे, जैसे कि जाति व्यवस्था के बारे में उनके दृष्टिकोण में अंतर था। आंबेडकर जाति व्यवस्था को पूरी तरह से समाप्त करना चाहते थे, जबकि गांधी जाति व्यवस्था में सुधार लाना चाहते थे(B. R. Ambedkar, 2022)।

1. **जाति व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष :** आंबेडकर के लेखन में जाति व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष और समानता की मांग प्रमुख थी। उन्होंने 'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट' जैसी पुस्तकें लिखीं, जिसमें उन्होंने जाति व्यवस्था के विनाश के लिए तर्क दिया (B. R. Ambedkar, 2022)।
2. **दलितों और वंचित वर्गों के अधिकारों के लिए आवाज :** आंबेडकर के भाषणों में दलितों और वंचित वर्गों के अधिकारों के लिए आवाज उठाई गई। उन्होंने सामाजिक न्याय की मांग की और समानता के लिए संघर्ष किया (Omvedt, 2017)।
3. **बौद्ध धर्म के प्रति दृष्टिकोण :** आंबेडकर के लेखन में बौद्ध धर्म के प्रति उनके दृष्टिकोण को भी प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने बौद्ध धर्म को अपनाया और इसके सिद्धांतों को अपने जीवन में उतारा(B. R. Ambedkar, 2011)।
4. **'आंबेडकर का धार्मिक दर्शन' :** डॉ. सुरेंद्र जोधका द्वारा लिखित यह पुस्तक आंबेडकर के धार्मिक विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इसमें आंबेडकर के बौद्ध धर्म के प्रति झुकाव, उनके धार्मिक विचारों का विकास, और उनके धार्मिक दर्शन का प्रभाव पर विस्तृत विश्लेषण किया गया है।(Kataria, 2015)
5. **'आंबेडकर और महिला अधिकार' :** डॉ. मीरा वोरा द्वारा लिखित यह पुस्तक आंबेडकर के महिला अधिकार संबंधी कार्यों का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इसमें आंबेडकर के महिला अधिकारों के प्रति योगदान, उनके महिला सशक्तिकरण संबंधी विचारों, और उनके महिला अधिकार संबंधी कार्यों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है (B. R. Ambedkar & Moon, 1989)।
6. **'आंबेडकर का शोध और लेखन' :** डॉ. वासुदेव शास्त्री द्वारा लिखित यह पुस्तक आंबेडकर के शोध और लेखन कार्यों का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इसमें आंबेडकर के शोध पत्रों, पुस्तकों, और अन्य लेखन कार्यों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है, जिसमें उनके शोध विधियों, लेखन शैली, और विषयों का विश्लेषण किया गया है।
7. **'आंबेडकर और राजनीतिक दल' :** डॉ. प्रेम सिंह द्वारा लिखित यह पुस्तक आंबेडकर के

राजनीतिक दलों से जुड़े कार्यों का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इसमें आंबेडकर के राजनीतिक दलों के साथ जुड़ाव, उनके राजनीतिक विचारों, और उनके राजनीतिक कार्यों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है (Gore, 1993)।

8. **'आंबेडकर का सामाजिक न्याय दर्शन'** : डॉ. रामजी लाल द्वारा लिखित यह पुस्तक आंबेडकर के सामाजिक न्याय संबंधी विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इसमें आंबेडकर के सामाजिक न्याय के प्रति योगदान, उनके सामाजिक न्याय संबंधी विचारों, और उनके सामाजिक न्याय संबंधी कार्यों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है(Kataria, 2015)।

गांधी के लेखन में अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांत प्रमुख थे। उन्होंने 'हिंद स्वराज' जैसी पुस्तकें लिखीं, जिसमें उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए अहिंसक तरीकों का समर्थन किया। गांधी के लेखन में अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांत प्रमुख थे। गांधी के भाषणों में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए अहिंसक तरीकों का समर्थन किया गया (Sharma, 2004)।

1. **अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांत :** गांधी के लेखन में अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांत प्रमुख थे। उन्होंने 'हिंद स्वराज' जैसी पुस्तकें लिखीं, जिसमें उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए अहिंसक तरीकों का समर्थन किया (Upadhyay, 2011)।
2. **भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए अहिंसक तरीकों का समर्थन :** गांधी के भाषणों में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए अहिंसक तरीकों का समर्थन किया गया। उन्होंने सत्याग्रह और अहिंसक प्रतिरोध के माध्यम से स्वतंत्रता प्राप्त करने का आह्वान किया (Merton & Kurlansky, 2007)।
3. **भारतीय समाज में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन :** गांधी के लेखन में भारतीय समाज में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के लिए काम किया गया। उन्होंने ग्रामीण विकास और स्वावलंबन के लिए काम किया (Gupta, 1994)।
4. **'गांधी का जीवन और दर्शन'** : डॉ. रामचंद्र गुहा द्वारा लिखित यह पुस्तक गांधी के जीवन और उनके दर्शन का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में गांधी के राजनीतिक और सामाजिक विचारों को समझने में मदद मिलती है (Sharma, 2004)।
5. **'महात्मा गांधी : एक जीवनी'** - डॉ. विजयलक्ष्मी पंडित द्वारा लिखित यह पुस्तक गांधी के जीवन का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में गांधी के जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझने में मदद मिलती है (Sharma, 2004)।
6. **'गांधी का आर्थिक दर्शन'** - डॉ. अरुण कुमार द्वारा लिखित यह पुस्तक गांधी के आर्थिक विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में गांधी के आर्थिक दर्शन को समझने में मदद मिलती है।(Gupta, 1994)
7. **'गांधी का शिक्षा दर्शन'** - डॉ. कृष्ण कुमार द्वारा लिखित यह पुस्तक गांधी के शिक्षा संबंधी विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में गांधी के शिक्षा दर्शन को समझने में मदद मिलती है(K, 2008)।
8. **'गांधी का सामाजिक दर्शन'** - डॉ. रामशरण शर्मा द्वारा लिखित यह पुस्तक गांधी के सामाजिक विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में गांधी के सामाजिक दर्शन को समझने में मदद मिलती है(Sharma, 2004)।

गांधी और आंबेडकर का संविधान निर्माण में योगदान :

आंबेडकर ने संविधान सभा की अध्यक्षता की और संविधान का मसौदा तैयार किया, जिसमें सामाजिक और आर्थिक न्याय, संविधान सभा की अध्यक्षता, संविधान का मसौदा तैयार करना, सामाजिक और आर्थिक न्याय के प्रावधान, अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा के प्रावधान शामिल किए। गांधी का संविधान में महत्वपूर्ण योगदान रहा योगदान संविधान सभा में भागीदारी, संविधान के मूल्यों को आकार देना, ग्रामीण विकास के प्रावधान, सामाजिक सुधार के प्रावधान इत्यादि। गांधी ने संविधान सभा में भाग लिया बिना ही, संविधान के मूल्यों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जैसे - अहिंसा, सत्य, और सेवा (Mantri, 2009)।

गांधी और आंबेडकर के बीच पृथक निर्वाचन मण्डल को लेकर संघर्ष भारतीय राजनीति के इतिहास में महत्वपूर्ण घटना रही है। इस संघर्ष का मुख्य कारण था आंबेडकर और गांधी की विचारधारा और दृष्टिकोण में अंतर। महात्मा गांधी ने हमेशा समाज की सामाजिक एकता और समरसता की बात करते थे, जबकि डॉ. बी. आर. आंबेडकर ने दलितों और अनुसूचित जातियों के हक की मांग की थी। उन्होंने आरक्षण के माध्यम से उनके समाज के लिए समानता और न्याय की मांग की थी। आंबेडकर ने अनुसूचित जातियों के लिए विशेष आरक्षण की मांग की थी, जबकि गांधी ने इसे विभाजक माना और सामाजिक समरसता के खिलाफ बोले। इस संघर्ष के बावजूद, दोनों नेताओं ने अंततः समझौता किया जो पूना पैक्ट नाम से जाना जाता है(Ahir, 1995)।

पूना पैक्ट समझौता

पूना पैक्ट समझौता 24 सितंबर 1932 में महात्मा गांधी और डॉ. बी. आर. अंबेडकर के बीच हुआ था, जिसका मुख्य उद्देश्य दलितों के लिए अलग निर्वाचक मंडल की मांग को समाप्त करना और संयुक्त निर्वाचक मंडल में उनके प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करना था। यह समझौता भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान एक महत्वपूर्ण घटना थी जिसने दलितों के अधिकारों की लड़ाई में एक नया मोड़ लाया(Kumar, 1985)।

पूना पैक्ट की पृष्ठभूमिः

1931 में दूसरे गोल मेज सम्मेलन में ब्रिटिश सरकार ने दलितों के लिए अलग निर्वाचक मंडल की घोषणा की, जिसे अंबेडकर ने स्वीकार किया था। लेकिन गांधी ने इसका विरोध किया और कहा कि यह भारतीय समाज को विभाजित करेगा। गांधी ने अनशन शुरू कर दिया और कहा कि वे तब तक अनशन करेंगे जब तक कि दलितों के लिए अलग निर्वाचक मंडल की मांग समाप्त नहीं हो जाती(Mandala, 1999)।

पूना पैक्ट की शर्तें :

दलितों के लिए अलग निर्वाचक मंडल की मांग समाप्त हुई। और संयुक्त निर्वाचक मंडल में दलितों के लिए 148 सीटें आरक्षित की गईं। दलितों के लिए प्राथमिक चुनाव की व्यवस्था की गई, जिसमें दलित उम्मीदवारों को चुना जाता था। गांधी ने दलितों के उत्थान और सामाजिक न्याय के लिए काम करने का वचन दिया(B. R. Ambedkar, 1984)।

पूना पैक्ट की परिणामः

पूना पैक्ट ने दलितों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की, लेकिन यह व्यवस्था आज भी अपर्याप्त है। पूना पैक्ट ने गांधी और अंबेडकर के बीच समझौता कराया, लेकिन यह समझौता दलितों के अधिकारों की लड़ाई में पूरी तरह से सफल नहीं हुआ। पूना पैक्ट ने दलितों के उत्थान और सामाजिक न्याय के लिए काम करने का मार्ग प्रशस्त किया।

पूना पैक्ट एक महत्वपूर्ण समझौता था जिसने दलितों के अधिकारों की लड़ाई में एक मोड़ लाया। इसने दलितों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की और उन्हें राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर प्रदान किया। लेकिन यह समझौता दलितों के सामाजिक और आर्थिक उत्थान के लिए पर्याप्त प्रावधान नहीं कर सका(Kumar, 1985)।

गांधी और आंबेडकर के विचारों में समानताएं व अंतर

आंबेडकर और गांधी दोनों ही भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के महत्वपूर्ण नेता थे, लेकिन दोनों नेताओं का अपना काम करने का नजरिया अलग था। लेकिन उनके विचारों में समानताएं और अंतर थे।

समानताएं :

दोनों नेताओं ने सामाजिक और आर्थिक न्याय के लिए काम किया, जैसे कि समानता, स्वतंत्रता और बंधुता। आंबेडकर ने जाति प्रथा को समाप्त करने के लिए लड़ाई लड़ी, जबकि गांधी ने जाति प्रथा को सुधारने के लिए काम किया। दोनों नेताओं ने स्वतंत्रता और समानता के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी, जैसे कि स्वतंत्रता का अधिकार, समानता का अधिकार और शिक्षा का अधिकार। आंबेडकर ने संविधान सभा में भाग लिया और संविधान के प्रावधानों को तैयार किया, जबकि गांधी ने स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आंबेडकर ने शिक्षा और सामाजिक सुधार के महत्व पर जोर दिया, जबकि गांधी ने ग्रामीण विकास और खादी आंदोलन की वकालत की। आंबेडकर ने शिक्षा को सामाजिक और आर्थिक सुधार के लिए महत्वपूर्ण माना, जबकि गांधी ने शिक्षा को सामाजिक और नैतिक सुधार के लिए महत्वपूर्ण माना(Chapalgaonker & Wagholikar, 2016)।

अंतर :

सामाजिक न्याय के लिए आंबेडकर ने जाति प्रथा को समाप्त करने के लिए लड़ाई लड़ी, जबकि गांधी ने जाति प्रथा को सुधारने के लिए काम किया। आंबेडकर ने क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए काम किया, जबकि गांधी ने उदारवादी परिवर्तन के लिए काम किया। आंबेडकर ने सामाजिक और आर्थिक न्याय के लिए क्रांतिकारी परिवर्तन की वकालत की, जबकि गांधी ने सामाजिक और आर्थिक सुधार के लिए उदारवादी परिवर्तन की वकालत की। आंबेडकर ने बौद्ध धर्म को अपनाया, जबकि गांधी ने हिंदू कि वकालत की। आंबेडकर ने बौद्ध धर्म को सामाजिक और आर्थिक न्याय के लिए महत्वपूर्ण माना, जबकि गांधी ने हिंदू धर्म को सामाजिक और नैतिक सुधार के लिए महत्वपूर्ण माना। आंबेडकर ने सामाजिक सुधार के लिए कानूनी और संवैधानिक तरीकों की वकालत की, जबकि गांधी ने सामाजिक सुधार के लिए अहिंसक और सामाजिक तरीकों की वकालत की(Vakil, 1991)। आंबेडकर ने आर्थिक विकास के लिए राष्ट्रीय नियोजन आयोग और सामाजिक सुरक्षा प्रणाली को महत्वपूर्ण माना, जबकि गांधी ने आर्थिक विकास के लिए ग्रामीण विकास और खादी आंदोलन को महत्वपूर्ण माना।

इन समानताओं और अंतरों के बावजूद, दोनों नेताओं ने भारतीय समाज को सुधारने के लिए काम किया और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान किया। आंबेडकर और गांधी दोनों ही भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के महत्वपूर्ण नेता थे, जिन्होंने भारतीय समाज को सुधारने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठायें(Kibriya, 1999)।

संविधान निर्माण में आंबेडकर के योगदान का विश्लेषण

आंबेडकर का संविधान निर्माण में योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण था। उन्होंने संविधान सभा की अध्यक्षता

की और संविधान का मसौदा तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसमें मौलिक अधिकार, न्यायपालिका, और कार्यपालिका जैसे महत्वपूर्ण पहलुओं को शामिल किया गया था। आंबेडकर ने संविधान में सामाजिक और आर्थिक न्याय के प्रावधानों को शामिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जैसे कि समानता, स्वतंत्रता, और बंधुता। आंबेडकर ने संविधान में अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण प्रावधान शामिल किए थे। आंबेडकर ने संविधान में महिलाओं के अधिकारों को शामिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जैसे कि समानता, स्वतंत्रता, और शिक्षा के अधिकार। आंबेडकर ने संविधान में धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को शामिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिसमें उन्होंने सभी धर्मों के लोगों के लिए समानता और स्वतंत्रता के अधिकारों की वकालत की थी। आंबेडकर ने संविधान की एकता और अखंडता की रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिसमें उन्होंने संविधान के विभिन्न पहलुओं को एक साथ जोड़ने का काम किया था। आंबेडकर ने संविधान की व्याख्या और विश्लेषण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिसमें उन्होंने संविधान के प्रावधानों को विस्तार से समझाया था। आंबेडकर ने संविधान के प्रावधानों के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिसमें उन्होंने संविधान के प्रावधानों को वास्तविक जीवन में लागू करने के लिए काम किया था(Agrawal, 2020)।

गांधी के संविधान निर्माण में योगदान का विश्लेषण

महात्मा गांधी का संविधान निर्माण में योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण था, भले ही उन्होंने संविधान सभा में सीधे भाग नहीं लिया था। उनके विचारों और आदर्शों ने संविधान निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। गांधी ने संविधान के मूल्यों जैसे कि सत्य, अहिंसा, और सामाजिक न्याय की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिसमें उन्होंने संविधान सभा के सदस्यों के चयन में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। गांधी ने संविधान में सामाजिक और आर्थिक न्याय की वकालत की थी, जिसमें उन्होंने समाज में समानता और न्याय की स्थापना के लिए काम किया था। गांधी ने संविधान में अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिसमें उन्होंने अल्पसंख्यकों के लिए सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों की वकालत की थी(Chapalgaonker & Wagholikar, 2016)।

तुलनात्मक विश्लेषण :

गांधी का मानना था कि अहिंसा से हम ब्रिटिश सरकार को हमारी मांगों को मानने के लिए मजबूर कर सकते हैं, जबकि आंबेडकर का मानना था कि सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन से हम अपने समाज को सुधार सकते हैं और स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं। गांधी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देना चाहते थे, जबकि आंबेडकर औद्योगीकरण और शहरीकरण को बढ़ावा देना चाहते थे। गांधी का मानना था कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था हमारे देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, जबकि आंबेडकर का मानना था कि औद्योगीकरण और शहरीकरण से हम अपने देश को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बना सकते हैं। गांधी हिंदू धर्म में विश्वास करते थे, जबकि आंबेडकर बौद्ध धर्म में विश्वास करते थे। गांधी का राजनीतिक दृष्टिकोण अधिक उदारवादी था, जबकि आंबेडकर का राजनीतिक दृष्टिकोण अधिक क्रांतिकारी था(Ahir, 1995)।

निष्कर्ष:

इस शोध से हमें पता चलता है कि आंबेडकर और गांधी दोनों महान व्यक्तित्वों ने संविधान निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आंबेडकर ने सामाजिक न्याय और समानता के प्रावधानों को शामिल करने के लिए काम किया, जबकि गांधी के विचारों और सिद्धांतों ने संविधान निर्माण को प्रभावित किया। आंबेडकर और गांधी

दोनों ही भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने अपने लेखन और भाषणों के माध्यम से समाज में बदलाव लाने का प्रयास किया। उनके विचारों में कुछ मतभेद भी थे, लेकिन दोनों ने सामाजिक न्याय, आर्थिक विकास और राजनीतिक व्यवस्था के लिए काम किया। उनके योगदान को समझने से हमें भारतीय समाज में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के लिए काम करने में मदद मिल सकती।

Workcited:

1. Agrawal, S. K. (2020). *Dr. Bhim Rao Ambedkar: Dr. Bhim Rao Ambedkar: Architect of India's Constitution and Social Reforms*. Prabhat Prakashan. https://books.google.co.in/books?id=H2twBgAAQBAJ
2. Ahir, D. C. (1995). *Gandhi and Ambedkar: A Comparative Study*. https://books.google.co.in/books?id=hwY1cToI0qgC
3. Ambedkar, B. R. (1984). *Poona Pact: An Epic of Human Rights*. Buddhist Publishing House. https://books.google.co.in/books?id=xoIdnwEACAAJ
4. Ambedkar, B. R. (2022). *Annihilation of Caste: Annihilation of Caste by Dr.Ambedkar: A Landmark Discourse on Equality and Social Justice*. Prabhat Prakashan. https://books.google.co.in/books?id=_SecEAAAQBAJ
5. Ambedkar, B. R., & Moon, V. (1989). *Dr. Babasaheb Ambedkar, Writings and Speeches: Vol. 5*. Education Department, Government of Maharashtra. https://books.google.co.in/books?id=95XAmwEACAAJ
6. Ambedkar, B. R., Rathore, A. S., & Verma, A. (2011). *The Buddha and His Dhamma: A Critical Edition*. OUP India. https://books.google.co.in/books?id=FIAyDw AAQBAJ
7. Ambedkar, S., & Khan, N. (2022). *Babasaheb: My Life With Dr Ambedkar*. Penguin Random House India Private Limited. https://books.google.co.in/books?id=diyWEAAAQBAJ
8. Chapalgaonker, N., & Wagholikar, S. (2016). *Mahatma Gandhi and the Indian Constitution*. Routledge, Taylor & Francis Group. https://books.google.co.in/books?id=t3gCswEACAAJ
9. Chitkara, M. G. (2002). *Dr. Ambedkar and Social Justice*. A P H Publishing Corporation. https://books.google.co.in/books?id=riTiTry4U3EC
10. Gore, M. S. (1993). *The Social Context of an Ideology: Ambedkar's Political and Social Thought*. SAGE Publications. https://books.google.co.in/books?id=iG1uAAAAMAAJ
11. Gupta, S. S. (1994). *Economic Philosophy of Mahatma Gandhi*. Concept Publishing Company. https://books.google.co.in/books?id=ozwCB8FrntoC
12. K, M. (2008). *Gandhi On Education*. Rajat Publications. https://books.google.co.in/books?id=HHlfPgAACAAJ
13. Kataria, K. (2015). *Relevance of Ambedkar's Ideology*. Rawat Publications. https://books.google.co.in/books?id=2ko6jgEACAAJ
14. Kibriya, M. (1999). *Gandhi and Indian Freedom Struggle*. APH Publishing Corporation. https://books.google.co.in/books?id=ReuoHDkgSG4C
15. Kumar, R. (1985). *Gandhi, Ambedkar, and the Poona Pact*. Nehru Memorial Museum and Library. https://books.google.co.in/books?id=6vpyjwEACAAJ
16. MaGala, J. C. (1999). *Poona Pact and Depressed Classes*. Sujan Publications. https://books.google.co.in/books?id=fILXAAAAMAAJ
17. Mantri, G. (2009). *Gandhi Aur Ambedkar: Gandhi Aur Ambedkar by Ganesh Mantri—Exploring the Ideologies of Mahatma Gandhi and Dr. B.R. Ambedkar*. Prabhat Prakashan. https://books.google.co.in/books?id=3LCyOqW-FvkC

18. Merton, T., & Kurlansky, M. (2007). *Gandhi on Non-Violence*. New Directions. https://books.google.co.in/books?id=-ipmQlPdVQIC
19. Omvedt, G. (2017). *Ambedkar: Towards An Enlightened India*. Random House Publishers India Pvt. Limited. https://books.google.co.in/books?id=WvjHMX8ksIsC
20. Sharma, R. (2004). *Autobiographical Writings of Mahatma Gandhi*. Deep & Deep Publications. https://books.google.co.in/books?id=WCycW0Skh7IC
21. Upadhyay, A. K. (2011). *Hind Swaraj Ki Anant Yatra: Hind Swaraj Ki Anant Yatra: The Endless Journey towards Self-Governance by Ajay Kumar Upadhyay*. Prabhat Prakashan. https://books.google.co.in/books?id=yM5zBQAAQBAJ
22. Vakil, A. K. (1991). *Gandhi-Ambedkar Dispute*. Ashish Publishing House. https://books.google.co.in/books?id=4RJuAAAAMAAJ

●●●

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रावधानों के प्रति बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के उच्च शिक्षा विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन

❍ राहुल बाल्मीकि[1]

❍ दिग्विजय सिंह[2]

संक्षिप्ति :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) ने भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली में कई महत्वपूर्ण सुधार प्रस्तुत किए हैं, जिनमें 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रावधान प्रमुख है। इस प्रावधान का उद्देश्य शिक्षा को लचीला बनाना है, ताकि छात्र विभिन्न समय पर और अलग-अलग उम्र में शिक्षा प्राप्त कर सकें। यह अध्ययन बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के उच्च शिक्षा विद्यार्थियों की 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रावधान के प्रति अभिवृत्ति का विश्लेषण करता है। अध्ययन का नमूना BBAU में स्नातक और परास्नातक स्तर पर नामांकित 120 छात्रों से लिया गया है। शोधकर्ता द्वारा निर्मित 5-बिंदु स्केल पर आधारित 20 बयानों वाला एक स्व-निर्मित उपकरण का उपयोग किया गया। परिणामों से पता चला कि उच्च शिक्षा में दिए गए प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति तटस्थ है, जिससे यह कहा जा सकता है कि वे इस प्रावधान के संबंध में उदासीन हैं। स्नातक छात्रों की अभिवृत्ति परास्नातक छात्रों की तुलना में बेहतर है। छात्राओं की तुलना में छात्रों की स्थिति बेहतर है। विद्यार्थियों की शिक्षा में होने वाले हर परिवर्तन में सक्रिय भागीदारी रखनी चाहिए और अपनी प्रतिक्रिया देनी चाहिए, चाहे वह सकारात्मक हो या नकारात्मक। किसी भी विषय पर

1. *संयोजक लेखक, शोधार्थी, शिक्षा विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ, भारत, ईमेल: rahul07.edu@gmail.com*
2. *शोधार्थी, शिक्षा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, भारत, ईमेल:singhdigvijay4@gmail.com*

तटस्थ रहना और प्रतिक्रिया न देना यह दर्शाता है कि विद्यार्थियों को शिक्षा में होने वाले बदलाव उनके जीवन में महत्व नहीं रखते, चाहे वह बदलाव लाभदायक हो या हानिकारक।

बीज शब्द : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, बहु प्रवेश, बहु निकास, उच्च शिक्षा, छात्र अभिवृत्ति।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) ने भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण सुधार पेश किए हैं, जिनमें 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रावधान प्रमुख है। इस प्रावधान का उद्देश्य शिक्षा को लचीला बनाना है, ताकि छात्र विभिन्न समय पर और अलग-अलग उम्र में शिक्षा प्राप्त कर सकें। डॉ. हीरानंदनी निरंजन (2020) के अनुसार, यह प्रावधान उन छात्रों के लिए लाभकारी है जो अपनी पढ़ाई छोड़कर नौकरी की ओर अग्रसर होते हैं, विशेषकर वे जो आर्थिक और सामाजिक कारणों से उच्च शिक्षा की आकांक्षाओं को त्यागते हैं। यह प्रावधान उनके लिए एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है, जिससे वे भविष्य में अपनी शिक्षा पुनः शुरू कर सकते हैं।

चंदश भी पृथ्वीदत्ता (2020) ने इस प्रावधान के सकारात्मक पहलुओं की चर्चा की और बताया कि चार वर्षीय पाठ्यक्रम के साथ इस विकल्प का कार्यान्वयन सरकार के लिए चुनौतीपूर्ण हो सकता है। इसके सफल कार्यान्वयन के लिए यह महत्वपूर्ण होगा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति को कैसे लागू किया जाएगा और विश्वविद्यालयों को पाठ्यक्रम पुनर्निर्धारण की स्वायत्तता मिलेगी या नहीं। विनीत गुप्ता (2020) ने 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रावधान को भारतीय और अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर के रूप में देखा। उनके अनुसार, यह प्रावधान भविष्य में छात्रों को अधिक लचीलापन और विकल्प प्रदान करेगा, जिससे वे अपनी पढ़ाई को अपने करियर की आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलित कर सकेंगे।

इस अध्ययन का उद्देश्य बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के उच्च शिक्षा विद्यार्थियों की 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रावधान के प्रति अभिवृत्ति को समझना है। यह अध्ययन इस प्रावधान के प्रभाव और विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं को उजागर करेगा, जिससे शिक्षा नीति के प्रभावी कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्राप्त की जा सके।

संबंधित साहित्य की समीक्षा

कुमार अमृत (2020) ने द न्यू इंडिया एक्सप्रेस में अपने विचार साझा करते हुए 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रावधान को आर्थिक और सामाजिक रूप से वंचित छात्रों के लिए लाभकारी बताया। उन्होंने इस प्रावधान का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा कि आर्थिक रूप से असक्षम छात्र पढ़ाई छोड़कर नौकरी कर सकते हैं ताकि वे अपनी पढ़ाई पूरी कर सकें। उन्होंने अन्य कारण भी बताए जैसे सामाजिक, पारिवारिक, और धार्मिक कारण। कुमार अमृत के अनुसार, 'बहु प्रवेश एवं निकास' ने शिक्षा को सामाजिक जिम्मेदारी से व्यक्तिगत जिम्मेदारी बना दिया है। उनके अनुसार, बाहर निकलने वाले छात्र जो स्वेच्छा से लौटते हैं, वे इस विकल्प के लाभार्थी होंगे। 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' लागू करते समय शैक्षिक संस्थानों को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, विशेष रूप से प्रत्येक वर्ष भर्ती होने वाले छात्रों की संख्या का निर्धारण करना। उनके अनुसार, नई शिक्षा नीति (2020) को संशोधित करना होगा ताकि योजना को शामिल किया जा सके और यह सुनिश्चित किया जा सके कि कोई भी छात्र पैसे की कमी के कारण बाहर न निकले।

कुलकर्णी तनु (2021) के अनुसार, श्बहु प्रवेश एवं बहु निकासश छात्रों को कार्यक्रम को बीच में छोड़ने के लिए प्रोत्साहित करेगा। जो छात्र बीच में पढ़ाई छोड़ देते हैं और बाद में किसी अन्य विश्वविद्यालय में पढ़ाई करना चाहते हैं, वे अपनी शिक्षा जारी रख सकते हैं और उनके प्राप्त क्रेडिट ट्रांसफर कर दिए जाएंगे। यह कदम उन छात्रों के लिए लाभदायक होगा जो बाद में अपनी पढ़ाई जारी रखना चाहते हैं, विशेष रूप से कम आय

वाले छात्र जो पहले या दूसरे वर्ष के बाद बाहर हो सकते हैं क्योंकि उन्हें प्रमाण पत्र या डिप्लोमा मिलेंगे। इससे पहले छात्र अपनी स्नातक की पढ़ाई पूरी करने के लिए रुकते थे ताकि उनका साल और मेहनत बर्बाद न हो, लेकिन इस विकल्प के साथ वे अपनी पढ़ाई छोड़ सकते हैं। उन्होंने कहा कि उच्च शिक्षा विभाग को इस बात पर जोर देना चाहिए कि जो छात्र पढ़ाई छोड़ना चाहते हैं, उन्हें यह समझने के लिए काउंसलिंग से गुजरना होगा कि वे यह निर्णय क्यों ले रहे हैं। व्याख्याताओं को छात्रों को अपनी पढ़ाई बीच में छोड़ने के लिए प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए।

वेणुगोपाल आर. के. (2020) ने कहा कि 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' छात्रों को स्नातक में प्रवेश लेने के लिए बढ़ावा देगा, क्योंकि छात्रों को यकीन है कि उन्हें एक प्रमाणपत्र या डिप्लोमा मिलेगा। कई छात्र जो उच्च शिक्षा का विकल्प नहीं चुनते हैं, उन्हें स्नातक कार्यक्रम में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। उन्होंने कहा कि जो छात्र बीच में पाठ्यक्रम छोड़ देते हैं और कुछ समय के बाद दोबारा शामिल होना चाहते हैं, वे छात्र दोबारा से शामिल हो सकते हैं और पाठ्यक्रम पूरा कर सकते हैं।

शिक्षा और डेस्क (2021) द्वारा न्यूज 18 में प्रकाशित लेख में बताया गया कि 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रणाली द्वारा छात्रों का नुकसान हो सकता है। वर्तमान समय में छात्रों को यह विकल्प नहीं दिया जाता है, इसलिए डिग्री प्राप्त करने के लिए छात्रों के पास पढ़ाई पूरी करने के अलावा कोई विकल्प नहीं होता। यह एक मुश्किल काम है, लेकिन यह छात्र का उज्ज्वल भविष्य तय करता है। इसलिए लेख में बताया गया कि कई शिक्षक इस प्रणाली को लेकर सहमत हैं तो कई शिक्षक असहमत। इस लेख में बताया गया कि प्रणाली छात्रों पर नकारात्मक प्रभाव डालेगी। छात्र का उदाहरण देते हुए लेख में बताया गया कि एक छात्र के पास विकल्प होता है कि वह अपना स्नातक पूरा करने के बाद किसी भी सरकारी नौकरी जैसे बैंकिंग, सिविल सेवा आदि की तैयारी कर सके। नई शिक्षा नीति के साथ यह विकल्प उससे दूर हो जाता है क्योंकि उसके पास अपने पहले साल के अंत में पाठ्यक्रम छोड़ने का विकल्प होगा।

एस. जी., रामानंद (उपाध्यक्ष बिक्री एवं विपणन पियरसन इंडिया) (2020) के अनुसार, जो बदलाव राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 लाना चाहता है, वहाँ बहु विशेषज्ञ और व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्रों को व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करेगा। उनके अनुसार, विश्व स्तर पर बदलते समय के साथ 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' शिक्षा की आवश्यकता है। भविष्य में शिक्षा में लचीलेपन और 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के साथ 1 साल का मास्टर प्लान एवं डिजिटल शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करना छात्रों को सकारात्मक रूप से प्रभावित करेगा।

मल्लिक अनिंद्य (पार्टनर डेलॉयट इंडिया) (2020) के अनुसार, कार्यक्रम की पूरी अवधि को पूरा किए बिना बाहर निकलने पर भी छात्रों के पास उस कार्यक्रम में फिर से प्रवेश करने का विकल्प होगा जहाँ से उन्होंने छोड़ा था। इसी या किसी अन्य संस्थान में अकादमी लचीलापन अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में लंबे समय से मौजूद है और इसे भारत में लाने के लिए यह एक अच्छा कदम है। उनके अनुसार, यह छात्रों के लिए वरदान है। अब छात्रों को साल बर्बाद होने का डर नहीं सताएगा। इस तरह का लचीलापन छात्रों को जीवन में घटित होने वाली घटनाओं की देखभाल के लिए पर्याप्त विकल्प देगा, जिससे उन्हें किसी भी समय अस्थायी रूप से अपनी पढ़ाई बंद करनी पड़ सकती है।

मित्तल, प्रथम (न्यू इनिशिएटिव्स के प्रमुख लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी) (2020) के अनुसार, 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' और उच्च शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा को जोड़ने से भारत में सकल नामांकन अनुपात में निश्चित ही सुधार आएगा और यह छात्रों के लिए एक सकारात्मक बदलाव है। साल गंवाए बिना प्रवेश और

निकास के लिए कई विकल्पों के साथ 4 साल के यूजी पाठ्यक्रम में बदलाव से कई छात्रों को कॉलेज में दाखिला लेने और जब तक वे चाहें तब तक अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित करेगा।

चौधरी, आकाश (निर्देशक एवं सीईओ आकाश एजुकेशनल सर्विसेज लिमिटेड) (2020) के अनुसार, 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' छात्रों की ड्रॉपआउट दर को कम करेगा। अकादमी क्रेडिट बैंक के साथ शिक्षा में लचीलेपन की वजह से छात्रों में एक सकारात्मक ऊर्जा आएगी, जिससे वे अपने मनपसंद के पाठ्यक्रम को चुन सकते हैं।

अध्ययन का औचित्य

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) ने उच्च शिक्षा में कई बदलाव प्रस्तावित किए हैं, जिनमें 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रावधान प्रमुख है। इसका उद्देश्य शिक्षा में लचीलापन लाकर आर्थिक, सामाजिक, और पारिवारिक कारणों से पढ़ाई छोड़ने वाले छात्रों को पुनः शिक्षा शुरू करने का अवसर प्रदान करना है। कुमार अमृत (2020) के अनुसार, यह प्रावधान आर्थिक और सामाजिक रूप से वंचित छात्रों के लिए लाभकारी है। कुलकर्णी तनु (2021) का मानना है कि यह छात्रों को शिक्षा लचीले तरीके से प्रबंधित करने की अनुमति देता है। वेणुगोपाल आर. के. (2020) और आकाश चौधरी (2020) के अनुसार, इससे उच्च शिक्षा में नामांकन बढ़ेगा और ड्रॉपआउट दर में कमी आएगी। प्रथम मित्तल (2020) के अनुसार, व्यावसायिक शिक्षा को जोड़ने से सकल नामांकन अनुपात में सुधार होगा। इस अध्ययन का उद्देश्य बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के विद्यार्थियों की 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रावधानों के प्रति अभिवृत्ति को समझना है, जिससे शिक्षा नीति निर्माताओं को महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्राप्त हो सके और शिक्षा प्रणाली अधिक समावेशी और लचीली बनाई जा सके।

समस्या का कथन

यह अध्ययन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रावधानों के प्रति बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के उच्च शिक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का विश्लेषण करता है। इस नीति का उद्देश्य छात्रों को उनकी शिक्षा यात्रा में अधिक लचीलापन प्रदान करना है, जिससे वे अपनी व्यक्तिगत और व्यावसायिक आवश्यकताओं के अनुसार अपनी शिक्षा में प्रवेश और निकास कर सकें। इस शोध का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि छात्र इस प्रावधान को किस प्रकार समझते हैं, इसे अपने करियर और शिक्षा के संदर्भ में कितना प्रासंगिक मानते हैं, और इससे जुड़े संभावित लाभ और चुनौतियों को किस प्रकार देखते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के संबंध में उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

1.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के संबंध में स्नातक एवं परास्नातक के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

1.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास'के संबंध में उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों का लिंग के आधार पर अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

परिकल्पना

H01. स्नातक एवं परास्नातक के विद्यार्थियों में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु

निकास' के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है

H02. उच्च शिक्षा के छात्र छात्राओं में राष्ट्रीय आश्रय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

परिसीमन

वर्तमान अध्ययन क्रमबद्ध और महामारी के लिए कुछ सीमाओं के तहत आयोजित किया गया है

1. यह शोध केवल बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर यूनिवर्सिटी लखनऊ तक सीमित है।
2. इस अध्ययन में बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर यूनिवर्सिटी लखनऊ में पढ़ने वाले स्नातक में परास्नातक के सभी विद्यार्थियों का चयन किया गया है।

अध्ययन की प्रणाली

इस अध्ययन के लिएवर्णनात्मक अनुसंधानके तहतसर्वेक्षण विधिको चुना गया है। यह विधि अध्ययन के उद्देश्य को पूरा करने के लिए उपयुक्त है क्योंकि यह विद्यार्थियों की 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रावधान के प्रति अभिवृत्ति और उनके अनुभवों को समझने में मदद करती है। जॉन विलियम्स (2018)ने सर्वेक्षण विधि की परिभाषा देते हुए कहा है, "सर्वेक्षण विधि एक व्यवस्थित डेटा संग्रहण प्रक्रिया है, जिसमें प्रश्नावली या साक्षात्कार के माध्यम से सूचना प्राप्त की जाती है। यह विधि वर्णनात्मक अनुसंधान में विशेष रूप से उपयोगी होती है जब शोधकर्ता को किसी समस्या या परिप्रेक्ष्य के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करनी होती है।"

जनसंख्या

जनसंख्या वह संपूर्ण समूह है जिसके बारे में आप निष्कर्ष निकालना चाहते हैं। एक नमूना वह विशिष्ट समूह है जिससे आप डेटा एकत्र करेंगे। नमूने का आकार हमेशा जनसंख्या के कुल आकार से कम होता है। शोध में, जनसंख्या हमेशा लोगों को संदर्भित नहीं करती है। वर्तमान अध्ययन की जनसंख्या बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर यूनिवर्सिटी लखनऊ के स्नातक एवं परास्नातक पाठ्यक्रम में पढ़ने वाले समस्त विद्यार्थी है।

प्रतिदर्श

शोध के संदर्भ में एक नमूना लोगों, वस्तुओं या वस्तुओं का एक समूह है जिसे माप के लिए एक बड़ी आबादी से लिया जाता है। यह सुनिश्चित करने के लिए नमूना जनसंख्या का प्रतिनिधि होना चाहिए कि हम शोध नमूने से प्राप्त निष्कर्षों को समग्र रूप से जनसंख्या के लिए सामान्यीकृत कर सकें।

उद्देश्य पूर्ण प्रतिचयन

वर्तमान अध्ययन की प्रतिदर्श तकनीक = उद्देश्य पूर्ण प्रतिचयन

अध्ययन का नमूना आकार=120
स्नातक -60 (छात्र 30, छात्राएँ 30)
परास्नातक -60 (छात्र 30, छात्राएँ 30)

शोध उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी ने स्वनिर्मित प्रश्नावली उपकरण का प्रयोग किया है।

उपकरण निर्माण की प्रक्रिया

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रक्रिया में छात्रों की अभिवृत्ति मापने के लिए कोई भी वैध और विश्वसनीय उपकरण न होने के कारण शोधार्थी ने एक उपकरण का निर्माण किया। शोधार्थी

ने स्वनिर्मित प्रश्नावली तैयार की प्रश्नावली में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान को 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' से संबंधित 20 प्रश्न थे। उपकरण का निर्माण करने के पश्चात शोधार्थी ने उस प्रश्नावली को संशोधन की दृष्टि से शिक्षा शास्त्र विभाग के शिक्षकों के समक्ष परामर्श हेतु रखा। विचार विमर्श करने के पश्चात शोधार्थी ने अपने उपकरण को अंतिम प्रारूप प्रदान किया। जिसमें शोधार्थी ने 20 प्रश्नों को रखा। 20 प्रश्नों में 17 सकारात्मक प्रश्न थे तथा 3 नकारात्मक प्रश्न। उपकरण निर्माण के लिए 5 पॉइंट रेटिंग सकेल का निर्माण किया गया। रेटिंग स्केल में शोध उद्देश्यों के आधार पर पदों का निर्माण किया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उच्च शिक्षा में दिये प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' आयाम के आधार पर रेटिंग स्केल का निर्माण किया गया।

सांख्यिकीय विश्लेषण

उद्देश्य संख्या 1-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के संबंध में स्नातक एवं परास्नातक के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

विवेचना : इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए स्नातक एवं परास्नातक के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करने लिए आवृत्ति वितरण एवं प्रतिशत तालिका प्रयोग किया गया है।

तालिका संख्या-1

		स्नातक		परास्नातक	
अध्ययन का प्रकार	**प्राप्तांक प्रसार**	**आवृत्ति(विद्यार्थियों की संख्या)**	**प्रतिशत**	**आवृत्ति(विद्यार्थियों की संख्या)**	**प्रतिशत**
नकारात्मक अभिवृत्ति	52-66	17	28.33%	8	13.33%
तटस्थ अभिवृत्ति	67-81	38	63.33%	46	76.67%
सकारात्मक अभिवृत्ति	81-96	5	8.33%	6	10%
	समवायी	60	100%	60	100%

प्रदत्तों का विश्लेषण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के प्रति अभिवृत्ति जानने के लिए एक परीक्षण स्वनिर्मित प्रश्नावली द्वारा किया गया। जिसमे हमनें लखनऊ विश्वविद्यालय के स्नातक एवं परास्नातक के 60-60 विद्यार्थियों का चयन कियागया। उन विद्यार्थियों द्वारा दिए गए उत्तरों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर कुछ आंकड़े प्राप्त हुए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति वाले विद्यार्थियों के प्रतिशत क्रमशः 28.33% व 13.33% है जिनकी संख्या क्रमशः 17 व 8 हैं, जबकि तटस्थ अभिवृत्ति वाले विद्यार्थियों के प्रतिशत क्रमशः 63.33% व 76.67% हैं जिनकी संख्या 38 व 46 तथा सकारात्मक अभिवृत्ति वाले विद्यार्थियों का प्रतिशत क्रमशः 8.33% व 10% है। जिनकी संख्या 5 व 6 है।

परिणामों की व्याख्या : प्राप्त परिणामों से यह ज्ञात होता है कि स्नातक एवं परास्नातक के विद्यार्थियों की

अभिवृत्ति तटस्थ है परंतु परास्नातक की अपेक्षा स्नातक की स्थिति बेहतर है जहाँ स्नातक के 63.33% विद्यार्थियों की अभिवृत्ति तटस्थ तथा है वहीं परास्नातक के 76.67% विद्यार्थियों की अभिवृत्ति तटस्थ है इससे यह ज्ञात होता है की परास्नातक के विद्यार्थियों को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के प्रति उदासीन व्यवहार प्रकट करते हैं वही स्नातक के विद्यार्थियों को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के प्रति जागरूक होने की आवश्यकता प्रतीत होती है

H01. उच्च शिक्षा के छात्र : छात्राओं में राष्ट्रीय शिक्षा नीति2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है

विवेचना - उच्च शिक्षा के छात्र : छात्राओं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' अभिवृत्ति मापनी पर दी गई अनुक्रिया के प्राप्त अंकों की गणना सांख्यिकी टी .परीक्षण को करने पर जो परिणाम प्राप्त हुए उसका विवरण दिए गए तालिका की सहायता से स्पष्ट किया गया है।

तालिका संख्या-2

क्रम	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	CR मान	सार्थकता स्तर	t-सारणी मान df=158
1	छात्र	60	72.99	7.99	0.63	0.05	1.92
2	छात्राए	60	72.06	7.99			

प्रदत्तों का विश्लेषण

उपरोक्त तालिका संख्या में अभिवृत्ति मापने पर प्राप्त 120 छात्र. छात्राओं के प्रति की कुल अभिवृत्ति का मध्यमान क्रमश: 72.99 व 72.06 रहा मानक विचलन क्रमश 7.99 व 7.99 तथा प्राप्त Cr का मान 00.63 है। प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान स्वतंत्रता के df=1.58 पर सार्थकता के स्तर 0.05 पर सारणी मान 1.92 से कम है। अत: यह प्राप्त मान 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है। प्रतिपादित शून्य परिकल्पना को स्वीकार किया जाता है। यह परिणाम इंगित करता है कि स्नातक के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में मध्यमान में सार्थक अंतर नहीं है। प्रस्तुत आंकड़ों को समझने के लिए छात्र-छात्राओं की अभिवृत्ति को मिश्रित ग्राफ द्वारा प्रदर्शित किया गया

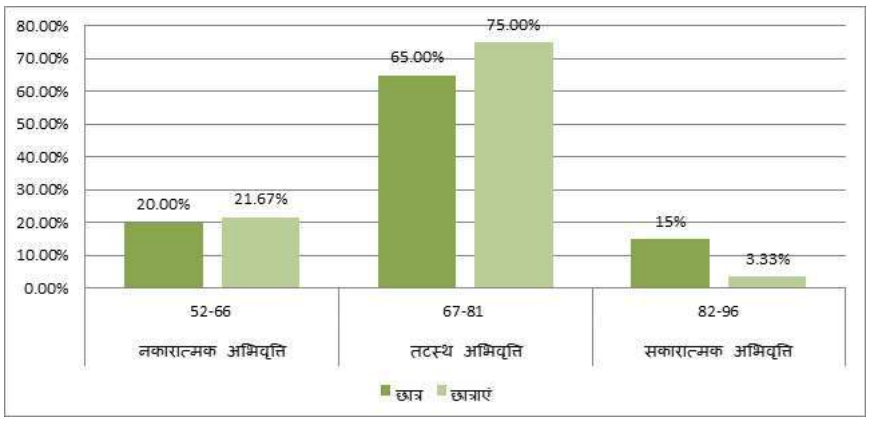

परिणामों की व्याख्या -

प्रस्तुत परिणामों से यह ज्ञात हुआ स्नातक एवं परास्नातक के मध्यमान में कुछ खास अंतर नहीं पाया गया। वही मानक विचलन में अंतर ही नहीं पाया गया। परंतु मध्यमान में अंतर होने की वजह से क्रांतिक अनुपात का मान टी. सारिणी मान से कम पाया गया जिसकी वजह से परिकल्पना को स्वीकृत किया गया। इससे यह ज्ञात होता है कि दोनों के मध्य सार्थक अंतर है मानक विचलन से अंतर न होने की वजह से हम यह कह सकते हैं कि छात्र छात्राओं के मध्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश में बहु निकास' के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

उद्देश्य संख्या 2 -

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के संबंध में उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों का लिंग के आधार पर अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

विवेचना-इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए छात्र एवं छात्राओं की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करने लिए आवृत्ति वितरण एवं प्रतिशत तालिका प्रयोग किया गया है।

तालिका संख्या-3

		छात्र		**छात्राए**	
अध्ययन का प्रकार	**प्राप्तांक प्रसार**	**आवृत्ति(छात्रों की संख्या)**	**प्रतिशत**	**आवृत्ति(छात्राओं की संख्या)**	**प्रतिशत**
नकारात्मक अभिवृत्ति	**52- 66**	**12**	**20%**	**13**	**21.67%**
तटस्थ अभिवृत्ति	**67-81**	**39**	**65%**	**45**	**75%**
सकारात्मक अभिवृत्ति	**81-96**	**9**	**15%**	**2**	**3.33%**
	समवायी	**60**	**100%**	**60**	**100%**

प्रदत्तों का विश्लेषण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के प्रति अभिवृत्ति जानने के लिए एक परीक्षण स्वनिर्मित प्रश्नावली द्वारा किया गया। जिसमें हमने लखनऊ विश्वविद्यालय के स्नातक एवं परास्नातक के 60-60 छात्र एवं छात्राओं का चयन किया गया। उन छात्र एवं छात्राओं द्वारा दिए गए उत्तरों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर कुछ आंकड़े प्राप्त हुए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति वाले छात्र एवं छात्राओं के प्रतिशत क्रमशः 20% व 21.67% संख्या क्रमशः 12 व 13 हैं, जबकि तटस्थ अभिवृत्ति वाले छात्र एवं छात्राओं के प्रतिशत आंकड़े क्रमशः 65% व 75% हैं जिनकी संख्या 39 व 45 तथा सकारात्मक अभिवृत्ति वाले छात्र एवं छात्राओं का प्रतिशत क्रमशः 15% व 3.33% है जिनकी संख्या 9 व 2 है

परिणामों की व्याख्या :

प्राप्त आंकड़ों से यह ज्ञात होता है ज्यादातर छात्र छात्राओं के अभिवृत्ति तटस्थ है और नकारात्मक अभिवृत्ति

सकारात्मक अभिवृत्ति से अधिक है इससे यह प्रतीत होता है कि उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों चाहे वाह छात्र हो या छात्रा सभी की स्थिति एक ही है। लगभग 70% छात्र-छात्राओं की अभिवृत्ति तथा इससे या ज्ञात होता है कि वह शिक्षा में बदलाव चाहते भी हैं और नहीं भी उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रति जागरूक होने की आवश्यकता प्रतीत होती है जब तक विद्यार्थी किसी भी नीति को लेकर जागरूक नहीं होंगे तब तक उनकी स्थिति तटस्थ रहने वाली है।

H02 - स्नातक एवं परास्नातक के विद्यार्थियों में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

विवेचना - स्नातक एवं परास्नातक के राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' अभिवृत्ति मापनी पर दी गई अनुक्रिया के प्राप्त अंकों की गणना सांख्यिकी टी. परीक्षण को करने पर जो परिणाम प्राप्त हुए। उसका विवरण दिए गए तालिका की सहायता से स्पष्ट किया गया है।

तालिका संख्या - 4

क्रम	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	CR मान	सार्थकता स्तर	t-सारणी मान df=158
1	स्नातक विद्यार्थी	60	73.83	6.83	1.88	0.05	1.92
2	परास्नातक विद्यार्थी	60	71.13	8.13			

दत्तों का विश्लेषण

उपरोक्त तालिका संख्या में अभिवृत्ति मापने पर प्राप्त परास्नातक एवं स्नातक के विद्यार्थियों की कुल अभिवृत्ति का मध्यमान क्रमशः 73.83 व 71.13 रहा। मानक विचलन क्रमश 6.83 व 8.13 तथा प्राप्त CR का मान 1.88 हैद्य प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान स्वतंत्रता के df=158 पर सार्थकता के स्तर 0.05 पर सारणी मान 1.92 से कम है। अतः यह प्राप्त मान 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है। प्रतिपादित शून्य परिकल्पना को स्वीकार किया जाता है। यह परिणाम इंगित करता है कि स्नातक के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में मध्यमान में सार्थक अंतर नहीं है। प्रस्तुत आंकड़ों को समझने के लिए परास्नातक एवं स्नातक की अभिवृत्ति को मिश्रित ग्राफ द्वारा प्रदर्शित किया गया।

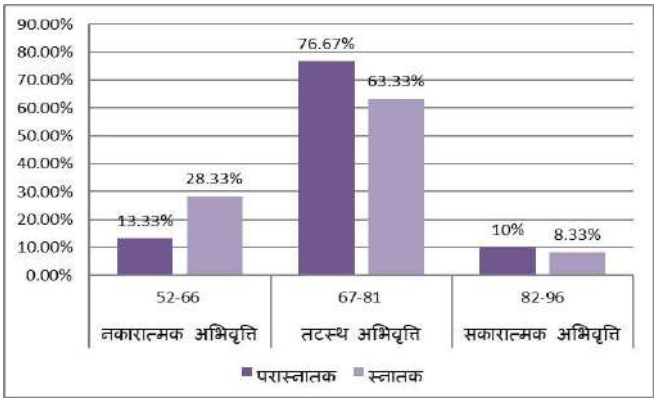

परिणामों की व्याख्या :

प्रस्तुत परिणामों से यह ज्ञात हुआ स्नातक एवं परास्नातक के मध्यमान एवं मानक विचलन में कुछ खास अंतर नहीं पाया गया। परंतु अंतर होने की वजह से परिकल्पना को स्वीकृत किया गया। इससे यह ज्ञात होता है कि दोनों के मध्य सार्थक अंतर नहीं है परंतु परास्नातक की विद्यार्थियों के स्कूल अभिवृत्ति स्नातक के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति तुलना में बेहतर है तो हम यह कह सकते हैं स्नातक के विद्यार्थियों में किसी भी परिस्थिति के प्रति अभिवृत्ति प्रकट करने की क्षमता अधिक है।

निष्कर्ष

- उच्च शिक्षा मे दिये गए प्रावधान बहु प्रवेश एवं बहु निकास के प्रति उच्चा शिक्षा के विद्यार्थियों की अभिवृति तटस्थ है। अत: कह सकते हैं कि उच्च शिक्षा के विद्यार्थी बहु प्रवेश एवं बहु निकास के सम्बन्ध मे उदासीन है।
- स्नातक एवं परास्नातक की अभिवृति तटस्थ है परन्तु परास्नातक की तुलना मे स्नातक के विद्यार्थियों की अभिवृति बेहतर है।
- उच्चा शिक्षा के छात्र - छात्रों की अभिवृति राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के प्रति उदासीन व्यवहार प्रकट करते है परन्तु उच्च शिक्षा के छात्रों की स्थिति छात्रों के तुलना मे बेहतर है।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' के प्रति सकारात्मक अभिवृति का स्तर काम होना चिंता का विषय नहीं है परन्तु तटस्थ अभिवृति के स्तर अत्यंत गंभीर विषय है विद्यार्थियों को जीवन और शिक्षा मे आने वाले हर परिवर्तन मे सक्रिय भागीदारी रखनी चाहिए और अपनी प्रतिक्रिया देनी चाहिए चाहे उनकी प्रतिक्रिया सकारात्मक हो या नकारात्मक।
- किसी भी विषय पर तटस्थ रहना और अपनी प्रतिक्रिया न देना यह दर्शाता है कि विद्यार्थियों को शिक्षा मे होने वाले कोई भी बदलाव उनके जीवन मे महत्व नहीं रखता चाहे वह बदलाव उनकी शिक्षा के लिए लाभदायक हो या हानिकारक।

सुझाव

अध्यापकों के लिए सुझाव :

- शिक्षा में परिवर्तन की जानकारी: शिक्षा में होने वाले हर बदलाव के बारे में विद्यार्थियों को सूचित करें।
- संगोष्ठी का आयोजन : छात्रों के लिए संगोष्ठी आदि की व्यवस्था करें, जिससे वे शिक्षा में होने वाले बदलाव के बारे में जागरूक हो सकें।
- कक्षा में चर्चा : कक्षा में किसी भी शैक्षिक परिवर्तन के गुण और दोषों के बारे में छात्रों के साथ चर्चा करें।
- शैक्षिक आवश्यकताएं : छात्रों को उनकी शैक्षिक आवश्यकताओं के बारे में जागरूक करें।
- राय देने के लिए प्रोत्साहन : छात्रों को किसी भी शैक्षिक परिवर्तन के बारे में अपनी राय देने के लिए प्रोत्साहित करें।

नीति निर्देशकों के लिए सुझाव :

- पाठ्यचर्या निर्माण : इस प्रणाली को लागू करने में पाठ्यचर्या निर्माण एक बड़ी चुनौती है। यह

सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि एक या दो साल के डिग्री कोर्स के बाद छात्रों को आवश्यक दक्षताओं, ज्ञान और कौशल प्राप्त हो।

- छात्र सहायता सेवाएं : उचित मार्गदर्शन के अभाव में छात्रों के मन में भ्रम और शंका उत्पन्न हो सकती है। विशेषकर उन छात्रों के लिए जो व्यक्तिगत, सामाजिक, भावनात्मक, सांस्कृतिक, आर्थिक या किसी अन्य कारण से ड्रॉप आउट हो सकते हैं। ऐसे छात्रों के लिए सहायता सेवाओं को विभिन्न स्तरों पर प्रोत्साहित और विकसित करने की आवश्यकता है।
- रोजगार के अवसर : विभिन्न क्षेत्रों में प्रमाण पत्र और डिप्लोमा धारकों के लिए रोजगार के अवसरों की उपलब्धता सुनिश्चित करनी होगी, खासकर जब डिग्री धारकों को भी नौकरी पाने में कठिनाई हो रही हो।
- उच्च शिक्षा से वंचित न हों : यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि मजबूत प्रेरणा और उचित मार्गदर्शन के अभाव में छात्रों का एक बड़ा वर्ग उच्च शिक्षा से वंचित न हो।
- अत्यधिक शुल्क का नियंत्रण : यह भी सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि यह प्रणाली निजी या अन्य संस्थानों के लिए उन छात्रों से अत्यधिक शुल्क लेने का सुनहरा अवसर न बन जाए, जो अपनी पढ़ाई फिर से शुरू करने के लिए वापस प्रवेश लेना चाहते हैं।

सन्दर्भ :

- कुमार, अ. (2020), 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रावधान का लाभ, द न्यू इंडिया एक्सप्रेस।
- कुलकर्णी, त. (2021), 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रणाली के प्रभाव, शिक्षा और समाज।
- वेणुगोपाल, आर. के. (2020), शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए बहु प्रवेश एवं बहु निकास, शिक्षा और विकास।
- शिक्षा और डेस्क. (2021), 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रणाली पर शिक्षकों की राय, न्यूज 18
- रामानंद, एस. जी. (2020), राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और शिक्षा में लचीलापन, पियरसन इंडिया।
- मल्लिक, अ. (2020), शिक्षा में अकादमी लचीलापन : भारत में एक नई पहल, डेलॉयट इंडिया।
- मित्तल, प. (2020), 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' और व्यावसायिक शिक्षा का महत्व, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी।
- चौधरी, आ. (2020), 'बहु प्रवेश एवं बहु निकास' प्रणाली के लाभ और चुनौतियां, आकाश एजुकेशनल सर्विसेज लिमिटेड।

●●●

भारत की पंचायती संस्थाओं में महिला प्रतिनिधियों की स्थिति : एक समीक्षा

❍ निराला कुमारी[1]
❍ डॉ. हुस्न आरा[2]

लोकतंत्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि लोकतांत्रिक संस्थाओं में अन्य प्रकार की समानताओं के साथ लैंगिक समानता को भी स्थापित किया जाय। इससे राजनीति और समाज को व्यापक पैमाने पर लाभ पहुँचाया जा सकता है। लैंगिक समानता स्थापित होने से सरकारी नीतियों के प्रभावशाली नतीजे निकलते हैं। महिलाओं की उपस्थिति से योजनाओं के क्रियान्वयन में भ्रष्टाचार की गुंजाइश कम रहती है और लड़ाई-झगड़े व विवादों की स्थिति भी अपेक्षाकृत कम बनती है। ऐसे में योजनाओं का लाभ अधिक लोगों तक पहुँचता है और समाज आर्थिक व नैतिक रूप से मजबूत बनता है। योजनाओं में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी से महिलाओं का आत्मविश्वास तो बढ़ता ही है, उनकी शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति में गुणात्मक सुधार होता है। वस्तुत: किसी भी सफल लोकतंत्र का 'महत्वपूर्ण जनसमूह' महिलाएँ ही हैं और उन्हें अगर लोकतांत्रिक संस्थाओं में जगह न दिया जाय तो उस लोकतंत्र का क्या हाल होगा? इस बात को लोग अब समझने लगे हैं। इसलिए अनेक विधि से महिलाओं को लोकतांत्रिक संस्थाओं से जोड़ने की कोशिश की जा रही है। केवल भारत ही नहीं, पूरे विश्व में इस प्रयास को अंजाम दिया जा रहा है। क्रिटिकल मास सिद्धांत के अनुसार राजनीति और शासन की प्रक्रिया में महिलाओं की मौजूदगी इतनी व्यापक होनी चाहिए कि वे महिला आबादी के सशक्तीकरण के लिए किए जाने वाले नीतिगत बदलावों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें।[1] अत: महिलाओं के उचित प्रतिनिधित्व को निश्चित करने के लिए भारत समेत विश्व के अनेक देशों ने आरक्षण का प्रावधान किया गया है। जनवरी, 2023 तक के आंकड़ों के अनुसार विश्व के 88 देशों ने स्थानीय चुनावों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया है।[2] भारत ने भी ग्रामीण स्तर पर पंचायतों में महिलाओं

1. शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।
2. सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ. एल.के.वी.डी. कॉलेज, ताजपुर, समस्तीपुर।

की भागीदारी बढ़ाने के लिए आरक्षण की व्यवस्था कर संतोषजनक कामयाबी पायी है। तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो भारत के पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी अन्य देशों से 7 प्रतिशत अधिक है।[3]

ग्राम पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए भारत में 73वां संवैधानिक संशोधन अधिनियम 1993 में लागू हुआ। इसके अंतर्गत स्थानीय शासन की इकाइयों, यानी ग्राम पंचायत, ब्लॉक समितियों और जिला परिषदों के चुनाव में महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटों को आरक्षित किया गया है। इन स्थानीय इकाइयों को पंचायती राज संस्थानों के रूप में जाना जाता है। पंचायती राज संस्थानों में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था हुए तीस वर्ष से अधिक हो चुके हैं। इस दौरान ग्रामीण महिलाओं की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार देखने को मिल रहा है। राजनीतिक विविधता के बावजूद भारत जैसे देश में पंचायत स्तर पर फैसला लेने में 1.45 मलियन महिलाएँ सक्रिय भूमिका में हैं।[4]

वैश्विक लैंगिक अंतर रिपोर्ट को देखें तो भारत 2022 की अपेक्षा 2023 में 8 पायदान की वृद्धि पा चुका है। इस रिपोर्ट में पंचायत स्तर पर महिलाओं के समावेशन को एक नए संकेतक के रूप में जोड़ा गया।[5] रिपोर्ट में 146 देशों की स्थिति दर्शायी गई है, जिसमें से केवल 18 देशों की लोकल गवर्नेंस में 40 प्रतिशत से अधिक महिलाओं को स्थान मिला है। इन देशों में भारत सबसे ऊपर है; अर्थात् भारत में ग्राम पंचायत स्तर पर शासन में महिलाओं की भागीदारी सर्वाधिक है-

देश	**महिलाओं की भागीदारी**
भारत	- 44.4 प्रतिशत
यूके	- 35.3 प्रतिशत
जर्मनी	- 30.3 प्रतिशत
चीन	- 28.1 प्रतिशत
ब्राजील	- 15.7 प्रतिशत
इंडोनेशिया	- 15.7 प्रतिशत

स्पष्ट है कि ग्राम पंचायत स्तर पर महिलाओं को प्रतिनिधित्व देने में भारत यूके, जर्मनी और चीन जैसे विकसित देशों से भी आगे है।

1993 में आरक्षण की व्यवस्था लागू होने से पहले 1990 के दशक में महिलाओं की भागीदारी को लेकर देश गंभीर नहीं था। 73वें संवैधानिक संशोधन के बाद 1993 से ग्रामीण इलाकों की राजनीति में एक नए बदलाव का दौर शुरू हुआ जिसके परिणामस्वरूप पुरुष वर्चस्व की राजनीति को खत्म करने की मांग उठने लगी और महिलाओं को राजनीति में प्रवेश मिलने लगा। ग्रामीण स्तर की राजनीति में महिलाओं की भागीदारी से महिलाओं की स्थिति में प्रत्यक्ष सुधार हुआ। उदाहरण के तौर पर उल्लेखनीय है कि "वर्ष 1992-93 में ग्रामीण महिलाओं की साक्षरता दर 34 प्रतिशत थी, जबकि 2019-21 में यह 65.9 प्रतिशत हो गई। वर्ष 1992-93 में ग्रामीण महिलाओं की कुल प्रजनन दर 3.7 बच्चे प्रति महिला थी, जो 2019-21 में घटकर 2.1 हो गई। इसके अलावा, महिलाओं (20-49 आयु वर्ग में) के लिए विवाह की औसत आयु में भी सुधार हुआ है, वर्ष 1992-93 में लड़कियों के विवाह की औसत आयु 16.2 वर्ष थी, जो वर्ष 2019-2021 में बढ़कर 19.2 वर्ष हो गई है।[6] इस तरह 73वें संवैधानिक संशोधन के पश्चात स्थानीय शासन में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है और उनके सशक्तीकरण का सकरात्मक माहौल निर्मित हुआ है।

भारत में ग्रामीण स्तर पर स्वशासन की अवधारणा नवीन नहीं है। इसका एक लंबा इतिहास रहा है।

"आर्टिकल 40 में स्वशासन को प्रोत्साहित करने का विचार पहले से ही शामिल है। इसमें महिलाओं के प्रतिनिधित्व का अलग से जिक्र किए बगैर इसे भारतीय संविधान की सरकारी नीति के गैर-प्रवर्तनीय निदेशक सिद्धांतों के तहत रखा गया था।"[7] 1957 में भारत के सामुदायिक विकास के कार्यक्रम की कार्यप्रणाली की जाँच-पड़ताल के लिए बलवंत राय मेहता समिति गठित की गई थी। इस समिति ने अपनी सिफारिश में कहा था कि 20 सदस्यीय पंचायती समिति को "महिलाओं एवं बच्चों के बीच जाकर काम करने में दिलचस्पी रखने वाली दो महिलाओं को नामांकित करना चाहिए।"[8] बलवंत राय मेहता समिति सुझाव का पालन करते हुए महाराष्ट्र जिला परिषद् और पंचायत समिति अधिनियम के अंतर्गत यह प्रावधान किया गया कि अगर चुनाव के दौरान किसी महिला उम्मीदवार को जीत हासिल नहीं हो पाती है, तो ग्राम, ब्लॉक ओर जिला स्तर के तीनों पंचायती राज निकायों में से प्रत्येक में एक या दो महिलाओं को नामांकित किया जा सकता है। सन् 1978 में महाराष्ट्र के पंचायत समितियों और जिला परिषदों में महिला प्रतिनिधियों के लिए 320 सीटें थीं और उनमें से केवल छः स्थानों पर महिलाओं को जगह मिली थी। इसका सीधा अर्थ है कि नामांकन के प्रावधान के बावजूद महिलाओं को कोई खास लाभ नहीं मिल रहा था। महिला प्रतिनिधियों को शामिल करने के मामले में सुझाव मात्र पर्याप्त नहीं था।

महिलाओं की स्थिति का सही आकलन करने के लिए सन् 1974 में भी एक समिति बनाई गई थी, जिसके रिपोर्ट का शीर्षक था, 'समानता की ओर'। रिपोर्ट में इस तथ्य का उदघाटित किया गया कि 'सरकार द्वारा जो भी योजनाएँ बनाई जाती हैं, या फिर विकास से संबंधित जो भी नीतियाँ हैं, उनमें ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाली महिलाओं से जुड़ी दिक्कतों और उनके विचारों पर उतना ध्यान नहीं दिया गया है, जितना दिया जाना चाहिए। अर्थात् एक लिहाज से ग्रामीण महिलाओं के नजरिए को महत्व नहीं दिया जाता है।'[9] इसी रिपोर्ट में ग्रामीण स्तर पर महिला पंचायतों की स्थापना का प्रस्ताव रखा गया था, परंतु महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए आरक्षण की सिफारिश नहीं की गई थी। आरक्षण की सिफारिश संभवतः पहली बार अशोक मेहता समिति ने 1978 में की थी लेकिन वह भी केवल दो सीटों पर। अशोक मेहता की समिति ने प्रत्येक पंचायत में महिलाओं के लिए दो सीटें आरक्षित करने की बात कही थी।[10] उसके बाद सन् 1988 में महिलाओं के लिए राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना के नीतिगत दस्तावेज़ में महिला आरक्षण की सिफारिश की गई।[11] सिफारिश में कहा गया था कि गाँव से लेकर ज़िला सतर तक कार्यकारी प्रमुख के 30 प्रतिशत पद महिलाओं के लिए आरक्षित होने चाहिए। 64वें संवैधानिक संशोधन विधेयक में इस सिफारिश को पारित कराने का प्रयास किया गया, पर पास नहीं हुआ।[12] पुनः 1993 में प्रयास किया गया और इस बार 73वें संवैधनिक संशोधन अधिनियम के तहत महिलाओं को पंचायतीराज संस्थाओं में एक तिहाई सीटें आरक्षित कर दी गईं। 73वें संशोधन में महिलाओं को आरक्षण देते हुए इस बात का खास खयाल रखा गया है कि एस.सी-एस.टी महिलाओं के लिए विशेष रूप से सीटें आरक्षित हो। संशोधन अधिनियम के खंड (1) के में यह प्रावधान किया गया है कि महिलाओं के लिए जितनी भी सीटें आरक्षित होंगी, उसमें से कम से कम एक तिहाई सीटें अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित रहेंगी। इसके अलावा, "प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष चुनाव के माध्यम से भरी जाने वाली सीटों की कुल संख्या में से कम से कम एक तिहाई अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी, इसके साथ ही इन आरक्षित सीटों को पंचायत के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में हर चुनाव में बदला जा सकता है।"[13]

ये सच है कि अखिल भारतीय स्तर पर महिलाओं को आरक्षण 1993 में 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के तहत मिला, किंतु भारत के कई राज्य ऐसे थे, जहाँ महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान पहले

ही किया जा चुका था। "वर्ष 1961 में महाराष्ट्र द्वारा बलवंत राय समिति की सिफारिशों को लागू करने के बाद वर्ष 1985 में कर्नाटक ने मंडल प्रजा परिषदों में महिलाओं के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया था। इसके साथ ही कर्नाटक ने इन समितियों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए अतिरिक्त आरक्षण का प्रावधान किया था। इसी तरह वर्ष 1986 में आन्ध्र प्रदेश ने ग्राम पंचायतों के लिए 22 से 25 प्रतिशत के बीच आरक्षण की व्यवस्था की थी, जिसमें निर्वाचित महिला सदस्यों के अलावा दो और महिलाओं को पंचायत समिति में शामिल करने का प्रावधान किया गया था।"[14] इस तरह देखा जाए तो 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के द्वारा पूरे देश में महिलाओं को आरक्षण दिया गया जिसके परिणामस्वरूप आज 1.45 मिलियन से अधिक महिलाओं को भारत के गांव-गांव में पंचायतों में नेतृत्व मिला है।

पंचायतों में महिला प्रतिनिधियों के आगमन से पंचायत स्तर की राजनीति में महिला नेताओं की नेतृत्व क्षमता और विकास संबंधी उनके संचालन कौशल का पता चला है। महिला प्रतिनिधियों की नीतिगत प्राथमिकताएँ जाहिर तौर पर पुरुषों से अलग हैं। वे अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों में स्थानीय संसाधनों का उपयोग पुरुषों की अपेक्षा बेहतर तरीके से करती हुई देखी जा रही हैं। 2010 में किए गए एक अध्ययन के अनुसार, जिन गांवों में महिला सरपंच नियुक्त हैं, वहां भ्रष्टाचार में पर्याप्त कमी देखी गई। इसके अतिरिक्त सरकारी योजनाओं और सेवाओं को अंतिम छोर तक पहुँचाने में भी उन्हें संतोषजनक सफलता मिल रही है। महिला नेतृत्व में बुनियादी सुविधाओं के विकास जैसे पेयजल, स्वच्छता, शिक्षा और सड़कों के निर्माण पर अधिक जोर दिया गया है। ये मुद्दे महिलाओं के लिए ज़्यादा जरूरी हैं। अध्ययन में यह भी देखा गया है कि पंचायत स्तर पर महिला प्रतिनिधियों को अहमियत नहीं दी जा रही थी, लेकिन जब से महिला प्रतिनिधियों में नई पीढ़ी शामिल हुई है, स्थिति बदल रही है। नई पीढ़ी अपेक्षाकृत अधिक पढ़ी-लिखी, समझदार और तकनीकी रूप से ज्यादा सक्षम है। इन कारणों से महिला प्रतिनिधियों के प्रति गांव वालों का नजरिया बदलने लगा है और अब वे महिलाओं को सम्मान और श्रद्धा भाव से देखने लगे हैं। युवा महिला प्रतिनिधियों ने कल्याणकारी कार्यक्रमों पर गंभीरता से काम किया है और अजीविका के अवसर, आजीविका का अधिकार, स्वच्छता, मां-बच्चे का स्वास्थ्य, पोषण, खाद्य सुरक्षा, शिक्षा, बच्चों की समुचित देखभाल आदि मुद्दों पर उल्लेखनीय उपलब्धि हासिल की है।

आम तौर पर पंचायत स्तर पर गांव के ज्वलंत मुद्दों पर वर्ष में कम से कम दो बार चर्चा होती है। महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी से ये बैठकें सकरात्मक हो गईं हैं। इसका कारण संभवतः यह है कि महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी से बैठकों का लोकतांत्रिक स्वरूप सामने आता है और विकास जैसे मुद्दों पर गंभीर विचार-विमर्श का माहौल बन पाता है। अध्ययनों से पता चलता है कि "जिन बैठकों में निर्वाचित महिला प्रतिनिधि उपस्थित होती हैं, उनमें गाँव की महिलाओं की भागीदारी की संभावना अधिक होती है, साथ ही इनमें ग्रामीण महिलाएं सहजता से अपनी समस्याओं को लेकर भी खुलकर बोलती हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि महिला नेता उनकी चिंताओं और आवश्यकताओं के प्रति ज़्यादा संवेदनशील होती हैं।"[15] उनकी संवेदना ग्रामीण समस्याओं के प्रति उन्हें गंभीर बनाती है और वे ग्रामीण स्तर की स्थानीय प्रशासनिक व्यवस्थाओं को बेहतर बनाने के लिए काम करती हैं।

यह बात सही है कि पंचायती स्तर पर महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि हुई है और उनका सशक्तीकरण भी हुआ है, लेकिन भारतीय समाज की पारंपरिक मानसिकता उनके लिए एक बड़ी चुनौती रही है। 2012 में हुए एक अध्ययन के अनुसार ग्राम पंचायतों में महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व और महिलाओं के साथ होने वाले अपराधों के बीच एक गहरा संबंध है। अध्ययन में स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है कि महिलाओं की राजनीति में सक्रिय भागीदारी बढ़ने और पंचायत में उनके प्रतिनिधित्व में बढ़ोत्तरी के साथ-साथ

महिलाओं के विरुद्ध दर्ज होने वाले अपराधों में भी बढ़ोत्तरी हुई है।[16] 2021 के एक सर्वेक्षण के अनुसार "बिहार में निर्वाचित महिला प्रतिनिधि घरेलू हिंसा और बाल विवाह जैसे मुद्दों में सक्रियता के साथ दख़ल देती हैं और इनका समाधान करने में अपनी अहम भूमिका निभाती हैं। 61 प्रतिशत निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधि के मुताबिक, जब उन्हें अपने निर्वाचित क्षत्रों में महिलाओं पर हिंसा से जुड़ी कोई शिकायत मिलती है तो वे उसमें अपनी तरफ से दख़ल देती हैं। इसके अलावा 46 प्रतिशत महिला प्रतिनिधियों ने बताया कि उन्होंने बाल विवाह को रोकने के लिए कदम उठाए थे; हालाँकि, ज़्यादातर महिला नेता सामाजिक दबाव की वजह से इस मुद्दे पर बेबाक तरीके से बातचीत करने से कतराती हैं।"[17]

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि पंचायत स्तर पर महिला प्रतिनिधियों के आगमन से बहुआयामी परिवर्तन हुए है। तमाम विसंगतियों के बावजूद पंचायत स्तर पर महिलाओं के लिए आरक्षण के प्रावधान ने लाभ पहुँचाया है। सबसे बड़ा लाभ तो यह हुआ है कि गांव-गांव में महिलाएं राजनीतिक रूप से सशक्त हुई हैं। कुछ विसंगतियाँ जरूर हैं और उन्हें अगर दूर कर लिया जाय तो संस्थागत और प्रशासनिक स्तर पर महिलाएं कमाल कर सकती हैं।

संदर्भ :

1. Sarah Childs & Mona Lena Krook, "Critical Mass Theory and Women's Political Representation," *Political Studies*: 2008 VOL 56, 725–736, https://mlkrook.org/pdf/childs_krook_2008.pdf.
2. UN Women, "Women in Local Government," https://localgov.unwomen.org/.
3. "SDG 5: Gender Equality," *UNStats*, https://unstats.un.org/sdgs/report/2023/Goal-05/#:~:text=Quotas%20also%20contribute%20to%20higher,of%20 management%20positions%20in%202021
4. Ministry of Panchayati Raj, "State/UT-Wise Details of Elected Representatives & EWRs," https://panchayat.gov.in/state-ut-wise-details-of-elected-representatives-ewrs/; "Women in Panchayati Raj Institutions: Successful for some, barriers for many," *Outlook*, September 20, 2023, https://www.outlookindia.com/national/women-in-panchayati-raj-institutions-successful-for-some-barrier-for-many-news-319213
5. World Economic Forum, "Global Gender Gap Report 2023," June 2023, https://www3.weforum.org/docs/WEF_GGGR_2023.pdf.
6. India - Summary Report - National Family Health Survey 1992-93," *International Institute for Population Studies Bombay*, The DHS Program, 1995, https://dhsprogram.com/pubs/pdf/SR162/SR162.pdf.

   "National Family Health Survey - 5 2019-21", *International Institute for Population Sciences,* https://rchiips.org/nfhs/NFHS-5_FCTS/India.pdf.
7. Esther Duflo, "Women Empowerment and Economic Development," *Journal of Economic Literature*, December 2012, Vol. 50, No. 4, pp. 1051-1079; Nafisa Halim, Kathryn M. Yount, Solveig A. Cunningham and Rohini P. Pande, "Women's Political Empowerment and Investments in Primary Schooling in India," *Social Indicators Research*, February 2016, Vol. 125, No. 3, pp. 813-851.
8. Peter Ronald deSouza, "Multi-State Study of Panchayati Raj Legislation and Administrative Reform," Background Papers, September 27, 2000, https://documents1.worldbank.org/curated/en/958641468772791330/pdf/280140v130IN0Rural0decentralization.pdf.
9. "Report On The Committee On The Status Of Women In India*," Ministry of Education and*

Social Welfare, Government of India, December 1974, https://pldindia.org/wp-content/uploads/2013/04/Towards-Equality-1974-Part-1.pdf.

10. Ashok Mehta, "Report of the Committee on Panchayati Raj Institutions," *Government of India*, 1978. https://indianculture.gov.in/reports-proceedings/report-committee-panchayati-raj-institutions.
11. Sharmila Chandra. "National Perspective Plan for Women Makes No Headway," *India Today*, November 7, 2013, https://www.indiatoday.in/magazine/indiascope/story/19890930-national-perspective-plan-for-women-makes-no-headway-816578-1989-09-29;

    Nandini Prasad, "Training needs to women in Panchayats: An Overview," UNESCO House, 1998.
12. Raghabendra Chattopadhyay and Esther Duflo, "Women as Policy Makers: Evidence from a Randomized Policy Experiment in India," *Econometrica*, September 2004, Vol. 72, No. 5, pp. 1409-1443.
13. "The Constitution (Seventy-Third Amendment) Act, 1992| National Portal of India", *Government of India*, December 13, 2023, https://www.india.gov.in/my-government/constitution-india/amendments/constitution-india-seventy-third-amendment-act-1992.
14. Rajesh Kumar Sinha, "Women in Panchayats," *Kurukshetra*, 2018, https://www.pria.org/uploaded_files/panchayatexternal/1548842032_Women%20In% 20Panchayat.pdf.
15. "Decentralisation – The Path to Inclusive Governance?" *Accountability Initiative,* January 2010, https://accountabilityindia.in/sites/default/files/policy-brief/panchayatbrief1.pdf.
16. Lakshmi Iyer, Anandi Mani, Prachi Mishra, and Petia Topalova. "The Power of Political Voice: Women's Political Representation and Crime in India," *American Economic Journal: Applied Economics* 4, no. 4 (October 1, 2012): 165–93. https://doi.org/10.1257/app.4.4.165.
17. Centre for Catalyzing Change, "Sakshamaa Briefing Paper - Women Political Leaders in Rural Bihar: Striving for Change Amidst Socio- Cultural Restrictions," *C3 India*, 2021, https://www.c3india.org/uploads/news/Briefing_Paper_EWR_ Survey_22032021.pdf

●●●

भारत में महिला अधिकार और लैंगिक समानता : नीतियों और कानूनों का विश्लेषण

❍ शबनम कुमारी[1]
❍ प्रो. मुनेश्वर यादव[2]

संक्षिप्ति :

यह शोध पत्र भारत में महिला अधिकारों और लैंगिक समानता पर केंद्रित है, जिसमें नीतियों और कानूनों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। इसमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से लेकर वर्तमान नीतिगत प्रयासों तक की यात्रा का वर्णन किया गया है। भारतीय संविधान में महिलाओं के अधिकार, प्रमुख कानूनी प्रावधान, और सरकारी योजनाओं की प्रभावशीलता का अध्ययन किया गया है। साथ ही, महिला सशक्तीकरण के मार्ग में आने वाली चुनौतियाँ और उनके समाधान पर भी चर्चा की गई है। इस अध्ययन में अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को भी शामिल किया गया है, जिससे अन्य देशों के सफल मॉडल्स को समझा जा सके। अंत में, भविष्य की दिशा और सुधार के लिए सुझाव दिए गए हैं, ताकि महिलाओं को उनके अधिकार और समानता सुनिश्चित की जा सके।

बीज शब्द : महिला अधिकार, लैंगिक समानता, भारतीय संविधान, नीतियाँ, कानून, महिला सशक्तीकरण, दहेज निषेध अधिनियम, घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, मातृत्व लाभ, सरकारी योजनाएँ, सामाजिक बाधाएँ, न्यायिक प्रणाली, अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य, सुधार के सुझाव।

भारत में महिला अधिकार और लैंगिक समानता का विषय न केवल सामाजिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह देश की समग्र प्रगति के लिए भी आवश्यक है। महिलाएँ समाज का आधा हिस्सा हैं, और उनकी समानता और अधिकार सुनिश्चित करने से पूरे समाज का विकास होता है। महिलाओं के अधिकारों को सुनिश्चित

1. *शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, बलिराम भगत महाविद्यालय, समस्तीपुर, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,* दरभंगा।
2. *विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,* दरभंगा।

करना उनके मानवाधिकारों की रक्षा करना है, जो किसी भी प्रगतिशील समाज का आधार होता है।

अध्ययन के उद्देश्य

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भारत में महिला अधिकारों और लैंगिक समानता के क्षेत्र में किए गए नीतिगत और कानूनी प्रयासों का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत संविधान, प्रमुख कानून, नीतियाँ, और योजनाओं का अध्ययन किया जाएगा। इस अध्ययन का उद्देश्य निम्नलिखित बिंदुओं पर केंद्रित है:

- भारतीय संविधान में महिलाओं के अधिकारों की जांच
- महिला सशक्तीकरण के लिए बनाए गए प्रमुख कानूनों का विश्लेषण
- सरकारी नीतियों और योजनाओं की प्रभावशीलता का मूल्यांकन
- महिला अधिकारों के क्षेत्र में मौजूदा चुनौतियों और उनके समाधान का प्रस्ताव

अध्ययन की सीमाएँ और परिधियाँ

इस अध्ययन में भारत के कानूनी और नीतिगत ढांचे का विश्लेषण किया जाएगा, जिसमें संवैधानिक प्रावधान, प्रमुख कानून, और सरकारी योजनाओं का समावेश होगा। अध्ययन की सीमाएँ समय और संसाधनों पर निर्भर होंगी। इसके अलावा, यह अध्ययन मुख्यत: कानूनी और नीतिगत पहलुओं पर केंद्रित होगा, जबकि सांस्कृतिक और सामाजिक पहलुओं का विश्लेषण सीमित होगा।

अनुसंधान प्रश्न

1. भारत में महिला अधिकारों और लैंगिक समानता के लिए प्रमुख कानूनी और नीतिगत प्रयास क्या हैं?
2. इन नीतियों और कानूनों का प्रभाव और कार्यान्वयन कैसा है?
3. महिला अधिकारों के क्षेत्र में कौन-कौन सी चुनौतियाँ हैं और उनके समाधान क्या हो सकते हैं?

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में महिला अधिकारों का ऐतिहासिक विकास

भारत में महिला अधिकारों का इतिहास प्राचीन काल से ही बदलता रहा है। वैदिक काल में महिलाओं को उच्च सम्मान प्राप्त था और उन्हें शिक्षा, धार्मिक संस्कारों में भाग लेने, और समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। लेकिन मध्यकाल में स्थिति बदल गई और महिलाओं की स्थिति में गिरावट आई। सती प्रथा, बाल विवाह, और पर्दा प्रथा जैसी कुप्रथाएँ प्रचलित हो गईं। औपनिवेशिक काल में कई सामाजिक सुधार आंदोलनों ने महिलाओं की स्थिति को सुधारने का प्रयास किया।

प्रमुख सुधार और आंदोलन

19वीं और 20वीं सदी में कई समाज सुधारकों ने महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए आंदोलन चलाए। राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा के खिलाफ संघर्ष किया, जबकि ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह और महिला शिक्षा के लिए काम किया। महात्मा गांधी ने भी स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित किया। इन सुधार आंदोलनों का महिलाओं की स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा और स्वतंत्रता के बाद के सुधारों की नींव रखी।

स्वतंत्रता से पूर्व और पश्चात् की स्थिति

स्वतंत्रता से पहले महिलाओं की स्थिति काफी हद तक सामाजिक सुधारकों और आंदोलनों पर निर्भर थी। स्वतंत्रता के बाद, भारतीय संविधान ने महिलाओं को समानता का अधिकार दिया और उनके लिए कई विशेष

प्रावधान किए गए। इसके बाद, कई कानून बनाए गए और संशोधन किए गए, जिनका उद्देश्य महिलाओं की स्थिति में सुधार लाना था।

संविधान और महिला अधिकार

भारतीय संविधान में महिलाओं के अधिकार

भारतीय संविधान में महिलाओं के लिए कई महत्वपूर्ण प्रावधान किए गए हैं। अनुच्छेद 14 से 18 में समानता का अधिकार, अनुच्छेद 15 में लैंगिक भेदभाव के खिलाफ प्रावधान, और अनुच्छेद 21 में जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार शामिल है। ये प्रावधान महिलाओं को कानूनी संरक्षण और समानता का अधिकार प्रदान करते हैं।

मौलिक अधिकार और राज्य के नीति निदेशक तत्व

अनुच्छेद 39(a) में पुरुष और महिलाओं को समान वेतन का प्रावधान है, जबकि अनुच्छेद 42 में काम की न्यायपूर्ण और मानवोचित स्थितियाँ और मातृत्व सहायता का प्रावधान है। ये प्रावधान राज्य को महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए आवश्यक कदम उठाने के लिए निर्देशित करते हैं।

संवैधानिक सुधार और संशोधन

संविधान में समय-समय पर कई संशोधन किए गए हैं, जिनका उद्देश्य महिलाओं की स्थिति में सुधार लाना और उनके अधिकारों को सुनिश्चित करना है। इन सुधारों और संशोधनों ने महिलाओं के कानूनी और सामाजिक अधिकारों को मजबूत किया है और उन्हें सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

महिला सशक्तीकरण के लिए प्रमुख कानून

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 : हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 ने हिंदू महिलाओं को विवाह, तलाक, और संपत्ति में अधिकार प्रदान किए। यह महिलाओं को कानूनी सुरक्षा प्रदान करता है और उनके अधिकारों की रक्षा करता है। इसके तहत, विवाह की न्यूनतम आयु, सहमति के बिना विवाह की अवैधता, और तलाक के लिए कानूनी प्रक्रिया निर्धारित की गई है।

दहेज निषेध अधिनियम, 1961 : दहेज निषेध अधिनियम, 1961 दहेज लेने और देने की प्रथा को अपराध घोषित करता है। इसका उद्देश्य विवाह के समय महिलाओं के साथ होने वाले शोषण को रोकना है। इस अधिनियम के तहत, दहेज लेने या देने पर सजा का प्रावधान है, और दहेज के मामलों में महिलाओं को कानूनी संरक्षण प्रदान किया गया है।

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 : घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 महिलाओं को घरेलू हिंसा से सुरक्षा प्रदान करता है और उन्हें कानूनी सहायता और आश्रय की सुविधा उपलब्ध कराता है। इस अधिनियम के तहत, घरेलू हिंसा के विभिन्न प्रकारों को परिभाषित किया गया है और महिलाओं को राहत और सुरक्षा के उपाय प्रदान किए गए हैं।

यौन उत्पीड़न से कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम, 2013 : यौन उत्पीड़न से कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम, 2013 कार्यस्थल पर महिलाओं को यौन उत्पीड़न से सुरक्षा प्रदान करता है और इसके लिए आवश्यक प्रावधान और प्रक्रियाएँ निर्धारित करता है। इस अधिनियम के तहत, प्रत्येक संस्थान में शिकायत समिति का गठन और शिकायतों के निवारण की प्रक्रिया निर्धारित की गई है।

मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 : मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 महिलाओं को मातृत्व अवकाश, वेतन,

और अन्य लाभ प्रदान करता है, जिससे वे अपने नवजात शिशु की देखभाल कर सकें। इस अधिनियम के तहत, मातृत्व अवकाश की अवधि, लाभ की राशि, और इसके लिए आवश्यक शर्तें निर्धारित की गई हैं।

अन्य महत्वपूर्ण कानून और उनके प्रभाव : इसके अतिरिक्त, कई अन्य कानून जैसे कि महिला आरक्षण विधेयक, महिला सशक्तीकरण के लिए महत्वपूर्ण हैं। ये कानून महिलाओं को राजनीतिक, आर्थिक, और सामाजिक क्षेत्रों में समान अधिकार और अवसर प्रदान करते हैं; जैसे,

- महिला आरक्षण विधेयक : यह विधेयक संसद और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण का प्रावधान करता है।
- संपत्ति में महिलाओं के अधिकार : हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 2005 के तहत महिलाओं को संपत्ति में समान अधिकार प्रदान किए गए हैं।

नीतियाँ और योजनाएँ

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की नीतियाँ

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए कई नीतियाँ और योजनाएँ बनाई हैं, जिनका उद्देश्य महिलाओं को सशक्त बनाना और उनके अधिकारों की रक्षा करना है। इस मंत्रालय की प्रमुख नीतियाँ और योजनाएँ इस प्रकार हैं:

- राष्ट्रीय महिला नीति : इसका उद्देश्य महिलाओं के समग्र विकास और सशक्तीकरण को सुनिश्चित करना है।
- सशक्त महिला योजना : इस योजना का उद्देश्य महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाना और उन्हें स्वरोजगार के अवसर प्रदान करना है।

बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना

बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना लिंगानुपात में सुधार और बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए शुरू की गई थी। इसका उद्देश्य बालिकाओं के खिलाफ होने वाले भेदभाव और शोषण को समाप्त करना है। इस योजना के तहत, विभिन्न स्तरों पर जागरूकता अभियान चलाए जाते हैं और बालिकाओं की शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए विशेष प्रावधान किए जाते हैं।

राष्ट्रीय महिला नीति

राष्ट्रीय महिला नीति का उद्देश्य महिलाओं के समग्र विकास और सशक्तीकरण को सुनिश्चित करना है। यह नीति महिलाओं के स्वास्थ्य, शिक्षा, और रोजगार के क्षेत्रों में सुधार लाने का प्रयास करती है। इस नीति के तहत, महिलाओं के लिए विशेष योजनाएँ और कार्यक्रम चलाए जाते हैं, जिनका उद्देश्य उनकी स्थिति में सुधार और उन्हें सशक्त बनाना है।

राष्ट्रीय महिला आयोग की भूमिका

राष्ट्रीय महिला आयोग महिलाओं के अधिकारों की रक्षा और उनके हितों की सुरक्षा के लिए कार्य करता है। यह आयोग नीतिगत सलाह, जांच, और जनजागरूकता अभियानों के माध्यम से महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास करता है। इसके अलावा, यह आयोग महिलाओं के खिलाफ होने वाले अत्याचार और भेदभाव के मामलों की जांच और समाधान के लिए भी कार्य करता है।

अन्य सरकारी और गैर-सरकारी योजनाएँ

कई अन्य सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों ने भी महिलाओं के अधिकारों और सशक्तीकरण के लिए

महत्वपूर्ण योजनाएँ और कार्यक्रम चलाए हैं, जो महिलाओं को स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनाने में मदद करते हैं। उदाहरण के लिए,

- स्वयं सहायता समूह (SHGs) : ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए स्वयं सहायता समूहों का गठन किया जाता है।
- उद्यमिता विकास कार्यक्रम : महिलाओं को उद्यमिता के क्षेत्र में प्रोत्साहित करने और उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाए जाते हैं।

महिला अधिकारों और लैंगिक समानता के लिए चुनौतियाँ

सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाएँ

भारतीय समाज में प्रचलित पारंपरिक मान्यताएँ और रूढ़िवादी विचारधाराएँ महिलाओं के अधिकारों और समानता में बड़ी बाधाएँ उत्पन्न करती हैं। इन सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाओं को दूर करने के लिए जागरूकता अभियान और शिक्षा की आवश्यकता है।

शिक्षा और स्वास्थ्य में असमानता

शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम अवसर और सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, जिससे उनकी स्थिति में सुधार नहीं हो पाता। शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में समानता लाने के लिए विशेष योजनाएँ और नीतियाँ बनाई जानी चाहिए।

रोजगार में भेदभाव

महिलाओं को रोजगार के क्षेत्र में भी भेदभाव का सामना करना पड़ता है, जिसमें उन्हें समान काम के लिए समान वेतन नहीं मिलता और उन्नति के कम अवसर होते हैं। कार्यस्थल पर लैंगिक समानता सुनिश्चित करने के लिए सख्त कानून और नीतियाँ बनाई जानी चाहिए।

न्यायिक प्रणाली की कमजोरियाँ

कानूनों के प्रभावी कार्यान्वयन में न्यायिक प्रणाली की कमजोरियाँ भी एक बड़ी चुनौती हैं। लंबी न्यायिक प्रक्रियाएँ और पुलिस की निष्क्रियता से महिलाओं को न्याय प्राप्त करने में कठिनाई होती है। न्यायिक प्रणाली में सुधार और महिलाओं के लिए न्याय सुलभ बनाने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए।

महिलाओं के खिलाफ हिंसा और अपराध

महिलाओं के खिलाफ बढ़ते अपराध और हिंसा की घटनाएँ भी एक गंभीर समस्या हैं, जो उनके अधिकारों और स्वतंत्रता को सीमित करती हैं। महिलाओं के खिलाफ हिंसा और अपराध को रोकने के लिए सख्त कानून और उनके प्रभावी कार्यान्वयन की आवश्यकता है।

समकालीन मुद्दे और सुधार

#MeToo आंदोलन और उसकी प्रभावशीलता

#MeToo आंदोलन ने कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के मुद्दे को प्रमुखता से उठाया और समाज में इसके खिलाफ जागरूकता बढ़ाई। इस आंदोलन ने कई महिलाओं को अपने अनुभव साझा करने और न्याय की मांग करने के लिए प्रेरित किया। हालांकि, इस आंदोलन की प्रभावशीलता और इसके प्रभाव का मूल्यांकन अभी भी जारी है।

डिजिटल युग में महिलाओं के अधिकार

डिजिटल युग में महिलाओं के अधिकारों की रक्षा और उनकी डिजिटल साक्षरता बढ़ाने के लिए भी कई

प्रयास किए जा रहे हैं। महिलाओं को इंटरनेट और डिजिटल तकनीकों का सुरक्षित और प्रभावी उपयोग करने के लिए सशक्त बनाने की आवश्यकता है। डिजिटल माध्यमों पर महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों को रोकने के लिए सख्त कानून और नीतियाँ बनाई जानी चाहिए।

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में अंतर

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति में भी काफी अंतर है, जिसे कम करने के लिए विशेष योजनाएँ और नीतियाँ बनानी होंगी। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, और रोजगार के क्षेत्रों में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

मौजूदा कानूनों का कार्यान्वयन और उनके प्रभाव

मौजूदा कानूनों का प्रभावी कार्यान्वयन और उनकी नियमित समीक्षा और संशोधन भी आवश्यक हैं, ताकि वे समय के साथ प्रासंगिक बने रहें। कानूनों के कार्यान्वयन में आने वाली बाधाओं को दूर करने और उनकी प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए।

अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

संयुक्त राष्ट्र महिला अधिकार समझौते (CEDAW)

संयुक्त राष्ट्र के महिला अधिकार समझौते (CEDAW) के तहत भारत ने महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए कई प्रतिबद्धताएँ जताई हैं। इस समझौते का उद्देश्य महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करना और उन्हें समानता का अधिकार प्रदान करना है।

वैश्विक स्तर पर महिला अधिकारों की स्थिति

दुनिया भर में महिला अधिकारों की स्थिति का अध्ययन और तुलना भी महत्वपूर्ण है, जिससे अन्य देशों के सफल मॉडल्स और नीतियों को अपनाया जा सके। वैश्विक स्तर पर महिला अधिकारों की स्थिति का अध्ययन करके हम अपने देश में सुधार के लिए आवश्यक कदम उठा सकते हैं।

अन्य देशों के कानून और उनकी तुलना

अन्य देशों के महिला सशक्तीकरण कानूनों और नीतियों की तुलना करके हम अपने देश के कानूनों और नीतियों को और अधिक प्रभावी बना सकते हैं। जैसे कि,

- नॉर्वे : कार्यस्थल पर लैंगिक समानता और मातृत्व लाभ
- स्वीडन : पितृत्व अवकाश और बाल देखभाल सेवाएँ
- आइसलैंड : लैंगिक वेतन समानता कानून

भविष्य की दिशा

सुधार के लिए सुझाव

महिला अधिकारों और लैंगिक समानता के क्षेत्र में सुधार के लिए कुछ प्रमुख सुझाव इस प्रकार हैं:

- शिक्षा और स्वास्थ्य में समान अवसर प्रदान करना।
- कार्यस्थल पर महिलाओं के लिए सुरक्षित और न्यायपूर्ण वातावरण बनाना।
- न्यायिक प्रक्रियाओं को तेज और सुलभ बनाना।
- सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाओं को दूर करने के लिए जागरूकता अभियान चलाना।

नीतिगत सुधार और नई पहल

नई नीतियों और योजनाओं की आवश्यकता है, जो बदलती सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार

हों। महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए निरंतर नीतिगत सुधार और नई पहलें जरूरी हैं।

सामुदायिक और सामाजिक सहभागिता

सामुदायिक और सामाजिक सहभागिता के माध्यम से महिलाओं के अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ाना और उनकी स्थिति में सुधार लाना आवश्यक है। सामुदायिक स्तर पर महिलाओं की सहभागिता बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास किए जाने चाहिए।

प्रमुख कानून और उनके उद्देश्य

कानून का नाम	उद्देश्य
हिंदू विवाह अधिनियम, 1955	विवाह, तलाक, और संपत्ति में महिलाओं के अधिकार सुनिश्चित करना
दहेज निषेध अधिनियम, 1961	दहेज लेने और देने की प्रथा को अपराध घोषित करना
घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005	घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा प्रदान करना
यौन उत्पीड़न से कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम, 2013	कार्यस्थल पर महिलाओं को यौन उत्पीड़न से सुरक्षा प्रदान करना
मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961	मातृत्व अवकाश, वेतन, और अन्य लाभ प्रदान करना

प्रमुख सरकारी योजनाएँ और उनके उद्देश्य

योजना का नाम	उद्देश्य
बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ	लिंगानुपात में सुधार और बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करना
प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना	महिलाओं को स्वच्छ ईंधन उपलब्ध कराना
सुकन्या समृद्धि योजना	बालिकाओं की शिक्षा और विवाह के लिए आर्थिक सुरक्षा

महिला अधिकारों के लिए चुनौतियाँ और संभावित समाधान

चुनौती	समाधान
सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाएँ	जागरूकता अभियानों और शिक्षा के माध्यम से सुधार
शिक्षा और स्वास्थ्य में असमानता	सरकारी नीतियों और योजनाओं के माध्यम से समान अवसर प्रदान करना
रोजगार में भेदभाव	कार्यस्थल पर लैंगिक समानता के लिए कानूनी प्रावधान और नीतियाँ बनाना
न्यायिक प्रणाली की कमजोरियाँ	न्यायिक प्रक्रियाओं को तेज और सुलभ बनाना
महिलाओं के खिलाफ हिंसा और अपराध	सख्त कानून और उनके प्रभावी कार्यान्वयन

अंतर्राष्ट्रीय समझौते और भारत की प्रतिबद्धताएँ

समझौता	भारत की प्रतिबद्धताएँ
CEDAW	महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करना
Beijing Platform for Action	महिलाओं के अधिकारों और समानता के लिए कार्य करना

महिला सशक्तीकरण के लिए सफल नीतियाँ और मॉडल

देश	**सफल नीतियाँ**
नॉर्वे	कार्यस्थल पर लैंगिक समानता और मातृत्व लाभ
स्वीडन	पितृत्व अवकाश और बाल देखभाल सेवाएँ
आइसलैंड	लैंगिक वेतन समानता कानून

निष्कर्ष

अध्ययन का सारांश

यह अध्ययन भारत में महिला अधिकारों और लैंगिक समानता के क्षेत्र में किए गए नीतिगत और कानूनी प्रयासों का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें संवैधानिक प्रावधान, प्रमुख कानून, और सरकारी योजनाओं का अध्ययन किया गया है।

प्रमुख निष्कर्ष

- भारत में महिला अधिकारों के लिए कई महत्वपूर्ण कानून और नीतियाँ बनाई गई हैं।
- सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाएँ महिलाओं की प्रगति में बड़ी चुनौती हैं।
- मौजूदा कानूनों का प्रभावी कार्यान्वयन आवश्यक है।

महिला अधिकार और लैंगिक समानता की दिशा में आगे का मार्ग

महिला अधिकारों और लैंगिक समानता के लिए निरंतर प्रयास और नीतिगत सुधार आवश्यक हैं। समाज की समग्र प्रगति के लिए महिलाओं की समानता और अधिकार सुनिश्चित करना अनिवार्य है।

संदर्भ :

1. भारतीय संविधान (Constitution of India)।
2. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार की रिपोर्ट्स (Reports of the Ministry of Women and Child Development, Government of India)।
3. राष्ट्रीय महिला आयोग की रिपोर्ट्स (Reports of the National Commission for Women)।
4. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (Hindu Marriage Act, 1955)।
5. दहेज निषेध अधिनियम, 1961 (Dowry Prohibition Act, 1961)।
6. घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 (Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005)।
7. यौन उत्पीड़न से कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम, 2013 (Sexual Harassment of

Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013)।
8. मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 (Maternity Benefit Act, 1961)।
9. 'भारत में महिला सशक्तीकरण : कानूनी और नीतिगत पहल', जे. शर्मा, 2018 (Empowerment of Women in India: Legal and Policy Initiatives, J. Sharma, 2018)।
10. 'लैंगिक समानता और भारतीय समाज', आर. गुप्ता, 2019 (Gender Equality and Indian Society, R. Gupta, 2019)।
11. संयुक्त राष्ट्र महिला अधिकार समझौता (Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women, CEDAW)।
12. 'भारत में महिला अधिकारों की स्थिति', पी. कौर, 2020 (Status of Women's Rights in India, P. Kaur, 2020)।
13. 'महिलाओं के खिलाफ हिंसा और कानूनी उपाय', एस. वर्मा, 2021 (Violence Against Women and Legal Remedies, S. Verma, 2021)।
14. 'नैतिकता और कानून : भारत में महिला अधिकार', डी. सिंह, 2017 (Morality and Law: Women's Rights in India, D. Singh, 2017)।

●●●

भारत में पंचायतीराज व्यवस्था के आलोक में डॉ. अम्बेडकर के वैचारिक दृष्टिकोण के वैचारिक दृष्िअकोण की समीक्षा

❍ विजय कुमार विश्वकर्मा[1]
❍ डॉ. रंजना श्रीवास्तव[2]

संक्षिप्ति :

पंचायती राज भारत में ग्रामीण क्षेत्रों के प्रशासनिक संगठन से संबंधित है। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण पंचायती व्यवस्था है जो स्थानीय स्तर पर प्रशासनिक निर्णय एवं शक्ति के विकेंद्रीकरण के सिद्धांत पर केंद्रित है। पंचायती राज व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में लोकतंत्र को स्थापित करना है, साथ ही साथ सामाजिक और आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना है। भारत में पंचायती राज व्यवस्था की आधारशिला पंचायतों को स्थानीय स्तर पर प्रशासनिक शक्ति और स्वायत्तता प्रदान करती है। इन पंचायतों के माध्यम से गाँवों के लोगों को स्वयं का विकास करने और संघर्ष करने का अधिकार मिलता है। पंचायती राज व्यवस्था के तहत, पंचायतों को विभिन्न विकास कार्यों को प्राथमिकता देने की शक्ति भी होती है, जैसे कि स्वच्छता, शिक्षा, स्वास्थ्य, और आर्थिक विकास। पंचायती राज व्यवस्था गाँव की स्थानीय विकास को बढ़ावा देती है, जिससे कि ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक और आर्थिक स्तर पर सुधार हो सके। डॉ. भीमराव अम्बेडकर भारतीय संविधान के मुख्य वास्तुकार थे जिन्होंने भारतीय समाज में समानता, न्याय, और समरसता के मूल्यों के लिए जीवन भर संघर्ष किया। डॉ. अम्बेडकर ने लोकतंत्र को भारतीय समाज के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप

---

1. शोधछात्र, अर्थशास्त्र विभाग, बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद (झारखण्ड)
2. विभागाध्यक्ष एवं सह प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची (झारखण्ड)

मानते थे। उनका मानना था कि लोकतंत्र एक सामाजिक न्यायमूलक और समरस माध्यम है जो सभी वर्गों के लोगों को विकास के लिए सामर्थ्य प्रदान करता है। डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में, लोकतंत्र केवल राजनीतिक प्रणाली ही नहीं बल्कि यह समाज में समानता, न्याय और स्वतंत्रता की एक प्रक्रिया है। उनका योगदान लोकतंत्रिक मूल्यों को स्थायी करने और भारतीय समाज में सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण रहा है। डॉ अम्बेडकर स्वयं इस बात पर विश्वास करते थे कि सही मायने में लोकतंत्र तभी सफल हो सकता है जब यह समाज के सबसे अंतिम कतार में खड़े लोगों तक इसका लाभ मिले ᐧ उक्त परिप्रेक्ष्य में यह आलेख डॉ अम्बेडकर के लोकतंत्र की सबसे छोटी किंतु भारतीय सन्दर्भ में सबसे प्रभावी शासन व्यवस्था के संदर्भ में डॉ अम्बेडकर के विचारों की एक समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

कुंजी शब्द : डॉ अम्बेडकर, पंचायती राज व्यवस्था, लोकतंत्र ।

संविधान के वास्तुकार, 20वीं सदी के श्रेष्ठ विचारक, समावेशी और समतामूलक समाज के हिमायती, सामाजिक न्याय के पुजारी, वंचित वर्गों के उद्धारक, ज्ञान के प्रतीक, कानूनविद, मानव अधिकार के जन्मदाता, बहुसर्जक लेखक, महान अर्थशास्त्री के रूप में प्रसिद्ध डॉक्टर भीमराव अंबेडकर एक महान व्यक्ति थे। समानता, सामाजिक न्याय और लोकतंत्र के सिद्धांतों में निहित उनका वैचारिक दृष्टिकोण भारत में पंचायती राज प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में विशेष रूप से प्रासंगिक व प्रभावशाली विचार है, जिनका मुख्य उद्देश्य मुख्य रूप से राजनैतिक शक्ति को जमीनी धरातल पर नैसर्गिक रूप से लाना है। अम्बेडकर जी का दृष्टिकोण आम जनता के बीच राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक शक्ति को लाना तथा विशेष रूप से समाज के वैसे वर्गों को जो वंचित वर्ग है सशक्त बनाने की आवश्यकता पर जोर देकर पंचायती राज प्रणाली के साथ जोड़कर देखा जा सकता है। सामाजिक समानता को बढ़ावा देना तथा जाति उन्मूलन व्यवस्था पर गहन कार्यात्मक सोच रखते थे, जो पंचायती राज के समावेशी उद्देश्यों से संबंधित है। इतना ही नहीं स्थानीय समुदायों की उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि के बावजूद सशक्त बनाने का प्रयास करता है। यह आलेख इस बात की जांच करता है कि कैसे अंबेडकर जी का वैचारिक ढांचा जो पंचायती राज के समावेशी उद्देश्यों से संबंधित की वर्तमान सन्दर्भ में क्या प्रासंगिकता है।

अम्बेडकर एवं पंचायती राज प्रणाली

पंचायती राज मुख्य रूप से भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश और नेपाल में एक दक्षिण एशियाई राजनीतिक व्यवस्था है। यह भारतीय उपमहाद्वीप में स्थानीय सरकार की सबसे पुरानी प्रणाली है। महात्मा गांधी का 'ग्राम स्वराज' का सपना और 'पॉवर टू पीपल' का आदर्श वाक्य सच्चे लोकतंत्र का सार है (अनंत, 2014)।[1] ग्राम स्वराज हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का सपना था। सत्ता का विकेंद्रीकरण लोकतंत्र की नींव है। उनके विचार में यह लोकतंत्र में आम आदमी के विश्वास को मजबूत करेगा (सिंह और कुमार, 2015)।[2] भारत में स्थानीय स्वशासन पर स्वतंत्रता के बाद का विमर्श दो विचारधाराओं के बीच घूमता है: एम.के. गांधी का 'ग्राम स्वराज' और गांवों की अंतर्निहित कमजोरियों पर डॉ. बी.आर. अंबेडकर का पूरी तरह से विरोधी दृष्टिकोण जो पंचायतों को संस्थाओं के रूप में उभरने में बाधा उत्पन्न करेगा (शर्मा, चक्रवर्ती, और चक्रवर्ती 2018)।[3] भारतीय संविधान के अनुच्छेद 243 से लेकर 243 ज तक पंचायती राज प्रणाली को लिखित संवैधानिक रूप दिया गया है। इन अनुच्छेदों के माध्यम से स्थानीय स्तर पर प्रशासन, संसाधनों का प्रबंधन और स्थानीय स्तर पर न्यायपालिका से संबंधित विभिन्न मुद्दों को शामिल किया गया है। पंचायती राज संस्थाओं को हमेशा सुशासन के साधन के रूप में माना गया है और 73वां संवैधानिक संशोधन इस उम्मीद में किया गया था कि इससे बेहतर शासन मिलेगा और अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं जैसे समाज के वंचित वर्ग को

राजनीतिक स्थान मिलेगा (कौल और साहनी, 2009)।[4] भारत का लंबा इतिहास और समृद्ध सांस्कृतिक परंपराएँ 'लोकतांत्रिक' संस्थाओं से शुरू हुई। छोटी बस्तियों के सामाजिक और राजनीतिक संगठन पर निर्मित होने के बावजूद, इन संस्थानों को जाति और लैंगिक असमानता के बावजूद सामाजिक और राजनीतिक नियंत्रण के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है(कौल और साहनी, 2009)।[5]

संविधान सभा के पंचायती राज व्यवथा विषयक बहस में समूचा विमर्श दो भागों में बंटा था, पहला - महात्मा गाँधी के ग्राम स्वराज केंद्रित विमर्श जो सत्ता के ग्रामीण स्तर तक विकेंद्रीकरण के प्रबल समर्थक थे एवं दूसरा डॉ अम्बेडकर की चिंता की गावों का कोई स्वतंत्र स्थिति के न होने के कारण कहीं ग्राम स्वराज की संकल्पना विभाजन कारी न हो जाय की चिंता (पाल, 2022)।[6] डॉ. अम्बेडकर का यह मानना था कि गांव तबाही की तरह हैं, इसलिए मुझे आश्चर्य होता है कि क्षेत्रवाद एवं साम्प्रदायिकता वाद का विरोध करते हैं गाँव के बड़े पैरोकार बनते हैं अज्ञानता, संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता के अलावा गांवों में क्या है(पाल, 2021)।[7] भारत में पंचायती राज पर डॉ. अम्बेडकर के विचार इसके कार्यान्वयन की व्यावहारिकता के संदर्भ में महात्मा गांधी जैसे अन्य नेताओं से भिन्न थे। उन्होंने 1932-33 के दौरान बंबई विधान परिषद की बहस में ग्राम पंचायत विधेयक पर विस्तार से अपनी राय व्यक्त की। हालाँकि, वह हस्तांतरण नीति से सहमत थे, लेकिन उन्होंने इस बात पर आपत्ति जताई कि विधेयक का उद्देश्य ग्राम पंचायतों को कैसे सशक्त बनाना है। भारतीय गाँवों में ग्राम पंचायतों की संरचना और कार्यावाही महात्मा गांधी और डॉ. अम्बेडकर के बीच में थोड़ा अंतर था। गांधीजी ने ग्रामीण समुदायों को स्वशासन और सामर्थ्य की दिशा में अधिक महत्व दिया, जबकि डॉ. अम्बेडकर ने इसे राष्ट्रवादी भावना के विकास के लिए बाधा माना। उन्होंने माना कि ग्राम पंचायतों ने स्थानीय विशिष्टता और सामर्थ्य को प्रोत्साहित किया, लेकिन इसके साथ ही यह राष्ट्रवादी भावना को कमजोर कर दिया। उनका विचार था कि ग्राम पंचायतों ने व्यापक नागरिक भावना को कमजोर किया और विभाजन को बढ़ाया (इंडियन लिबरल ,2021)।[8] डॉ. अम्बेडकर ने ग्राम पंचायत को स्वशासन के सिद्धांत के स्वीकार के लिए तैयार नहीं माना जब तक उन्हें यह लगता कि इसमें दलितों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए विशेष प्रावधान हैं। उन्होंने इस बात को जानने के लिए सवाल उठाए कि क्या ग्राम पंचायत कानूनी शिक्षा, निष्पक्षता, और स्वतंत्रता के मामले में पूरी तरह से पर्याप्त है। उन्हें लगा कि जब तक इसमें यह सुनिश्चित नहीं होता कि सभी नागरिकों को उनके अधिकारों की सुरक्षा मिल रही है, स्थानीय स्तर पर स्वशासन को स्वीकार करना संभव नहीं (इंडियन लिबरल ,2021)।[9]

हालाँकि, बाद में डॉ अम्बेडकर पंचायती राज व्यवस्था के दृष्टिकोण के संदर्भ में अपनी चिंताओं के साथ इसके समर्थन के लिए तैयार हो गए। भारतीय संविधान के निर्माण डॉ भीमराव अंबेडकर ने पंचायती राज प्रणाली को एक महत्वपूर्ण और संरचनात्मक तंत्र के रूप में मानते थे। उनका कहना था कि पंचायती राज प्रणाली न केवल लोकतंत्र के मूल तत्वों को बढ़ावा देगी बल्कि समाज के निर्माण और विकास में भी एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में प्रभावशाली होगी। डॉ अम्बेडकर कुछ चिंताओं के साथ इस प्रणाली को सामाजिक न्याय और समानता के उद्देश्यों के साथ जोड़ने को लेकर प्रतिबद्ध थे। उनका विचार था कि पंचायती राज प्रणाली न केवल स्थानीय स्तर पर शासन को एक अधिक लोकप्रिय बनाया जा सकता है बल्कि समाज के वंचित वर्गों को भी शासन की प्रक्रिया में शामिल किया जा सकता है। डॉक्टर अंबेडकर जी ने यह बताया कि पंचायती राज प्रणाली द्वारा स्थानीय स्तर पर लोकतंत्र को सशक्त बनाया जा सकता है जिससे समाज के सभी वर्गों को समानता और न्याय का अधिकार मिल सके। इतना ही नहीं पंचायती राज प्रणाली को समाज के विकास और सुधार तथा परिर्वतन

के लिए साधन के रूप में देखते थे।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समीक्षा :

वर्तमान भारत में पंचायती राज संस्थाएं (पीआरआई) एक साथ उल्लेखनीय सफलता और चौंका देने वाली विफलताओं दोनों विशेषताओं को एक साथ लिए हुए है, इसकी सफलता एवं असफलता इस बात पर निर्भर करता है कि इसका मूल्यांकन किस लक्ष्य के आधार पर किया जाता है। यदि लक्ष्य जमीनी स्तर पर सरकारी और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की एक और परत बनाना था, तो पंचायती राज संस्थाएं (पीआरआई) के समानांतर कोई नहीं है। और यदि लक्ष्य बेहतर प्रशासन प्रदान करना था, तो पंचायती राज संस्थाएं (पीआरआई) विफल हैं और निकट भविष्य में कभी भी सफल होने के लिए तैयार नहीं हैं (राजगोपालन, 2018)।[10] भारतीय संविधान में 73वें और 74वें संशोधन ने महिलाओं और एससी/एसटी उम्मीदवारों के लिए आरक्षण के साथ पूरे भारत में पंचायती राज संस्थानों (पीआरआई) और शहरी स्थानीय निकायों के निर्माण को अनिवार्य कर दिया। इन संस्थानों में वंचित समूहों, विशेषकर महिलाओं का महत्वपूर्ण प्रतिनिधित्व देखा गया है। विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि स्थानीय सरकारों में महिला प्रतिनिधित्व से महिलाओं के खिलाफ अपराधों की रिपोर्टिंग में सुधार होता है और उनसे संबंधित मुद्दों को प्राथमिकता दी जाती है। इसी तरह, एससी/एसटी प्रतिनिधि अपने समुदायों में सार्वजनिक वस्तुओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं (राजगोपालन, 2018)।[11] हालाँकि, प्रतिनिधित्व के बावजूद, पीआरआई को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। सबसे पहले, उनके पास अनिवार्य अधिकार और कार्यों का अभाव है, जिससे राज्य अधिकारियों से शक्तियों का न्यूनतम हस्तांतरण होता है। दूसरे, वित्तीय स्वायत्तता अनुपस्थित है, पीआरआई के पास अक्सर धन की कमी होती है, जिससे प्रभावी ढंग से शासन करने की उनकी क्षमता में बाधा आती है। वास्तविक राजकोषीय संघवाद, जिसमें पीआरआई के पास राजस्व बढ़ाने और बजट बाधाओं का सामना करने की शक्ति हो, उनकी सफलता के लिए आवश्यक है। कार्यात्मक अधिदेशों और वित्तीय स्वायत्तता के बिना, पीआरआई को उनके प्रतिनिधित्व के बावजूद अप्रभावी होने का जोखिम है (राजगोपालन, 2018)।[12] भारतीय संविधान के मुख्य रचनाकार डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने गाँवी निकायों के रूप में पंचायतों के संगठन के प्रति अपने विशेष दृष्टिकोण को व्यक्त किया। उनके अनुसार, गाँवी समाज में विभिन्न विकृतियाँ हैं जो पंचायतों को स्वायत्त सरकार के रूप में स्थापित करने को विरोधित करती हैं। उन्होंने ग्राम समाज की असमानता, अन्याय, और विविधता के विषय में अपनी चिंताओं को जताया और समय-समय पर उन्होंने इसे गाँवी समाज के आंतरिक रूप से उत्तरदायित्वपूर्ण चरित्र के कारणों के रूप में प्रस्तुत किया। डॉ. अम्बेडकर के विचारों में गाँव के आंतरिक दोषों के कारण उन्होंने पंचायतों को एक प्रभावी स्वायत्त संस्था के रूप में स्थापित करने की कठिनाई को देखा (राथेर ए. वाई. 2021)[13]

निष्कर्ष :

पंचायतों के संगठन के प्रति डॉ. भीमराव अम्बेडकर का दृष्टिकोण गांधी जी से भिन्न था। उन्होंने ग्रामीण समाज में व्याप्त विविधता, भेदभाव और सांप्रदायिकता को स्वीकार करने के महत्व पर जोर दिया। इन अंतर्निहित चुनौतियों के बावजूद, अम्बेडकर ने अंततः महिलाओं और समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्गों को सशक्त बनाने के लिए विशेष प्रावधानों की वकालत करते हुए, पंचायतों के समावेशी उद्देश्यों का समर्थन किया। पंचायती राज प्रणाली वास्तव में ग्रामीण स्तर पर सत्ता का विकेंद्रीकरण करने, स्थानीय शासन और निर्णय लेने की सुविधा प्रदान करने में सहायक रही है। हालाँकि, इसके सकारात्मक प्रभावों के बावजूद, कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। एक प्रमुख मुद्दा तुष्टिकरण की राजनीति का प्रचलन है, जहां समग्र समुदाय के कल्याण को प्राथमिकता देने के बजाय

कुछ समूहों को खुश करने के लिए निर्णय लिए जाते हैं। यह पंचायत प्रणाली की प्रभावशीलता और अखंडता को कमजोर करता है। इसके अतिरिक्त, कई गांवों में जागरूकता और साक्षरता की भारी कमी है, जिससे स्थानीय शासन प्रक्रियाओं में निवासियों की सक्रिय भागीदारी में बाधा आती है। निरक्षरता न केवल लोकतांत्रिक सिद्धांतों की समझ को सीमित करती है बल्कि नीतियों और पहलों के प्रभावी कार्यान्वयन में भी बाधा डालती है। इसके अलावा, प्रमुख राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप पंचायतों की स्वायत्तता और कामकाज के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती है। यह हस्तक्षेप अक्सर स्थानीय समुदाय की जरूरतों और हितों पर पार्टी के एजेंडे को प्राथमिकता देने की ओर ले जाता है। इस तरह का बाहरी प्रभाव जमीनी स्तर पर शासन के लोकतांत्रिक आदर्शों को कमजोर करता है और स्थानीय मुद्दों को संबोधित करने में पंचायतों की प्रभावशीलता को कमजोर करता है। ग्राम पंचायतों को सशक्त बनाने और इन चुनौतियों से निपटने के लिए कई कदम उठाए जा सकते हैं। सबसे पहले, ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता और साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए एक ठोस प्रयास करने की आवश्यकता है, जिससे निवासियों को स्थानीय शासन प्रक्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लेने और सूचित निर्णय लेने में सक्षम बनाया जा सके। पंचायत सदस्यों के कौशल और क्षमताओं को बढ़ाने और उन्हें अपनी भूमिकाओं को प्रभावी ढंग से पूरा करने के लिए सशक्त बनाने के लिए क्षमता निर्माण पहल और प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए। इसके अलावा, पंचायत मामलों में राजनीतिक हस्तक्षेप को रोकने के लिए सख्त नियम होने चाहिए, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि निर्णय पक्षपातपूर्ण हितों के बजाय स्थानीय समुदाय की जरूरतों और आकांक्षाओं के आधार पर किए जाएं। पंचायतों के भीतर जवाबदेही और पारदर्शिता के लिए तंत्र को मजबूत करने से नागरिकों के बीच विश्वास और विश्वास को बढ़ावा देने में भी मदद मिल सकती है।

संदर्भ :

1. अनंत पी.. (2014). पंचायती राज इन इंडिया. जर्नल ऑफ एजुकेशन सोशल पालिसी 1(1), पृ: 1-9.
2. सिंह, ए.के एवं कुमार एस. (2015). पंचायती राज इंस्टीटूशन एंड सचेंडुलेड कास्टस: अ क्रिटिकल इवैल्यूएशन. द सोशल आयन पृ: 33-39.
3. शर्मा, ए., एवं चक्रवर्ती, डी. (2018). इवोलुशन ऑफ द पंचायती राज इन इंडिया. इंटेग्रटिंग द थर्ड टियर इन थे इंडियन फेडरल सिस्टम: टू डिकेड ऑफ रूरल लोकल गवर्नेंस, पृ: 21-44.
4. कॉल, एस. एवं साहनी एस. (2009). स्टडी ऑन द पार्टिसिपेशन ऑफ वीमेन इन पंचायती राज इंस्टीटूशन. स्टडीज ऑन होम एंड कम्युनिटी साइंस 3(1), पृ: 29-38.
5. वही, पृ: 29-38.
6. पाल, एम. (2022). संविधान सभा की बहस में पंचायतों के बारे में क्या थी डॉ अम्बेडकर की राय, रूरल वोईस, https://www.ruralvoice.in/opinion/dr-br-ambedkar-dalits-and-panchayats-sidelights.से 20 जनवरी 2022 को प्राप्त।
7. वही, पृ: 29-38.
8. इंडियन लिबरल (2021). ग्राम पंचायतों पर डॉ. बीआर अंबेडकर, https://indianliberals-in/content/dr-br-ambedkar-on-village-panchayats.
9. वही,
10. राजगोपालन स. (2018). ईवलुएटिंग द पंचायती राज इंस्टीटूशन्स एट 25. लाइव मिंट, https://www.livemint.com/Opinion/SvD5HQO5ñTajYrqFj2zy9L/Evaluating-the-panchayati-raj, से 20

जनवरी 2020 को प्राप्त।
11. वही,
12. वही,
13. राथेर ए. वाई. (2021). द ओपिनियन ऑफ डॉ बर आंबेडकर ऑन विलेज पंचायत्स. जर्नल ऑफ इमेज प्रोसेसिंग एंड इंटेलीजेंट रिमोट सेंसिंग 1(02), पृ: 8-15.

●●●

भूमि उपयोग में परिवर्तन का पर्यावरण पर प्रभाव : एक भौगोलिक अध्ययन

- पुरुषोत्तम कुमार[1]
- डॉ. बिरेन्द्र कुमार सिंह[2]

संक्षिप्ति :

भूमि एक आधारभूत संसाधन है जिस पर सभी मानवीय गतिविधियाँ संचालित होती हैं और इस संचालन के लिए आवश्यक सामग्रियों का स्रोत भी भूमि है। भूमि संसाधन का मानवीय उपयोग 'भूमि उपयोग' को जन्म देता है जो इसके उद्देश्यों के अनुसार भिन्न होता है, चाहे वे खाद्य उत्पादन, आश्रय का प्रावधान, मनोरंजन, सामग्री का निष्कर्षण और प्रसंस्करण आदि हों। भूमि उपयोग दो व्यापक शक्तियों के प्रभाव में आकार लेता है- मानवीय आवश्यकताएँ और पर्यावरणीय विशेषताएँ और प्रक्रियाएँ। इनमें से कोई भी शक्ति स्थिर नहीं रहती; वे निरंतर प्रवाह की स्थिति में हैं क्योंकि परिवर्तन जीवन का सार है। विभिन्न स्थानिक स्तरों पर और विभिन्न समय अवधियों में होने वाले भूमि के उपयोग में परिवर्तन, पर्यावरणीय और मानवीय गतिशीलता और उनकी अंत:क्रियाओं की भौतिक अभिव्यक्तियाँ हैं। इन परिवर्तनों के कभी-कभी लाभकारी, कभी-कभी हानिकारक प्रभाव दिखलाई पड़ते हैं। भूगोल में हमेशा से भूमि उपयोग का अध्ययन एक केंद्रीय विषय रहा है। यह आलेख भूमि उपयोग में परिवर्तन का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का एक अनुभवात्मक अंतर्दृष्टि रखने का प्रयास करता है।

कुंजी शब्द : भूमि उपयोग, पर्यावरण, भूगोल

मानव ने अपने जीवन के आरम्भ से लेकर आज तक उल्लेखनीय प्रगति की है। जंगलों एवं कंदराओं में रहने वाले मानव जाति ने अपने परिवेश से लगातार अंत:क्रिया करके भूमि पर स्थायी निवास एवं मानव बसाव

---

1. *शोधछात्र, भूगोल विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार)*
2. *सह प्राध्यापक, भूगोल विभाग, किशोरी सिन्हा महिला कॉलेज, ओरंगाबाद (बिहार)*

के तरीकों एवं इसके लिए संसाधनों के प्रयोग को सीखा और अपने जीवन के स्थायीकरण को लगातार मजबूत करता गया (कुमार, 2019)[1]। बाद के वर्षों में मानव आविष्कारों एवं विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति ने उसे प्रकृति के ऊपर निर्भरता की आवश्यकता से मुक्त कर दिया और मानव जाति ने अपने हिसाब से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन प्रारंभ किया जिसमे भूमि सबसे महत्वपूर्ण थी(कुमार, 2019)[2]। लगातार जनसंख्या में वृद्धि, नगरीकरण, औद्योगीकरण आदि ने बाद के वर्षों में भूमि पर दबाव को बढ़ा दिया जिसकी परिणति यह हुई की मानव एवं पर्यावरण के बीच के संबंधो में अभूतपूर्व गिरावट देखी गई और आज हम कई पर्यावरणीय समस्याओं से घिरे पड़े जैसे- जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण अवनयन, जल संकट आदि।

शोध का उद्देश्य एवं प्रविधि :

इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य भूमि उपयोग परिवर्तन के विभिन्न पक्षों को समझना एवं भूमि उपयोग परिवर्तन का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की समीक्षा करना है। वास्तव में यह एक अनुभवात्मक अध्ययन है जिसमें मुख्य रूप से द्वितीयक आंकड़ों एवं सूचनाओं का उपयोग समस्या की विश्लेषण के लिए किया गया है।

सम्बंधित साहित्य की समीक्षा

यह साहित्य समीक्षा विभिन्न भू-उपयोग और भूमि उपयोग परिवर्तन के अध्ययन पर केंद्रित है। इन अध्ययनों ने भूमि उपयोग में वैश्विक और स्थानीय स्तर पर होने वाले परिवर्तनों, उनके कारणों, और पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों को उजागर किया है। रिमोट सेंसिंग, जीआईएस, और मॉडलिंग जैसी तकनीकों का उपयोग कर, ये शोध विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में भूमि उपयोग के प्रभाव का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं, जो भूमि प्रबंधन और पर्यावरण संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण है। भूमि उपयोग एवं इसमें परिवर्तन जनित पर्यावरणीय प्रभावों के अध्ययन कई भूगोलवेताओं ने किया है।

1. मेफ्रोइड्ट, लैम्बिन, एर्ब, और हर्टेल (2013) ने भूमि उपयोग के वैश्वीकरण पर अध्ययन किया, जिसमें दूरस्थ चालकों और भूमि उपयोग में भौगोलिक विस्थापन के प्रभाव का विश्लेषण किया गया। यह अध्ययन वैश्विक व्यापार और पर्यावरणीय स्थिरता के बीच जटिल संबंधों को उजागर करता है, जिससे पता चलता है कि कैसे भूमि उपयोग में बदलाव जलवायु और पारिस्थितिकीय प्रक्रियाओं को प्रभावित कर सकता है।

2. झियुलन और यूहाई (1999) का अध्ययन भूमि उपयोग में गतिशील परिवर्तनों की अनुसंधान विधियों पर केंद्रित है। इस अध्ययन में भूमि उपयोग परिवर्तन का अध्ययन करने के लिए विभिन्न तरीकों और तकनीकों की समीक्षा की गई है, जो भूगोल में प्रगति के लिए महत्वपूर्ण योगदान देता है और भूमि प्रबंधन के लिए नई दिशाएँ सुझाता है।

3. लेह, बजवा, और चौबे (2013) ने भूमि उपयोग परिवर्तन और मृदा अपरदन के जोखिम के बीच संबंध का अध्ययन किया। उन्होंने रिमोट सेंसिंग, जीआईएस, और मॉडलिंग को एकीकृत करके यह प्रदर्शित किया कि भूमि उपयोग में परिवर्तन से अपरदन जोखिम कैसे बढ़ता है, जो भूमि प्रबंधन और संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रदान करता है।

4. पौलेट, एननोस, और गोल्डिंग (2005) ने शहरी भूमि उपयोग और भूमि कवर परिवर्तन के पर्यावरणीय प्रभावों का मॉडलिंग किया। यह अध्ययन मर्सीसाइड, यूके में किया गया, जिसमें शहरीकरण के परिणामस्वरूप पर्यावरणीय चुनौतियों और उनके प्रबंधन के लिए आवश्यक रणनीतियों को उजागर किया गया।

5. झोउ और वांग (2011) ने भूमि उपयोग/कवर परिवर्तन के परिणामस्वरूप भूमि सतह के तापमान की

गतिशीलता का विश्लेषण किया। उनका अध्ययन दर्शाता है कि शहरीकरण और भूमि उपयोग में बदलाव से स्थानीय जलवायु पैटर्न में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो सकते हैं, विशेषकर तापमान में वृद्धि के संदर्भ में।

6. लियू, ली, झू, झोउ, यान, और शू (2020) ने तिब्बती पठार के पूर्वोत्तर में भूमि उपयोग/कवर परिवर्तनों और उनके चालकों का अध्ययन किया। उन्होंने जियोग्राफिकल डिटेक्टर्स और गूगल अर्थ इंजन का उपयोग करते हुए गन्नन प्रीफेक्चर में भूमि उपयोग में बदलावों के प्रभाव का विश्लेषण किया, जिससे स्थानीय पर्यावरणीय प्रबंधन के लिए महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि मिली।

7. बाजोको, डी एंजेलिस, पेरिनी, फेरारा, और साल्वाटी (2012) ने भूमि उपयोग/कवर परिवर्तन के कारण भूमि क्षरण की गतिशीलता पर अध्ययन किया। उन्होंने मेडिटेरेनियन क्षेत्र में भूमि क्षरण की प्रक्रियाओं को समझने के लिए इन परिवर्तनों के प्रभाव का विश्लेषण किया, जो पर्यावरणीय प्रबंधन और संरक्षण रणनीतियों के विकास के लिए उपयोगी है।

8. रहमान, कुमार, फजल, और सिद्दीकी (2012) ने दिल्ली के उत्तर-पश्चिम जिले में भूमि उपयोग/कवर परिवर्तन का आकलन किया। उन्होंने रिमोट सेंसिंग और जीआईएस तकनीकों का उपयोग करके इस क्षेत्र में भूमि उपयोग में परिवर्तन और उनके प्रभावों का अध्ययन किया, जिससे शहरी नियोजन और विकास के लिए महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई।

9. रावत, बिस्वास, और कुमार (2013) ने नैनीताल जिले के रामनगर क्षेत्र में भू-स्थानिक तकनीकों का उपयोग करके भूमि उपयोग/कवर में परिवर्तनों का अध्ययन किया। इस अध्ययन में भूमि उपयोग में बदलावों के पैटर्न और उनके पर्यावरणीय प्रभावों की पहचान की गई, जो स्थानीय भूमि प्रबंधन के लिए महत्वपूर्ण है।

10. वानी और खैरकर (2011) ने श्रीनगर शहर, जम्मू और कश्मीर में जीआईएस का उपयोग करके भूमि उपयोग और भूमि कवर परिवर्तन का मात्रात्मक आकलन किया। उनका अध्ययन शहरी विकास और पर्यावरणीय प्रभावों के बीच संबंध को समझने में सहायक है, जो शहरी योजना के लिए आवश्यक जानकारी प्रदान करता है।

इन सभी अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि भूमि उपयोग में परिवर्तन पर्यावरण पर गहरा प्रभाव डालता है, जिससे भूमि क्षरण, मृदा अपरदन, और स्थानीय जलवायु में बदलाव जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। इन परिवर्तनों की निगरानी और विश्लेषण के लिए तकनीकी उपकरणों का उपयोग आवश्यक है। यह भी स्पष्ट होता है कि सतत विकास और पर्यावरणीय स्थिरता के लिए प्रभावी भूमि प्रबंधन और नियोजन की आवश्यकता है।

भूमि उपयोग में परिवर्तन का पर्यावरण पर प्रभाव :

भूमि उपयोग में परिवर्तन, जैसे शहरीकरण, वनों की कटाई और कृषि विस्तार, पर्यावरण पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। इन परिवर्तनों से मृदा अपरदन, जलवायु परिवर्तन, जल संसाधनों की कमी, जैव विविधता का नुकसान, और जल गुणवत्ता में गिरावट जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं, जो पारिस्थितिकी तंत्र और मानव जीवन को प्रभावित करती हैं।

1. मृदा अपरदन : भूमि उपयोग में परिवर्तन, विशेष रूप से वनों की कटाई और कृषि विस्तार के कारण, मृदा अपरदन की समस्या को बढ़ा सकता है। वनस्पति की कमी के कारण मृदा की स्थिरता घटती है, जिससे पानी और हवा के द्वारा मिट्टी का अपरदन होता है। इससे कृषि भूमि की उत्पादकता में कमी आ सकती है।

2. जलवायु परिवर्तन: भूमि उपयोग में परिवर्तन, जैसे शहरीकरण और औद्योगीकरण, ग्रीनहाउस गैसों के

उत्सर्जन में वृद्धि करते हैं। ये गैसें वायुमंडल में गर्मी को फँसाती हैं, जिससे वैश्विक तापमान बढ़ता है और जलवायु परिवर्तन की प्रक्रिया तेज होती है, जिससे मौसम पैटर्न में अस्थिरता आती है।

3. जल संसाधनों पर प्रभाव: भूमि उपयोग में परिवर्तन से जलधाराओं और भूजल पुनर्भरण में कमी हो सकती है। कृषि और शहरीकरण के कारण जल निकासी पैटर्न में बदलाव आता है, जिससे जल संसाधनों की उपलब्धता प्रभावित होती है। इससे जल संकट और सूखे जैसी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं।

4. जैव विविधता का नुकसान: भूमि उपयोग में परिवर्तन के कारण प्राकृतिक आवासों का विनाश होता है, जिससे वन्यजीवों की प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर आ जाती हैं। वन, आर्द्रभूमि, और घासभूमि जैसी प्राकृतिक पारिस्थितिकियाँ नष्ट हो जाती हैं, जिससे जैव विविधता को गंभीर खतरा उत्पन्न होता है।

5. कार्बन संचयन में कमी: वनों की कटाई और भूमि उपयोग में परिवर्तन से कार्बन संचयन की क्षमता कम हो जाती है। वनस्पति और मिट्टी द्वारा संग्रहीत कार्बन वायुमंडल में लौटता है, जिससे ग्रीनहाउस प्रभाव बढ़ता है और जलवायु परिवर्तन को और अधिक गंभीर बना देता है।

6. शहरी गर्मी द्वीप प्रभाव: शहरीकरण के कारण भूमि उपयोग में बदलाव से 'शहरी गर्मी द्वीप' प्रभाव उत्पन्न होता है, जहाँ शहरी क्षेत्रों का तापमान आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अधिक हो जाता है। यह प्रभाव इमारतों, सड़कों, और अन्य मानव निर्मित संरचनाओं द्वारा गर्मी को अवशोषित करने के कारण होता है।

7. जल गुणवत्ता में गिरावट: भूमि उपयोग में परिवर्तन से जल की गुणवत्ता प्रभावित होती है। कृषि और शहरीकरण से जलाशयों में पोषक तत्वों, कीटनाशकों, और अन्य प्रदूषकों का बहाव बढ़ जाता है, जिससे नदियों, झीलों, और अन्य जल निकायों में जल गुणवत्ता की गिरावट होती है और जलीय पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित होते हैं।

8. खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव: भूमि उपयोग में परिवर्तन, विशेष रूप से कृषि भूमि की कमी, खाद्य उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। शहरीकरण और औद्योगिक विकास के कारण उपजाऊ कृषि भूमि का नुकसान होता है, जिससे खाद्य सुरक्षा के लिए जोखिम बढ़ता है, विशेष रूप से विकासशील देशों में।

9. बाढ़ का खतरा: भूमि उपयोग में परिवर्तन, जैसे वनों की कटाई और शहरीकरण, बाढ़ के जोखिम को बढ़ा सकता है। वनस्पति की कमी और जल निकासी में बाधा के कारण बारिश का पानी तेजी से बहता है, जिससे बाढ़ की आवृत्ति और तीव्रता में वृद्धि होती है और निचले इलाकों में रहने वाले लोगों के लिए खतरा बढ़ता है।

10. पर्यावरणीय सेवाओं का ह्रास: प्राकृतिक भूमि उपयोग में परिवर्तन के कारण पारिस्थितिक तंत्र की सेवाओं का ह्रास होता है, जैसे कि जल शोधन, वायु शोधन, और परागण। ये सेवाएं मानव जीवन के लिए आवश्यक हैं, और उनके ह्रास से जीवन की गुणवत्ता में गिरावट आती है और दीर्घकालिक पर्यावरणीय स्थिरता खतरे में पड़ जाती है।

भूमि उपयोग परिवर्तन के सकारात्मक प्रभाव भी होते हैं, जो पर्यावरणीय स्थिरता और मानव जीवन को लाभ पहुंचा सकते हैं। शहरीकरण और औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप आधुनिक इंफ्रास्ट्रक्चर और तकनीकी नवाचारों का विकास होता है, जो जल प्रबंधन, ऊर्जा दक्षता, और अपशिष्ट प्रबंधन में सुधार करता है। वृक्षारोपण और हरित क्षेत्रों के विकास से शहरी वातावरण में हरियाली बढ़ती है, जो हवा की गुणवत्ता में सुधार और शहरी गर्मी द्वीप प्रभाव को कम करती है। कृषि में सुधार, जैसे सतत कृषि पद्धतियाँ और अत्याधुनिक सिंचाई तकनीकें, मिट्टी की गुणवत्ता को बनाए रखते हुए फसल उत्पादन को बढ़ा सकती हैं। पुनर्निर्माण और पुन: उपयोग की

प्रवृत्तियाँ, जैसे रीसाइक्लिंग और ग्रीन बिल्डिंग, संसाधनों की बचत और अपशिष्ट कम करने में सहायक होती हैं। इसके अलावा, संरक्षण और इको-टूरिज्म जैसी गतिविधियाँ प्राकृतिक संसाधनों की देखभाल करती हैं और स्थानीय पारिस्थितिक तंत्र को प्रोत्साहित करती हैं। कुल मिलाकर, भूमि उपयोग परिवर्तन सतत विकास की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है, यदि सही तरीके से प्रबंधित किया जाए।

भूमि उपयोग परिवर्तन के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव के रोकने हेतु सुझाव :

भूमि उपयोग परिवर्तन के पर्यावरणीय प्रभावों को रोकने के लिए सतत भूमि प्रबंधन और योजना की आवश्यकता है। सबसे पहले, जमीनी उपयोग के लिए प्रभावी नियामक ढाँचे और नीतियों को लागू करना आवश्यक है, जैसे कि संरक्षण जोन की पहचान और भूमि उपयोग के लिए विशेष प्राधिकरण की आवश्यकता। शहरीकरण और औद्योगिकीकरण की योजनाओं में हरी पट्टियों, पार्कों और इकोलॉजिकल क्यूशन्स को शामिल करने से शहरी गर्मी द्वीप प्रभाव को कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, भूमि उपयोग परिवर्तन से पहले पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (EIA) करना आवश्यक है, जिससे संभावित समस्याओं की पहचान और समाधान सुझाए जा सकें। मृदा संरक्षण तकनीकों का उपयोग, जैसे कि कंटूर प्लॉटिंग और कवर क्रॉप्स, मृदा अपरदन को कम करने में सहायक होते हैं।

सतत कृषि प्रथाओं और वृक्षारोपण कार्यक्रमों को अपनाना भी महत्वपूर्ण है। कृषि में, उन्नत सिंचाई तकनीकें, जैविक उर्वरक, और फसल रोटेशन से मिट्टी की गुणवत्ता और उत्पादकता को बनाए रखा जा सकता है। इसके अलावा, वनों की कटाई को नियंत्रित करने के लिए वनों की बहाली और संवर्धन कार्यक्रमों को लागू करना आवश्यक है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में पानी की पुनः उपयोग और रीसाइक्लिंग प्रणालियों को अपनाने से जल संसाधनों का कुशल प्रबंधन संभव होता है। सार्वजनिक जागरूकता और शिक्षा कार्यक्रमों के माध्यम से भूमि उपयोग के स्थायी तरीकों और पर्यावरणीय संरक्षण के महत्व को बढ़ावा देना भी आवश्यक है। इन उपायों को सही तरीके से लागू करने से भूमि उपयोग परिवर्तन के पर्यावरणीय प्रभावों को प्रभावी ढंग से रोका जा सकता है।

निष्कर्ष :

भूमि उपयोग परिवर्तन के पर्यावरणीय प्रभावों को प्रभावी ढंग से रोकने के लिए सतत प्रबंधन और नियामक ढाँचे का पालन करना आवश्यक है। पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (EIA) के माध्यम से संभावित समस्याओं की पहचान और समाधान की योजना बनानी चाहिए। शहरीकरण और औद्योगिकीकरण में हरित पट्टियों और पार्कों को शामिल करने से शहरी गर्मी द्वीप प्रभाव को कम किया जा सकता है। सतत कृषि प्रथाएँ, जैसे उन्नत सिंचाई तकनीकें और जैविक उर्वरक, मृदा संरक्षण में मददगार हैं। वनों की कटाई को नियंत्रित करने के लिए वृक्षारोपण और वनों की बहाली के कार्यक्रम आवश्यक हैं। जल संसाधनों के पुनः उपयोग और रीसाइक्लिंग प्रणालियाँ जल संकट को कम कर सकती हैं। इसके अलावा, सार्वजनिक जागरूकता और शिक्षा कार्यक्रमों के माध्यम से स्थायी भूमि उपयोग के महत्व को बढ़ावा देना चाहिए। इन उपायों को लागू करने से भूमि उपयोग परिवर्तन के पर्यावरणीय प्रभावों को नियंत्रित किया जा सकता है।

संदर्भ :

1. मेफ्रोइड्ट, पी., लैम्बिन, ई. एफ., एर्ब, के. एच., और हर्टेल, टी. डब्ल्यू. (2013). ग्लोबलाइजेशन ऑफ लैंड यूज: डिस्टेंट ड्राइवर्स ऑफ लैंड चेंज एंड जियोग्राफिक डिस्प्लेसमेंट ऑफ लैंड यूज. करंट ओपिनियन इन

एनवायरनमेंटल सस्टेनेबिलिटी, 5(5), 438-444.

2. झियुलन, डब्ल्यू., और यूहाई, बी. (1999). स्टडी ऑन द मेथड्स ऑफ लैंड यूज डायनामिक चेंज रिसर्च. प्रोग्रेस इन जियोग्राफी, 18(1), 81-87.
3. लेह, एम., बजवा, एस., और चौबे, आई. (2013). इम्पैक्ट ऑफ लैंड यूज चेंज ऑन इरोशन रिस्क: एन इंटीग्रेटेड रिमोट सेंसिंग, जियोग्राफिक इंफार्मेशन सिस्टम एंड मॉडलिंग मेथडोलॉजी. लैंड डिग्रेडेशन एंड डेवलपमेंट, 24(5), 409-421.
4. पौलेट, एस., एननोस, आर., और गोल्डिंग, वाई. (2005). मॉडलिंग द एनवायरनमेंटल इम्पैक्ट्स ऑफ अर्बन लैंड यूज एंड लैंड कवर चेंज - ए स्टडी इन मर्सीसाइड, यूके. लैंडस्केप एंड अर्बन प्लानिंग, 71(2-4), 295-310.
5. झोउ, एक्स., और वांग, वाई. सी. (2011). डायनामिक्स ऑफ लैंड सरफेस टेम्परेचर इन रिस्पांस टू लैंड-यूज/कवर चेंज. जियोग्राफिकल रिसर्च, 49(1), 23-36.
6. लियू, सी., ली, डब्ल्यू., झू, जी., झोउ, एच., यान, एच., और शू, पी. (2020). लैंड यूज/लैंड कवर चेंजेज एंड देयर ड्राइविंग फैक्टर्स इन द नॉर्थईस्टर्न तिबेतन प्लेटो बेस्ड ऑन जियोग्राफिकल डिटेक्टर्स एंड गूगल अर्थ इंजन: ए केस स्टडी इन गन्नन प्रीफेक्चर. रिमोट सेंसिंग, 12(19), 3139.
7. बाजोको, एस., डी एंजेलिस, ए., पेरिनी, एल., फेरारा, ए., और साल्वाटी, एल. (2012). द इम्पैक्ट ऑफ लैंड यूज/लैंड कवर चेंजेज ऑन लैंड डिग्रेडेशन डायनामिक्स: ए मेडिटेरेनियन केस स्टडी. एनवायरनमेंटल मैनेजमेंट, 49, 980-989.
8. रहमान, ए., कुमार, एस., फजल, एस., और सिद्दीकी, एम. ए. (2012). एस्सेस्मेंट ऑफ लैंड यूज/लैंड कवर चेंज इन द नॉर्थ-वेस्ट डिस्ट्रिक्ट ऑफ दिल्ली यूजिंग रिमोट सेंसिंग एंड जीआईएस टेक्निक्स. जर्नल ऑफ द इंडियन सोसाइटी ऑफ रिमोट सेंसिंग, 40, 689-697.
9. रावत, जे. एस., बिस्वास, वी., और कुमार, एम. (2013). चेंजेज इन लैंड यूज/कवर यूजिंग जियोस्पेशल टेक्निक्स: ए केस स्टडी ऑफ रामनगर टाउन एरिया, डिस्ट्रिक्ट नैनीताल, उत्तराखंड, इंडिया. द इजिप्शियन जर्नल ऑफ रिमोट सेंसिंग एंड स्पेस साइंस, 16(1), 111-117.
10. वानी, आर. ए., और खैरकर, वी. पी. (2011). क्वांटिफाइंग लैंड यूज एंड लैंड कवर चेंज यूजिंग जियोग्राफिक इंफार्मेशन सिस्टम: ए केस स्टडी ऑफ श्रीनगर सिटी, जम्मू एंड कश्मीर, इंडिया. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ जियोमैटिक्स एंड जियोसाइंसेज, 2(1), 110-120.

●●●

भारत में जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव : एक अध्ययन

❍ पूर्णिमा कुमारी[1]
❍ डॉ. मुनमुन शरण[2]

संक्षिप्ति :

जलवायु परिवर्तन एक वैश्विक समस्या है जो दुनिया भर में पर्यावरणीय असंतुलन पैदा कर रही है। यह समस्या भारत जैसे कृषि प्रधान देशों के लिए विशेष रूप से गंभीर है। भारत की लगभग 58 प्रतिशत जनसंख्या सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है, और 70 प्रतिशत से अधिक भारतीयों की आजीविका कृषि गतिविधियों पर आधारित है। भारत की कृषि भूमि का आधे से अधिक हिस्सा मानसून पर निर्भर करता है। मानसून की अनियमितता और चरम स्थितियाँ कृषि उत्पादन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रही हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण मानसून के पैटर्न में महत्वपूर्ण बदलाव आ रहे हैं, जैसे कि वर्षा की असमान वितरण और समय में बदलाव। इससे फसल की बुवाई और कटाई के समय में असंगतता पैदा हो रही है, जो कृषि उत्पादकता को प्रभावित कर रही है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन के कारण मृदा क्षरण में वृद्धि हो रही है। मिट्टी की गुणवत्ता में कमी और उसकी उर्वरता में गिरावट हो रही है, जिससे फसल की वृद्धि और उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। शस्य गहनता, यानी भूमि पर फसलों की विविधता और गहराई में भी बदलाव आ रहा है। ये बदलाव कृषि उत्पादन की स्थिरता और खाद्य सुरक्षा को प्रभावित कर रहे हैं। यह शोधपत्र द्वितीयक आंकड़ों और सम्बंधित साहित्य के गहन अवलोकन पर आधारित है। इसका उद्देश्य जलवायु परिवर्तन के कृषि पर प्रभावों का विश्लेषण करना है और यह समझना है कि इन प्रभावों से निपटने के लिए कौन-कौन से उपाय किए जा सकते हैं। इसके माध्यम से नीति निर्माताओं और कृषि विशेषज्ञों को प्रभावी रणनीतियाँ विकसित करने में मदद मिलेगी, ताकि कृषि क्षेत्र की चुनौतियों का सामना किया जा सके और किसानों को समर्थन प्रदान किया जा सके।

---

1. शोधछात्रा, स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग, बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद
2. सहायक प्राध्यापक, स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग, बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद

बीज शब्द : जलवायु परिवर्तन, कृषि, ग्लोबल वार्मिंग, भारतीय मानसून

प्रकृति और मानव के बीच संबंधों में महत्वपूर्ण बदलाव आया है, जो मुख्यत: बढ़ती जनसंख्या, नगरीकरण, और उद्योगों के विकास के कारण है। हम वैश्विक जलवायु परिवर्तन के दौर में जी रहे हैं, जिसमें वायुमंडल में तापमान, वर्षा, वायु, आद्रता, और वायुदाब की स्थितियों में बदलाव आया है (कुमार, 2019)।[1] ये बदलाव पूरी तरह से मानव जनित हैं और इसके व्यापक नकारात्मक प्रभाव मानव के स्वास्थ्य और अस्तित्व पर पड़ रहे हैं। विशेष रूप से, कृषि क्षेत्र जलवायु परिवर्तन के दबाव से अत्यधिक प्रभावित हो रहा है। भारत, एक कृषि प्रधान देश, जहाँ की अधिकांश जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से विशेष रूप से प्रभावित है। ग्लोबल वार्मिंग और अन्य पर्यावरणीय परिवर्तनों के कारण मौसम के पैटर्न और प्राकृतिक संसाधनों में असंतुलन पैदा हो गया है। भारत में, ये प्रभाव फसल की पैदावार, मिट्टी की गुणवत्ता, और जल स्रोतों की उपलब्धता को प्रभावित कर रहे हैं। भारत की विविध जलवायु क्षेत्रों और विभिन्न प्रकार की फसलों के कारण जलवायु परिवर्तन के प्रभाव भी भिन्न-भिन्न हैं। अत्यधिक वर्षा, सूखा, और असामान्य तापमान वृद्धि जैसे मौसम की चरम स्थितियाँ कृषि उत्पादन को सीधे प्रभावित कर रही हैं। तटीय क्षेत्रों में समुद्र स्तर की वृद्धि और ग्लेशियरों के पिघलने से भी कृषि पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। इस अध्ययन का उद्देश्य भारत में जलवायु परिवर्तन के कृषि पर प्रभावों का विश्लेषण करना है। इसमें विभिन्न क्षेत्रों में कृषि पर पड़ने वाले असर, फसल उत्पादन में बदलाव, और जलवायु अनुकूलन के उपायों पर चर्चा की जाएगी। इसके माध्यम से यह समझने की कोशिश की जाएगी कि जलवायु परिवर्तन के मौजूदा और संभावित प्रभावों से निपटने के लिए कौन-कौन से उपाय किए जा सकते हैं और किस प्रकार की नीतियाँ और प्रौद्योगिकियाँ किसानों की सहायता कर सकती हैं।

जलवायु परिवर्तन की अवधारणा एवं कारण :

संयुक्त राष्ट्र क्लाइमेट एक्शन के अनुसार, जलवायु परिवर्तन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें पृथ्वी के वायुमंडल और जलवायु प्रणालियों में दीर्घकालिक बदलाव होते हैं। यह परिवर्तन प्राकृतिक या मानवजनित कारणों से हो सकता है, लेकिन वर्तमान समय में मानवजनित कारणों, विशेष रूप से ग्रीनहाउस गैसों की अत्यधिक उत्सर्जन, ने इसे एक गंभीर वैश्विक संकट बना दिया है। अपने विविध अध्ययनों में जलवायु वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि पिछले 200 वर्षों में वैश्विक गर्मी के लिए मानव गतिविधियाँ जिम्मेदार हैं (आईपीसीसी, 2021)।[2] क्रॉली(2000)[3] ने अपने एक अध्ययन में बताया है कि हाल की पुनर्निर्मित उत्तरी गोलार्ध की तापमान और जलवायु बलों से पता चलता है कि 20वीं सदी की गर्मी ऐतिहासिक संदर्भ में महत्वपूर्ण है। 1850 से पहले की तापमान विविधताओं में 41-64% सूर्य की किरणों और ज्वालामुखीय गतिविधियों के कारण थी। ग्रीनहाउस गैसों के प्रभाव से 20वीं सदी की गर्मी के अनुमान प्राकृतिक विविधता से ऊपर है। 21वीं सदी का तापमान पूर्ववर्ती 1000 वर्षों की प्राकृतिक विविधता से काफी अधिक होगा।

अध्ययन बताते हैं कि पृथ्वी के वायुमंडल का औसत तापमान अब 1.2°C अधिक है, और पिछला दशक सबसे गर्म रहा। जलवायु परिवर्तन केवल तापमान वृद्धि नहीं है; इसके परिणामस्वरूप सूखा, पानी की कमी, गंभीर आग, समुद्र स्तर में वृद्धि, बर्फ का पिघलना, बाढ़, और जैव विविधता में कमी जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण है ग्रीनहाउस गैसों का बढ़ता स्तर, जैसे कि कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), मीथेन (CH_4), और नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O)। ये गैसें वायुमंडल में एक परत का निर्माण करती हैं, जो पृथ्वी से निकलने वाली गर्मी को अवशोषित करती हैं और उसे वापस वायुमंडल में फंसाती हैं। इस

प्रक्रिया को ग्रीनहाउस प्रभाव कहा जाता है, जो ग्लोबल वार्मिंग का कारण बनता है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव विविध और व्यापक होते हैं। इनमें वैश्विक तापमान में वृद्धि, समुद्र स्तर की बढ़ोतरी, और मौसम की चरम स्थितियाँ शामिल हैं। अत्यधिक गर्मी, सूखा, बाढ़, और अनियमित मानसून जैसी चरम मौसम की स्थितियाँ सामान्य होती जा रही हैं। इसके अतिरिक्त, ग्लेशियरों का पिघलना और समुद्र की सतहों का बढ़ना तटीय क्षेत्रों में बाढ़ और भू-गतिकीय परिवर्तन को जन्म दे रहा है। इन प्रभावों का मानव जीवन पर गंभीर असर पड़ता है। कृषि, जल संसाधन, स्वास्थ्य, और बायोडाइवर्सिटी पर इसके नकारात्मक परिणाम देखे जा सकते हैं। फसलों की पैदावार में कमी, पानी की कमी, और स्वास्थ्य समस्याएँ जैसे कि गर्मी से संबंधित बीमारियाँ बढ़ रही हैं।

भारत में जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन एक वैश्विक समस्या है, जो भारत जैसे कृषि प्रधान देशों पर विशेष रूप से गहरा प्रभाव डाल रही है। भारत में कृषि देश की अर्थव्यवस्था और खाद्य सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, और लगभग 58 प्रतिशत जनसंख्या (आर्थिक सर्वेक्षण, भारत 2020-2021)[4] की आजीविका कृषि पर निर्भर है। जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम पैटर्न में अनियमितता, असामान्य वृष्टि, और तापमान में वृद्धि जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं, जो सीधे तौर पर कृषि उत्पादकता और भूमि की गुणवत्ता को प्रभावित कर रही हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों में मानसून की अनिश्चितता, सूखा और बाढ़ की बढ़ती घटनाएँ, और फसलों पर प्रतिकूल असर शामिल हैं। इसके अलावा, मृदा की गुणवत्ता और उत्पादकता में गिरावट, गहन कृषि पद्धतियों पर असर, और किसानों की आय में कमी जैसी समस्याएँ उभर रही हैं। इन समस्याओं का सामना करने के लिए जरूरी है कि समझदारी से कृषि नीतियाँ तैयार की जाएँ और प्रभावी समाधान अपनाए जाएँ। इस प्रकार, जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव व्यापक और गहरा है, जो खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण विकास के लिए एक बड़ी चुनौती प्रस्तुत करता है।

- भारतीय मानसून की अनिश्चितता में वृद्धि : जलवायु परिवर्तन के कारण भारतीय मानसून की बारिश की समय-सारणी और मात्रा में अस्थिरता आ रही है। यह अनियमितता किसानों के लिए फसल बुवाई और कटाई के समय को प्रभावित करती है। मानसून की अनिश्चितता से सूखा और बाढ़ जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं, जिससे फसलों की उपज और गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप, किसानों को फसल क्षति और आर्थिक नुकसान का सामना करना पड़ रहा है।
- मृदा की गुणवत्ता में गिरावट : जलवायु परिवर्तन के कारण मृदा की उर्वरता और गुणवत्ता में कमी आ रही है। अत्यधिक तापमान और बदलती वृष्टि के कारण मृदा में पोषक तत्वों की कमी हो रही है, जिससे फसलों की वृद्धि और उत्पादकता प्रभावित हो रही है। इसके अलावा, मृदा की गुणवत्ता में गिरावट से कृषि कार्यों की उत्पादकता भी कम हो रही है, जिससे खाद्य सुरक्षा पर प्रतिकूल असर पड़ रहा है।
- मृदा क्षरण : जलवायु परिवर्तन के कारण अत्यधिक वर्षा और तेज हवाओं से मृदा क्षरण की घटनाएँ बढ़ गई हैं। यह मृदा के उपजाऊ हिस्से को बहा देती है और भूमि की उत्पादकता को घटाती है। मृदा क्षरण से जलधारण क्षमता कम होती है और सिंचाई की आवश्यकता बढ़ जाती है, जिससे कृषि कार्यों की लागत में वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप, फसल उत्पादन और भूमि उपयोग दोनों प्रभावित होते हैं।
- सूखा और बाढ़ की बारम्बारता में वृद्धि : जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा और बाढ़ की घटनाओं में वृद्धि हो रही है। असमान वर्षा और उच्च तापमान के कारण सूखा की स्थिति उत्पन्न होती है, जबकि

अत्यधिक वर्षा बाढ़ की स्थिति को जन्म देती है। दोनों ही स्थितियाँ फसलों की वृद्धि और सुरक्षा के लिए जोखिम उत्पन्न करती हैं, जिससे किसानों को उत्पादन में कमी और आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है।

- फसलों का नष्ट होना : जलवायु परिवर्तन के कारण अत्यधिक मौसम स्थितियों, जैसे कि हीटवेव और बर्फबारी, से फसलों को गंभीर नुकसान हो रहा है। अचानक मौसम परिवर्तन फसलों की गुणवत्ता और मात्रा को प्रभावित करता है, जिससे उत्पादन में गिरावट आती है। इन मौसम स्थितियों के कारण फसलों की मृत्यु दर बढ़ जाती है, जिससे खाद्य आपूर्ति श्रृंखला पर प्रभाव पड़ता है।
- मृदा की उत्पादकता में कमी : जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से मृदा की उत्पादकता में गिरावट आ रही है। तापमान में वृद्धि और असामान्य वृष्टि की वजह से मृदा में पोषक तत्वों की कमी हो रही है, जिससे फसलों की वृद्धि प्रभावित हो रही है। कम उत्पादकता से किसान फसल की उपज बढ़ाने में असमर्थ होते हैं, जो खाद्य सुरक्षा और आर्थिक स्थिरता को प्रभावित करता है।
- गहन कृषि पर प्रतिकूल असर : जलवायु परिवर्तन के कारण गहन कृषि पद्धतियों, जो उच्च उर्वरक और जल का उपयोग करती हैं, पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। उच्च तापमान और बदलती जलवायु से इन पद्धतियों की पर्यावरणीय प्रभाव बढ़ रहे हैं, जिससे मृदा की गुणवत्ता और जल स्रोतों पर दबाव बढ़ रहा है। इसके परिणामस्वरूप, कृषि कार्यों की स्थिरता और लाभप्रदता पर असर पड़ता है।
- कृषि में लागत की वृद्धि : जलवायु परिवर्तन के कारण फसल की देखरेख और सुरक्षा के लिए अतिरिक्त संसाधनों की आवश्यकता होती है। सिंचाई, कीटनाशक और उर्वरक की बढ़ती लागत से कुल कृषि लागत में वृद्धि हो रही है। उच्च लागत के कारण किसानों की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल असर पड़ता है, जिससे उनकी आय कम होती है और उत्पादन लागत का प्रबंधन कठिन हो जाता है।
- खेती योग्य भूमि का बेकार होना : समुद्र स्तर की वृद्धि और मृदा क्षरण के कारण खेती योग्य भूमि की मात्रा में कमी आ रही है। नमक का प्रवेश और मृदा की गुणवत्ता में गिरावट से भूमि की उपजाऊ क्षमता घट रही है। बेकार भूमि के कारण कृषि के लिए उपलब्ध संसाधन कम हो रहे हैं, जिससे फसल उत्पादन और भूमि उपयोग में समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं।
- किसानों की आय में कमी : जलवायु परिवर्तन के कारण फसल उत्पादन में कमी और बढ़ती लागत से किसानों की आय में गिरावट आ रही है। कम उपज और उच्च लागत के कारण किसानों को आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इस स्थिति में किसानों की जीवनशैली और आर्थिक स्थिरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिससे उनकी समृद्धि और कृषि पर निर्भरता कम होती है।

जलवायु परिवर्तन के कृषि पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों को रोकने के उपाय :

जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने के लिए वैश्विक और स्थानीय स्तर पर विभिन्न प्रयास किए जा रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय संधियों जैसे पेरिस समझौता, और राष्ट्रीय योजनाएँ इसे रोकने और इसके प्रभावों को कम करने के लिए महत्वपूर्ण कदम हैं। हालांकि, इसके लिए सामूहिक प्रयास और दीर्घकालिक प्रतिबद्धता की आवश्यकता है ताकि भविष्य में इसके प्रभावों को कम किया जा सके और सतत विकास सुनिश्चित किया जा सके। पीलके (2004) जलवायु परिवर्तन केवल एक पर्यावरणीय मुद्दा नहीं है, बल्कि यह मानव समाज और उसके विकास पर भी गहरा प्रभाव डालता है। इसके लिए वैज्ञानिक, तकनीकी, और नीति संबंधी प्रयासों की आवश्यकता है

ताकि इस वैश्विक चुनौती का प्रभावी ढंग से सामना किया जा सके। निम्नलिखित सुझाव इस दिशा में महत्वपूर्ण हैं –

- किसानों को जलवायु-स्मार्ट प्रथाओं, जैसे कि मिट्टी की उचित प्रबंधन, फसल चक्रण और कम जलवायु प्रभाव वाले फसल किस्मों का उपयोग करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। इससे फसलों की उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है और पर्यावरणीय प्रभाव को कम किया जा सकता है।
- सूखा और पानी की कमी को दूर करने के लिए आधुनिक सिंचाई तकनीकों, जैसे ड्रिप इरिगेशन और रेनवाटर हार्वेस्टिंग को अपनाना चाहिए। यह जल का कुशल उपयोग सुनिश्चित करेगा और फसलों की बेहतर देखभाल संभव करेगा।
- मृदा के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए जैविक खाद, कंपोस्टिंग, और कवर क्रॉप्स का उपयोग बढ़ाया जाना चाहिए। इससे मृदा की उर्वरता और जल धारण क्षमता बढ़ेगी, और मृदा क्षरण को रोका जा सकेगा।
- फसल विविधता को बढ़ावा देना और पारंपरिक फसल किस्मों को पुनर्जीवित करना जलवायु परिवर्तन के प्रति किसानों को अधिक लचीला बनाएगा। विभिन्न फसलें विभिन्न जलवायु परिस्थितियों का सामना कर सकती हैं।
- किसानों को जलवायु परिवर्तन और इसके कृषि पर प्रभावों के बारे में जागरूक करना आवश्यक है। इसके लिए प्रशिक्षण और सूचना सत्र आयोजित किए जाने चाहिए ताकि किसान उचित निर्णय ले सकें।
- वनों की कटाई को रोकने और वृक्षारोपण को बढ़ावा देने से मृदा के क्षरण और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम किया जा सकता है। अधिक वन क्षेत्र जलवायु को स्थिर बनाने में मदद करता है।
- कृषि में नवीनतम विज्ञान और तकनीकी उपायों को अपनाना चाहिए। इससे फसल उत्पादन में सुधार होगा और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम किया जा सकेगा। कृषि अनुसंधान और विकास में निवेश आवश्यक है।
- सरकारों को ऐसी नीतियाँ और योजनाएँ तैयार करनी चाहिए जो जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन पर केंद्रित हों। इन नीतियों में किसान समर्थन, बीमा योजनाएँ और वित्तीय सहायता शामिल होनी चाहिए।
- जलवायु परिवर्तन के जोखिमों को कम करने के लिए प्रभावी फसल बीमा योजनाएँ लागू करनी चाहिए। इससे किसान आपातकालीन स्थितियों में आर्थिक सुरक्षा प्राप्त कर सकेंगे।
- स्थानीय स्तर पर पारिस्थितिक तंत्र को सशक्त बनाने और इको-फ्रेंडली कृषि प्रथाओं को अपनाने से जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम किया जा सकता है। स्थानीय समुदायों को शामिल करके समाधान विकसित किए जाने चाहिए।

निष्कर्ष :

भारत में जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव व्यापक और गहरा है, जो देश की खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए एक बड़ी चुनौती प्रस्तुत करता है। जलवायु परिवर्तन के कारण भारतीय मानसून की अनिश्चितता, मृदा की गुणवत्ता में गिरावट, सूखा और बाढ़ की बढ़ती घटनाएँ, और फसलों की उपज में कमी जैसी समस्याएँ उभर रही हैं। इन प्रभावों के चलते कृषि उत्पादकता में गिरावट आई है, मृदा क्षरण और खेती योग्य भूमि का बेकार होना बढ़ा है, और किसानों की आय में कमी आई है। वृक्षारोपण और वन संरक्षण को

बढ़ावा देना एक महत्वपूर्ण कदम है, लेकिन केवल पेड़ लगाने से वनों की कटाई की समस्या का समाधान नहीं हो सकता। वनों की भरपाई के लिए वन क्षेत्र को बढ़ाना और वृक्षारोपण की दर को वनों की कटाई की दर से कई गुना अधिक करना आवश्यक है। इसके साथ ही, विकास के लिए पर्यावरण की कीमत पर होने वाले कार्यों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। सतत और धारणीय विकास के सिद्धांतों को केवल विचारधारा के रूप में नहीं, बल्कि व्यावहारिक नीतियों और योजनाओं में अपनाना चाहिए। सरकारों को खनन और औद्योगिक नीतियों में पर्यावरण संरक्षण को अनिवार्यता के साथ लागू करना चाहिए। खनन और औद्योगिक गतिविधियाँ पर्यावरणीय मानदंडों के अनुरूप होनी चाहिए ताकि उनका प्रभाव न्यूनतम हो। साथ ही, पर्यावरणीय अनुकूल विकल्पों, जैसे इकोटूरिज्म, के विकास पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए, जो प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करता है और स्थानीय समुदायों के लिए आर्थिक लाभ उत्पन्न करता है। इस प्रकार, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने और कृषि को स्थिर बनाए रखने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। इसमें जलवायु-स्मार्ट कृषि प्रथाएँ, सिंचाई प्रौद्योगिकियों में सुधार, मृदा संरक्षण उपाय, और प्रभावी नीतियों और रणनीतियों का समावेश होना चाहिए। केवल ऐसे ठोस और दीर्घकालिक प्रयास ही भारतीय कृषि क्षेत्र को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से बचा सकते हैं और सतत विकास को सुनिश्चित कर सकते हैं।

संदर्भ :

1. कुमार, आर (2019). डेवलपमेंट एक्टिविटी एंड एन्विरोंमेंटल प्रोब्लेम्स इन झारखण्ड ख्प्रॉब्लमस एंड सोल्यूसन, चंद्रा, एम. एवं कुमार, आर(सं) कंटेम्परारी इंडीया : सम रेफ्लेक्सन्स, नवयुग इंटरनेशनल, गौतम विहार दिल्ली, 179-190.
2. आईपीसीसी. (2021). मनुष्यों द्वारा वैश्विक गर्मी की जिम्मेदारी. जलवायु परिवर्तन 2021: भौतिक विज्ञान की आधारभूत रिपोर्ट, अंतर्राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन पैनल.
3. क्रॉली, टी. जे. (2000). काउसेस ऑफ क्लाइमेट चेंज ओवर द पास्ट 1000 ईयर्स. साइंस, 289(5477), 270-277.
4. भारत सरकार. (2021). आर्थिक सर्वेक्षण 2020-21 (Vol. 2). वित्त मंत्रालय, भारत सरकार. https://www.indiabudget.gov.in/echapter_vol2
5. पीलके जूनियर, आर. ए. (2004). व्हाट इज क्लाइमेट चेंज?. एनर्जी एंड एनवायरनमेंट, 15(3), 515-520.

●●●

झारखंड में महिलाओं की आर्थिक उन्नति में स्वयं सहायता समूह की भूमिका : चुनौतियाँ एवं समाधान

- मुन्नी कुमारी[1]
- डॉ. पुष्पा कुमारी[2]

संक्षिप्ति :

भारत गावों का देश है एवं ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक उन्नति आधी आबादी के आर्थिक आत्मनिर्भरता एवा सशक्तीकरण से जुड़ा मुद्दा है। झारखंड जैसे विकासशील राज्य में ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक उन्नति में स्वयं सहायता समूह (SHGs) एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राज्य की अर्थव्यवस्था में कृषि और छोटे उद्यमों का विशेष महत्व है, लेकिन पारंपरिक रूप से महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी सीमित रही है। SHGs महिलाओं को एक संगठित मंच प्रदान करते हैं, जहाँ वे सामूहिक रूप से बचत कर सकती हैं, छोटे कर्ज ले सकती हैं, और स्वयं के छोटे व्यवसाय स्थापित कर सकती हैं। इन समूहों के माध्यम से महिलाओं को न केवल आर्थिक स्वतंत्रता मिलती है, बल्कि वे सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से भी सशक्त होती हैं। झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में SHGs ने महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने, अपने परिवार की आय में योगदान देने और सामुदायिक निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में भाग लेने के अवसर प्रदान किए हैं। इन समूहों ने महिलाओं को वित्तीय संसाधनों तक पहुँचने, उद्यमिता की ओर अग्रसर करने और स्थानीय अर्थव्यवस्था में सक्रिय भागीदार बनने के लिए प्रेरित किया है। इसलिए, झारखंड में महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण और ग्रामीण विकास के लिए SHGs का महत्व अत्यधिक है।

बीज शब्द : ग्रामीण महिलाएं, झारखण्ड, आर्थिक विकास, महिला सशक्तिकरण, स्वयं सहायता समूह

---

1. *शोधछात्रा, विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग*
2. *छात्र कल्याण संकायाध्यक्ष एवं सह-प्राध्यापक, विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग, बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय,धनबाद (झारखण्ड)*

स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) एक स्वायत्त संघ होता है जिसमें समान आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले लोगों का एक समूह होता है (सुंदरम, 2012)।[1] ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की सामूहिक शक्ति को संगठित कर उन्हें आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त बनाने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। एसएचजी का उद्विकास 1980 के दशक में भारत में हुआ, जब इसे महिलाओं को स्वरोजगार और उद्यमिता के माध्यम से आत्मनिर्भर बनाने के एक साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया (शंभर्कर, जाधव एवं मणकर 2012)।[2] इसने ग्रामीण महिलाओं को बचत, ऋण सुविधा, और सामूहिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में संलग्न किया। एसएचजी का महत्व इस बात में है कि यह न केवल महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाता है, बल्कि उन्हें सामूहिक निर्णय लेने, नेतृत्व विकास, और सामाजिक मुद्दों पर आवाज उठाने का भी अवसर प्रदान करता है। यह महिलाओं की व्यक्तिगत और सामुदायिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिससे उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है। इस आलेख का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक उन्नति में स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) की भूमिका का विश्लेषण करना है, आलेख का लक्ष्य यह समझना है कि एसएचजी ने महिलाओं को किस प्रकार आर्थिक रूप से सशक्त किया है और उनके जीवन में क्या बदलाव आए हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, विभिन्न व्यक्तिक अध्ययनों की समीक्षात्मक विधि का उपयोग किया गया है, जिसमें प्राथमिक और द्वितीयक डेटा स्रोतों से जानकारी संकलित की गई है। अध्ययन में महिलाओं के आर्थिक, सामाजिक, और व्यक्तिगत विकास पर एसएचजी के प्रभाव को जांचने के लिए गुणात्मक और मात्रात्मक डेटा का विश्लेषण किया गया है।

सम्बंधित साहित्य की समीक्षाः

स्वयं सहायता समूह (SHGs) ने ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक उन्नति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, और इस पर किए गए अध्ययनों की समीक्षा का महत्व कई दृष्टिकोण से अत्यधिक है। ये अध्ययन ग्रामीण महिलाओं की स्थिति, SHGs के माध्यम से प्राप्त लाभ, और उन चुनौतियों का विश्लेषण प्रदान करते हैं जिनका सामना वे करती हैं। उदाहरण स्वरूप, SHGs ने महिलाओं को वित्तीय स्वतंत्रता, उद्यमिता के अवसर, और सामुदायिक नेतृत्व में भागीदारी का अवसर प्रदान किया है। समीक्षा के माध्यम से, विभिन्न क्षेत्रों में लागू की गई नीतियों और कार्यक्रमों की प्रभावशीलता को समझा जा सकता है, जो आगे चलकर नीति निर्माताओं को समावेशी और प्रभावी रणनीतियों को डिजाइन करने में सहायता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, यह अध्ययन ग्रामीण समाज में महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन को समझने में मदद करता है, और SHGs के मॉडल को अन्य क्षेत्रों में लागू करने की संभावनाओं को उजागर करता है। कुल मिलाकर, यह समीक्षा SHGs के प्रभावशीलता का मूल्यांकन करती है और ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए प्रभावी उपायों की पहचान में सहायक होती है। इस अध्ययन में निम्न प्रमुख अध्ययन कि समीक्षा प्रस्तुत की गई है –

- कपूर (2019)3 ने अपने अध्ययन में महिला सशक्तीकरण के लिए उद्यमिता के महत्व को उजागर किया है, विशेष रूप से निठारी गाँव, नोएडा में एक सेल्फ हेल्प क्रेडिट प्रोग्राम के संदर्भ में। यह अध्ययन दर्शाता है कि कैसे इस प्रोग्राम ने महिलाओं को आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से सशक्त किया है। कपूर के अनुसार, सेल्फ हेल्प ग्रुप्स (SHGs) ने महिलाओं को न केवल वित्तीय सहायता प्रदान की, बल्कि उनके आत्म-संरक्षण और सामाजिक स्वायत्तता को भी बढ़ावा दिया। उन्होंने पाया कि यह प्रोग्राम महिलाओं को बेहतर उद्यमिता अवसर प्रदान करता है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होता है और वे सामाजिक निर्णयों में अधिक सक्रिय भूमिका निभाने लगती हैं।

- आनंद (2002)[4] के अध्ययन ने महिलाओं के सशक्तीकरण में सेल्फ-हेल्प ग्रुप्स (SHGs) और नेशनल हेल्प ग्रुप्स (NHGs) की भूमिका की गहराई से समीक्षा की है। केरल में किए गए इस केस स्टडी ने यह स्पष्ट किया है कि ये ग्रुप्स महिलाओं को सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से कैसे सशक्त करते हैं। अध्ययन के अनुसार, SHGs और NHGs ने महिलाओं को संगठित करने, वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता प्रदान करने, और सामुदायिक विकास में भागीदारी बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आनंद ने विशेष रूप से बताया कि इन ग्रुप्स ने महिलाओं को आर्थिक स्वावलंबन के साथ-साथ सामाजिक सशक्तिकरण भी प्रदान किया है। यह अध्ययन यह दर्शाता है कि किस प्रकार महिलाएँ इन ग्रुप्स के माध्यम से व्यवसायिक गतिविधियों में शामिल होती हैं, जिससे उनके जीवन स्तर में सुधार होता है और सामाजिक स्थिति भी मजबूत होती है।

- लोक्हांडे (2010)[5] के अध्ययन में महिला सेल्फ-हेल्प ग्रुप्स (SHGs) और महिलाओं के सशक्तीकरण के बीच के संबंधों की गहन समीक्षा की गई है। इस केस स्टडी में महिला आर्थिक विकास महामंडल पर ध्यान केंद्रित किया गया है। अध्ययन के अनुसार, SHGs ने महिलाओं को वित्तीय संसाधनों की पहुँच के साथ-साथ सामुदायिक गतिविधियों में भागीदारी का अवसर भी प्रदान किया है। लोक्हांडे ने बताया कि SHGs की सहायता से महिलाओं ने न केवल अपनी आय में वृद्धि की है बल्कि सामुदायिक निर्णयों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस प्रकार, SHGs ने महिलाओं को एक सशक्त समुदाय सदस्य बनने की दिशा में मार्गदर्शन किया है, जो सामाजिक और आर्थिक सशक्तीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

- मंजीनाथ (2013)[6] ने कर्नाटक राज्य के ग्रामीण विकास में महिला SHGs की भूमिका का विश्लेषण किया। अध्ययन ने दिखाया कि SHGs ने महिलाओं को आर्थिक आत्म-निर्भरता की ओर प्रेरित किया और उनके सामाजिक स्थिति में सुधार किया है। इस अध्ययन ने ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए SHGs के प्रभावी मॉडल को प्रस्तुत किया। SHGs ने महिलाओं को न केवल वित्तीय मदद प्रदान की, बल्कि उन्हें विभिन्न उद्यमिता अवसरों और सामुदायिक विकास परियोजनाओं में भी शामिल किया। यह अध्ययन इस बात को उजागर करता है कि कैसे SHGs ग्रामीण विकास के लिए एक स्थायी और प्रभावी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं।

- मॉयल एवं अन्य (2006)[7] ने अपने अध्ययन में ग्रामीण भारतीय महिलाओं के व्यक्तिगत और आर्थिक सशक्तिकरण के लिए SHGs की भूमिका पर ध्यान केंद्रित किया। अध्ययन के अनुसार, SHGs ने महिलाओं को वित्तीय सेवाओं तक पहुँच प्रदान की और उनके आत्म-संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महिलाएँ अब अधिक आत्म-निर्भर और सामाजिक रूप से सक्रिय हो गई हैं, और यह SHGs की पहल के परिणामस्वरूप संभव हुआ है। इस अध्ययन ने यह भी दिखाया कि SHGs ने महिलाओं को उनके व्यवसायों को सफलतापूर्वक चलाने के लिए आवश्यक कौशल और समर्थन प्रदान किया है।

- प्रसाद एवं अन्य (2007)[8] ने अपनी केस स्टडी में सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण का विश्लेषण किया। अध्ययन के अनुसार, IT ने महिलाओं को नए व्यवसायिक अवसर प्रदान किए हैं और उनके आर्थिक स्थिति में सुधार किया है। यह अध्ययन बताता है कि कैसे IT ने महिलाओं को तकनीकी ज्ञान प्रदान किया और उन्हें वित्तीय सेवाओं और व्यापारिक गतिविधियों के लिए आवश्यक संसाधनों तक पहुँच प्रदान की। इस प्रकार, IT ने महिलाओं के सशक्तीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे वे न केवल आर्थिक रूप से सशक्त हुई हैं बल्कि सामाजिक रूप से भी अधिक प्रभावशाली बनी हैं।

• सिंह एवं रघुवंशी (2012)[9] ने हिमाचल प्रदेश में महिलाओं की उद्यमिता, उनके मुद्दों, चुनौतियों और SHGs के माध्यम से सशक्तिकरण पर एक समग्र समीक्षा प्रस्तुत की है। इस अध्ययन ने दिखाया कि SHGs ने महिलाओं को उद्यमिता की ओर प्रेरित किया है। हालांकि, कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा है; जैसे कि सामाजिक प्रतिरोध, वित्तीय बाधाएँ और सामुदायिक समर्थन की कमी। इस अध्ययन के निष्कर्ष SHGs के माध्यम से महिला उद्यमिता को सशक्त बनाने के प्रयासों की प्रभावशीलता को दर्शाते हैं और क्षेत्रीय भिन्नताओं को समझने में मदद करते हैं।

• बर्ताँक्स एवं क्रेबल (2007)10 ने अपने अध्ययन में भारत में महिलाओं की आर्थिक विकास, उद्यमिता और पर्यावरण पर ध्यान केंद्रित किया है। केस स्टडी के माध्यम से, इस अध्ययन ने यह दर्शाया कि महिलाओं की आर्थिक सशक्तीकरण के लिए उद्यमिता एक महत्वपूर्ण उपाय है। बर्ताँक्स और क्रेबल ने विभिन्न परियोजनाओं और कार्यक्रमों की समीक्षा की, जो महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण के लिए योगदान दे रहे हैं। इस अध्ययन ने यह भी दिखाया कि कैसे उपयुक्त नीतियों और समर्थन प्रणाली से महिलाओं के उद्यमिता प्रयासों को सफल बनाया जा सकता है।

• मिनिमोल एवं मेकश (2012)11 ने केरल में ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए SHGs की भूमिका का विश्लेषण किया। इस अध्ययन ने यह स्पष्ट किया कि SHGs ने ग्रामीण महिलाओं को न केवल वित्तीय समर्थन प्रदान किया है, बल्कि उन्हें सामुदायिक निर्णयों में भी सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया है। मिनिमोल और मेकश ने SHGs की भूमिका और उनकी सफलता के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला, जिससे यह साबित होता है कि SHGs ग्रामीण विकास और महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए एक प्रभावी उपकरण हैं।

• हजारीका एवं सिंग्काई (2022)12 ने धमाजी जिले, असम में सरकारी समर्थन द्वारा SHGs के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण पर एक अध्ययन प्रस्तुत किया। अध्ययन ने दिखाया कि सरकारी योजनाओं और समर्थन ने SHGs की गतिविधियों को बढ़ावा दिया है, जिससे महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। हजारीका और सिंग्काई ने यह भी बताया कि सरकारी सहायता ने SHGs की क्षमताओं को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे ग्रामीण महिलाओं को बेहतर जीवन स्तर और आत्म-निर्भरता प्राप्त हुई है।

झारखण्ड में ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक उन्नति में स्वयं सहायता समूह की भूमिका :

झारखंड में ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक उन्नति में स्वयं सहायता समूहों (SHGs) की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। ये समूह महिलाओं को संगठित करके उन्हें वित्तीय, सामाजिक, और शैक्षिक रूप से सशक्त बनाते हैं। SHGs ने महिलाओं को बचत करने, छोटे ऋण प्राप्त करने, और स्वरोजगार के अवसरों का सृजन करने में सक्षम बनाया है। इसके साथ ही, ये समूह सामुदायिक जागरूकता, नेतृत्व विकास, और सामाजिक सुधारों में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के आर्थिक और सामाजिक सशक्तीकरण में SHGs की यह भूमिका एक सशक्त साधन के रूप में उभर कर आई है।

• आर्थिक सशक्तिकरण और वित्तीय समावेशन: SHGs के माध्यम से ग्रामीण महिलाएं संगठित होकर नियमित बचत कर सकती हैं और छोटे कर्ज प्राप्त कर सकती हैं। इससे वे छोटे व्यवसाय शुरू कर सकती हैं, जैसे कि कृषि आधारित गतिविधियां, हस्तशिल्प, और छोटे व्यापार। यह वित्तीय स्वतंत्रता महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाती है और उनके परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने में सहायक होती है। SHGs ने महिलाओं को बैंकिंग प्रणाली और अन्य वित्तीय संसाधनों तक पहुंचने में सक्षम बनाया है, जिससे उनका आर्थिक

सशक्तीकरण सुनिश्चित होता है।

- उद्यमिता और स्वरोजगार के अवसर: SHGs ने ग्रामीण महिलाओं को उद्यमिता की दिशा में प्रेरित किया है। इन समूहों के माध्यम से महिलाएं अपने उद्यम शुरू करने के लिए आवश्यक पूंजी जुटा पाती हैं। समूह के भीतर प्रशिक्षण कार्यक्रम और सामुदायिक समर्थन से महिलाएं कृषि, पशुपालन, सिलाई, बुनाई, और अन्य छोटे उद्योगों में स्वरोजगार के अवसर पा सकती हैं। इससे न केवल महिलाओं की आय में वृद्धि होती है, बल्कि वे रोजगार सृजन में भी योगदान देती हैं
- सामाजिक सशक्तीकरण और नेतृत्व विकास : SHGs के माध्यम से महिलाएं समूहों में एकत्रित होती हैं, जिससे वे सामाजिक रूप से भी सशक्त होती हैं। समूह की बैठकें, सामूहिक निर्णय लेने की प्रक्रियाएँ, और नेतृत्व के अवसर महिलाओं को आत्मविश्वास और नेतृत्व कौशल विकसित करने में मदद करते हैं। इससे महिलाएँ सामुदायिक विकास में सक्रिय भूमिका निभाने लगती हैं और पंचायत स्तर पर भी प्रभावशाली हो सकती हैं।
- शिक्षा और जागरूकता का प्रसार : SHGs ने महिलाओं के बीच शिक्षा और जागरूकता के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन समूहों के माध्यम से महिलाएं वित्तीय साक्षरता, स्वास्थ्य देखभाल, बाल शिक्षा, और कानूनी अधिकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करती हैं। यह जागरूकता उनके जीवन की गुणवत्ता को बेहतर बनाती है और उन्हें सामाजिक बुराइयों से लड़ने के लिए सक्षम बनाती है।
- सामुदायिक विकास और सामाजिक सुधार :SHGs के माध्यम से महिलाओं ने न केवल अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारा है, बल्कि समुदाय के विकास में भी योगदान दिया है। ये समूह सामुदायिक समस्याओं को हल करने, सामाजिक सुधारों को लागू करने, और स्थानीय संसाधनों के समुचित उपयोग में भी सक्रिय भूमिका निभाते हैं। इससे समुदाय की समग्र प्रगति में महिलाओं का योगदान सुनिश्चित होता है।

चुनौतियाँ एवं समाधानः

भारत में ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति विभिन्न व्यक्तिगत, सामाजिक, और वित्तीय चुनौतियों से प्रभावित होती है। ग्रामीण महिलाएं दिनभर घरेलू कामों में व्यस्त रहती हैं, जैसे सफाई, खाना बनाना, बच्चों की परवरिश, और इन सबके साथ ही आय उत्पन्न करने वाली गतिविधियों पर भी ध्यान देती हैं। इन पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण वे सफल उद्यमी नहीं बन पातीं, अक्सर उन्हें परिवार और करियर के बीच चुनाव करना पड़ता है (कोटे, 2021)।[13] समाज में महिलाओं के प्रति पूर्वग्रह, पारंपरिक सोच और लैंगिक भेदभाव के कारण भी उनकी प्रगति में रुकावट आती है (रेवानी एवं तोचवंग 2014)।[14] ग्रामीण क्षेत्रों में, महिलाएँ न केवल पुरुषों बल्कि बुजुर्ग महिलाओं से भी विरोध का सामना करती हैं, जो असमानता को स्वीकार कर चुकी हैं। आर्थिक दृष्टिकोण से, महिलाओं को वित्तीय संसाधनों तक पहुँच प्राप्त करने में कठिनाई होती है। बैंक और अन्य ऋणदाता संस्थाओं के भेदभावपूर्ण रवैये और आवश्यक गारंटी की कमी के कारण महिलाएं ऋण प्राप्त करने में असमर्थ होती हैं। इसके अलावा, कई बार उनके पास अपनी संपत्ति नहीं होती, जिससे उनके पास वित्तीय स्थिरता की कमी बनी रहती है। महिला उद्यमियों को विपणन और प्रबंधन में भी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि उनके उत्पादों को बेचने और व्यवस्थित करने के लिए उचित व्यवस्थाओं की कमी होती है। प्रतिस्पर्धा का सामना करना भी कठिन होता है, क्योंकि उनके संगठन अक्सर असंगठित होते हैं और उन्हें संगठित उद्योगों और पुरुष प्रधान उद्यमों से कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। भारत में महिलाओं की शिक्षा की दर भी कम है, जिससे वे तकनीकी विकास और बाजार ज्ञान से वंचित रहती हैं। यह जानकारी और अनुभव की कमी उन्हें व्यापारिक उद्यमों को स्थापित और संचालित करने में और भी कठिनाई पैदा करती है।

झारखंड एक पिछड़ा और जनजातीय बहुल राज्य है, जहाँ प्रवास वाली जनसंख्या की अधिकता, मजदूर वर्ग, अशिक्षा, और ग्रामीण कृषि अर्थव्यवस्था प्रमुखता से देखने को मिलती है। इस संदर्भ में, स्वयं सहायता समूह (SHGs) महिलाओं की आर्थिक उन्नति का एक महत्वपूर्ण साधन बन गए हैं। ये समूह महिलाओं को वित्तीय स्वतंत्रता, स्वरोजगार, और सामाजिक सशक्तिकरण का अवसर प्रदान करते हैं। ग्रामीण महिलाओं को छोटे-छोटे उद्योगों, हस्तशिल्प, और कृषि आधारित गतिविधियों में संलग्न करके SHGs ने उन्हें आत्मनिर्भर बनने में मदद की है। इसके अलावा, SHGs महिलाओं को सामूहिक निर्णय लेने, वित्तीय प्रबंधन, और नेतृत्व कौशल में भी प्रशिक्षण प्रदान करते हैं, जिससे उनके आत्मविश्वास में वृद्धि होती है और वे अपने परिवार और समुदाय के लिए एक मजबूत स्तंभ बनकर उभरती हैं।

हालांकि, झारखंड में SHGs की सफलता के बावजूद, इनकी राह में कई चुनौतियाँ भी हैं। राज्य में अशिक्षा, सामाजिक पिछड़ापन, और जागरूकता की कमी के कारण महिलाएँ अक्सर ठगी और धोखाधड़ी का शिकार बन जाती हैं। कई बार, SHGs के नाम पर महिलाएं आर्थिक रूप से ठगी जाती हैं, जिससे उनका विश्वास इस प्रणाली से उठ जाता है। इसके अतिरिक्त, सीमित वित्तीय संसाधन, अपर्याप्त प्रशिक्षण, और सरकारी समर्थन की कमी भी SHGs के कार्यों में बाधा उत्पन्न करती है। इन चुनौतियों का समाधान सामुदायिक जागरूकता कार्यक्रमों, शिक्षा, और सरकारी निगरानी तंत्र को मजबूत करके किया जा सकता है। SHGs को प्रशिक्षण, तकनीकी सहयोग, और वित्तीय सहायता प्रदान करना भी आवश्यक है, ताकि वे अपने उद्देश्यों को प्रभावी ढंग से प्राप्त कर सकें। इसके साथ ही, स्थानीय प्रशासन और NGOs की भागीदारी को बढ़ावा देकर, SHGs की प्रभावशीलता और महिलाओं के आर्थिक उन्नति में उनकी भूमिका को और सशक्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष:

स्वयं सहायता समूहों (SHGs) की भूमिका पर किए गए विभिन्न अध्ययनों के निष्कर्ष से यह स्पष्ट होता है कि SHGs ने ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक और सामाजिक सशक्तीकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ये समूह महिलाओं को वित्तीय स्वतंत्रता प्राप्त करने, छोटे व्यवसायों की स्थापना करने और पारिवारिक आय में योगदान देने में सक्षम बनाते हैं, जिससे उनके आत्म-सम्मान और सामुदायिक स्थिति में सुधार हुआ है जैसा कि कपुर, 2019; आनंद, 2020 एवं लोखंडे, 2010 के अध्ययनों से पता चलता है। इसके अलावा, SHGs ने महिलाओं में नेतृत्व कौशल, सामाजिक संपर्क, और सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा दिया है। हालांकि, इन समूहों को वित्तीय संसाधनों की कमी, सामाजिक भेदभाव, और आवश्यक प्रशिक्षण की कमी जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जो उनके प्रभाव को सीमित कर सकता है। फिर भी, SHGs का मॉडल ग्रामीण विकास और महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए प्रभावी साबित हुआ है, और इसे नीतिगत सुधारों, वित्तीय सहायता और प्रशिक्षण के माध्यम से और मजबूत किया जा सकता है। स्वयं सहायता समूहों (SHGs) को प्रभावी बनाने और उन्हें विकास योजनाओं के साथ सामंजस्य स्थापित कर महिलाओं की आर्थिक उन्नति से जोड़ने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है। सबसे पहले, इन समूहों को सुदृढ़ बनाने के लिए उनके सदस्यों को उचित प्रशिक्षण और कौशल विकास कार्यक्रमों से लैस करना आवश्यक है। इससे महिलाएँ अपने उद्यमों को अधिक सफलतापूर्वक संचालित कर सकेंगी और स्थानीय बाजारों में प्रतिस्पर्धा कर पाएंगी। साथ ही, SHGs को सरकारी और गैर-सरकारी विकास योजनाओं से जोड़ने के लिए एक ठोस रणनीति बनानी चाहिए, जिससे उन्हें वित्तीय सहायता, तकनीकी सहायता और विपणन की सुविधाएं मिल सकें। इसके लिए, स्थानीय प्रशासन और विकास एजेंसियों को SHGs के साथ मिलकर काम करना होगा, ताकि योजनाओं का लाभ सीधा उन महिलाओं तक पहुँच सके, जो आर्थिक रूप से कमजोर हैं। इसके आलावे जागरूकता और शिक्षा के माध्यम

से महिलाओं को SHGs के महत्व और उनके अधिकारों के बारे में जानकारी देना आवश्यक है, जिससे वे ठगी और धोखाधड़ी से बच सकें और आत्मनिर्भरता की दिशा में मजबूती से आगे बढ़ सकें। इसके अतिरिक्त, नियमित निगरानी और मूल्यांकन प्रक्रियाओं को लागू करना भी महत्वपूर्ण है, ताकि SHGs की प्रगति को मापा जा सके और आवश्यकतानुसार सुधार किए जा सकें।

संदर्भ :

1. सुंदरम, ए. (2012). इम्पैक्ट ऑफ सेल्फ हेल्प ग्रुप इन सोसियो-इकनोमिक डेवलपमेंट इन इंडिया. जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस, 5(1), 20-27।
2. शंभर्कर, वाई. बी., जाधव, यू. वी., - मणकर, डी. एम. (2012). इम्पैक्ट ऑफ सेल्फ हेल्प ग्रुप्स ऑन एम्पावरमेंट ऑफ वूमन मेंबर्स. ट्रांसपोर्टेशन, 40, 28-57।
3. कपूर, एस. (2019). एन्त्रेप्रेंयूर्शिप फॉर इकनोमिक एंड सोशल एम्पावरमेंट ऑफ वीमेन: अ केस स्टडी ऑफ सेल्फ हेल्प क्रेडिट प्रोग्राम इन निठारी विलेज नॉएडा इंडिया. ऑस्ट्रेलेशियन अकाउंटिंग, बिजनेस और फाइनेंस जर्नल, 13(2), 123-142।
4. आनंद, जे. एस. (2002). सेल्फ-हेल्प ग्रुप्स इन एम्पोवेरिंग वीमेन: केस स्टडी ऑफ सिलेक्टेड SHGs और NHGs. केरल रिसर्च प्रोग्राम ऑन लोकल लेवल डेवलपमेंट, सेंटर फॉर डेवलपमेंट स्टडीज, प्रसंथ नगर, उल्लूर, 5-71।
5. लोक्हांडे, एम. ए. (2010). वीमेन सेल्फ-हेल्प ग्रुप्स एंड वीमेन एम्पावरमेंट-अ केस स्टडी ऑफ महिला आर्थिक विकास महामण्डल. http://gnanaganga.inflibnet.ac.in:8080/jspui/handle/123456789/1277
6. मंजीनाथ, एस. (2013). द रोल ऑफ वीमेन सेल्फख्रहेल्प ग्रुप्स इन रूरल डेवलपमेंट ऑफ कर्नाटक स्टेट इंडिया. इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज, 2(9), 23-25।
7. मॉयल, टी. एल., डोलार्ड, एम., - बिस्वास, एस. एन. (2006). पर्सनल एंड इकनोमिक एम्पावरमेंट इन रूरल इंडियन वीमेन: अ सेल्फ-हेल्प ग्रुप एप्रोच. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रूरल मैनेजमेंट, 2(2), 245-266।
8. प्रसाद, पी. एन., - श्रीदेवी, वी. (2007). इकनोमिक एम्पावरमेंट ऑफ वीमेन थ्रू इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी: अ केस स्टडी फ्रॉम अन इंडियन स्टेट. जर्नल ऑफ इंटरनेशनल वुमन स्टडीज, 8(4), 107-120।
9. सिंह, आर., - रघुवंशी, एन. (2012). वीमेन इंटरप्रेनुरशिप इशू, चौलेंजज एंड एम्पोवेर्मेंट थ्रू सेल्फ हेल्प ग्रुपस : अन ओवरव्यू ऑफ हिमाचल प्रदेश. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ डेमोक्रेटिक एंड डेवलपमेंट स्टडीज, 1(1), 45-58।
10. बर्तौक्स, एन., - क्रेबल, ई. (2007). लर्निंग अबाउट वीमेन इकनोमिक डेवलपमेंट, इंटरप्रेनुरशिप एंड द एनोविरोंमेंट इन इंडिया : अ केस स्टडी .जर्नल ऑफ डेवलपमेंटल एंटरप्रेन्योरशिप, 12(04), 467-478।
11. मिनिमोल, एम. सी., - मेकश, के. जी. (2012). एम्पोवेरिंग रूरल वीमेन इन केरला : अ स्टडी ओं द रोल ऑफ सेल्फ हेल्फ ग्रुप. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सॉशियोलॉजी एंड एंथ्रोपोलॉजी, 4(9), 270।
12. हजारीका, जे., - सिंग्काई, सी. एन. (2022). इम्पैक्ट ऑफ सेल्फ हेल्फ ग्रुप ओं इकनोमिक एम्पोवेर्मेंट ऑफ रूरल वीमेन बी सपोर्ट ऑफ गवर्मेंट : अ स्टडी इन धमाजी डिस्ट्रिक्ट,असम. रिसमिलिटेरिस, 12(6), 862-867।
13. कोटे, आर. (2021). वूमेन एम्पावरमेंट थ्रू सेल्फ हेल्प ग्रुप्स-ए स्टडी ऑफ तेलंगाना. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी एजुकेशनल रिसर्च, 10, 6।
14. रेवानी, एस. के., - तोचवंग, एल. (2014). सोशल एम्पावरमेंट ऑफ वूमेन सेल्फ हेल्प ग्रुप मेंबर्स एंगेज्ड इन लाइवस्टॉक रियरिंग. एज, 36, 9-33।

●●●

ग्रामीण युवतियों का शिक्षा हेतु धनबाद शहर में पलायन : कारण, चुनौतियाँ और समाधान

❍ रीना कुमारी[1]
❍ डॉ. मुनमुन शरण[2]

संक्षिप्ति :

भारत में ग्रामीण युवतियों का शिक्षा के लिए शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन एक महत्वपूर्ण सामाजिक और शैक्षिक मुद्दा बन चुका है, विशेषकर झारखंड जैसे पिछड़े राज्यों में। शैक्षिक प्रवासन की इस प्रवृत्ति ने न केवल युवतियों की व्यक्तिगत आकांक्षाओं को आकार दिया है, बल्कि इसने क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा की असमानता और अवसरों की विषमताओं को भी उजागर किया है। झारखंड में ग्रामीण क्षेत्रों से युवा लड़कियों का धनबाद शहर की ओर पलायन का सबसे बड़ा कारण उच्च शिक्षा की बेहतर संभावनाओं की खोज है। इस प्रवासन की समस्या के कई पहलू हैं जिनकी गहराई से जांच आवश्यक है। शैक्षिक संस्थानों की कमी, अवसंरचनात्मक समस्याएँ, और सीमित सेवाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता और उपलब्धता को प्रभावित कर रही हैं। परिणामस्वरूप, युवतियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए शहरों की ओर पलायन करना पड़ता है। इस शोध में, झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों से धनबाद शहर की ओर पलायन करने वाली युवा लड़कियों की समस्याओं, उनके अनुभवों, और उनके शिक्षा से जुड़ी चुनौतियों का एक विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन में पलायन के मुख्य कारणों की पहचान की गई है, जिनमें शिक्षा की गुणवत्ता का अभाव, सीमित रोजगार के अवसर, और सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाएँ शामिल हैं। इसके साथ ही, पलायन की प्रक्रिया में आने वाली चुनौतियों को भी संक्षेप में बताया गया है, जैसे कि शहरी जीवन की कठिनाइयाँ, सांस्कृतिक समन्वय की समस्याएँ, और आर्थिक दबाव। अध्ययन में समस्या के समाधान हेतु सुझाव भी प्रस्तुत किए गए हैं, जिनमें ग्रामीण शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार, बेहतर अवसंरचना विकास, और शहरी-ग्रामीण शिक्षा असमानता को कम

1. शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद
2. सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद

करने के उपाय शामिल हैं। इसके अलावा, यह भी सुझाव दिया गया है कि सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों को मिलकर शिक्षा की सुविधाओं को ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तार करना चाहिए, ताकि ग्रामीण युवतियों को अपने ही क्षेत्र में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त हो सके और उन्हें पलायन करने की आवश्यकता न पड़े।

बीज शब्द : शैक्षिक प्रवासन, ग्रामीण युवतियाँ, धनबाद, झारखंड, उच्च शिक्षा, पलायन, शिक्षा की असमानता

ग्रामीण ख्रशहरी पलायन भारत जैसे विकासशील देशों की एक प्रमुख विशेषता है। शिक्षा मानव समाज में प्रगति की सबसे प्रभावी माध्यम है। महिलाओं की शिक्षा का प्रश्न किसी एक व्यक्ति के शिक्षा से मात्र जुड़ा मसला नहीं है बल्कि यह पूरे समाज के विकास एवं प्रगति का सूचक है, जैसा कि डॉ. भीमराव अंबेडकर का कहना था, "मैं किसी समाज की प्रगति का मूल्यांकन उस समाज में महिलाओं की स्थिति से लगाता हूँ" (चंद्रा, 2017)।[1] यह उद्धरण भारत के सामाजिक विकास की दिशा को समझने के लिए महत्वपूर्ण है, विशेषकर महिलाओं के सशक्तीकरण की दिशा में किए गए प्रयासों की सफलता और चुनौतियों को देखने के लिए। स्वतंत्रता के बाद, भारत ने स्वास्थ्य, शिक्षा, संचार, विज्ञान, तकनीकी और अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में व्यापक सुधार किए हैं। महिलाओं को शिक्षित, सशक्त और मजबूत बनाने के प्रयास भी किए गए हैं, लेकिन बावजूद इसके, महिलाओं की सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य और सशक्तीकरण आज भी गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहे हैं (एक्का, 2019)।[2] झारखंड राज्य की स्थिति इस संदर्भ में विशेष ध्यान देने योग्य है। झारखंड, एक ग्रामीण राज्य है जहाँ 2011 की जनगणना के अनुसार 75.95 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है (भारत का जनगणना, 2011)।[3] यहाँ पर शैक्षिक अवसंरचना और सुविधाओं की कमी है, विशेषकर उच्च शिक्षण संस्थाओं की कमी जो ग्रामीण युवाओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करने में बाधा डालती है। इसके परिणामस्वरूप, ग्रामीण क्षेत्रों से युवा आबादी, विशेषकर लड़कियाँ, नजदीक के शहरी क्षेत्रों और बड़े शहरों में पलायन कर रही हैं। ग्रामीण क्षेत्र की लड़कियों का उच्च शिक्षा के लिए पलायन, उनके शैक्षणिक विकास के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक और पारंपरिक चुनौतियों से भी जुड़ा है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता और उपलब्धता में कमी, सामाजिक मान्यताएँ, सुरक्षा की चिंताएँ और पारंपरिक सोच जैसी समस्याएँ इन्हें शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन करने के लिए मजबूर करती हैं। इसके अतिरिक्त, अभिभावकों की संकोचपूर्ण सोच और घर से दूर रहने की चुनौतियाँ भी इस प्रवृत्ति को प्रभावित करती हैं।

शोध पत्र के उद्देश्य एवं शोध प्रविधि:

इस अध्ययन का पहला उद्देश्य झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों से उच्च शिक्षा के लिए धनबाद शहर में पलायन करने वाली युवा लड़कियों की समस्याओं और चुनौतियों का गहराई से विश्लेषण करना है। जबकि अध्ययन का दूसरा उद्देश्य इन समस्याओं के समाधान के लिए ठोस और व्यावहारिक सुझाव प्रदान करना है। यह एक वर्णनात्मक शोध है जो अनुभवात्मक और द्वितीयक आंकड़ों एवं साहित्य समीक्षा पर आधारित है। अनुभवात्मक आंकड़े धनबाद के उच्च शिक्षण संस्थानों, सरकारी रिपोर्टों, और धनबाद शहर में विभिन्न छात्रावासों एवं वार्डों में किराए के घरों में रहने वाली ग्रामीण युवतियों के साक्षात्कार से प्राप्त किया गया। द्वितीयक आंकड़े और साहित्य समीक्षा विभिन्न शैक्षिक और सामाजिक अनुसंधानों, रिपोर्टों और सरकारी आँकड़ों पर आधारित हैं इस प्रकार, यह अध्ययन झारखंड में ग्रामीण युवा लड़कियों के शिक्षा हेतु पलायन की जटिलताओं को समझने और उनके समाधान के लिए प्रभावी रणनीतियाँ विकसित करने में एक महत्वपूर्ण अध्ययन है

ग्रामीण युवतियों का शिक्षा हेतु धनबाद शहर में पलायन:

धनबाद, झारखंड राज्य के एक प्रमुख आर्थिक केंद्र के रूप में जाना जाता है। यह शहर 1956 में जिला

बना और 2000 में झारखंड के गठन के बाद राज्य का हिस्सा बना (डिस्ट्रिक्ट सेन्सस हैंडबुक, 2023)।[4] धनबाद नगर निगम 2006 में स्थापित हुआ, जिसमें 2001 की जनगणना के अनुसार 258 राजस्व गाँव और 32 शहर शामिल किए गए (धनबाद नगर निगम, 2023)।[5] शहर का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 275 वर्ग किलोमीटर है और 2011 की जनगणना के अनुसार इसकी कुल जनसंख्या 1,162,472 है (जनगणना, 2011)।[6] धनबाद राज्य के दूसरे सबसे बड़े शहर के रूप में जाना जाता है और यह भारत का 42वां सबसे बड़ा शहर है, साथ ही 33वां मिलियन-प्लस शहरी समूह (जनगणना, 2011)।[7] धनबाद को 'भारत की कोयला राजधानी' के रूप में जाना जाता है, जहाँ कोयला खनन और संबंधित उद्योग प्रमुख हैं (चौधरी, 1964)।[9] भारतीय रेलवे के रेल मंडलों में धनबाद दूसरे स्थान पर है और टाटा स्टील, बीसीसीएल, ईसीएल और आईआईएससीओ जैसी कंपनियों के लिए कोयला खदानों का प्रमुख केंद्र है (अनंतरामु एवं अन्य, 2010)। इन उद्योगों की वजह से शहर में बड़े पैमाने पर प्रवास हुआ है, जिससे नगरीय जनसंख्या और बाजार का आकार तेजी से बढ़ रहा है (चंद्रा एवं कुमार, 2019)।[10] हाल के वर्षों में धनबाद शहर भी एक प्रमुख शैक्षिक प्रवासन केंद्र के रूप में उभरा है, जहाँ कई छात्र उच्च शिक्षा के लिए आते हैं, जिससे इसकी शैक्षिक प्रवासन की दर में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है। धनबाद शहर में देश प्रतिष्ठित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (इंडियन स्कूल ऑफ माइन्स), सीएसआईआर-सीआईएमएफआर अवस्थित हैं, वहीं बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय एवं आर. एस. मोर कॉलेज, एस.एस.एल.एन.टी. महिला महाविद्यालय, गुरु नानक कॉलेज, धनबाद, पीके रॉय मेमोरियल कॉलेज, धनबाद, के. एस जी एम कॉलेज निरसा, धनबाद, शहीद निर्मल महतो मेडिकल कॉलेज जैसे कई महाविद्यालयअवस्थित है जो उच्च शिक्षा के प्रमुख केंद्र हैं।

भारत की 2011 की जनगणना के अनुसार, 5.5 मिलियन छात्रों ने आंतरिक प्रवासियों के रूप में रिपोर्ट की, जिनमें से 0.74 मिलियन, 23.0 प्रतिशत की दशकीय वृद्धि दर के साथ, अंतरराज्यीय प्रवासी थे (भारत की जनगणना, 2011)। राज्यों, विशेषकर उत्तर-पूर्वी राज्यों, जम्मू और कश्मीर और केरल में छात्र प्रवासन के उच्च स्तर देखे गए हैं। 1991, 2001 और 2011 की जनगणना में उत्तर-पूर्व में क्रमशः 6.1, 5.8 और 6.9 प्रतिशत अंतरराज्यीय छात्र प्रवासी दर्ज किए गए, जबकि भारत का औसत 3.5, 2.6 और 2.5 प्रतिशत था। अंतर-राज्य छात्र प्रवासन में शीर्ष 10 राज्यों में उत्तर-पूर्व के सभी राज्य (असम को छोड़कर), दक्षिण भारत से केरल, उत्तर भारत से जम्मू-कश्मीर और हिमाचल प्रदेश शामिल हैं। बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्य प्रदेश, ओडिशा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड राष्ट्रीय औसत के करीब हैं (मिस्त्री एवं सरदार, 2022)।[11] एक अध्ययन में शोधकर्ताओं ने बताया है कि झारखंड में ग्रामीण पलायन एक सामान्य घटना है और यह क्षेत्र के लोगों के जीवन का एक तरीका बन गया है। लोग न केवल रोजगार के अवसरों की तलाश के लिए, बल्कि बेहतर शैक्षिक और अन्य अवसरों तक पहुंचने के लिए भी पलायन कर रहे हैं। झारखंड, जो दो दशकों से अधिक समय से एक अलग राज्य है, की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में अधिक सुधार नहीं हुआ है। झारखंड में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले लोगों में पलायन की प्रवृत्ति सबसे अधिक पाई गई है, जबकि अशिक्षित लोगों में यह प्रवृत्ति कम है। राज्य में गाँव दूर-दूर स्थित होते हैं, और उच्च शैक्षणिक संस्थान मुख्यतः राज्य की राजधानी और जिला मुख्यालयों के आसपास केंद्रित होते हैं। इसलिए, जो छात्र उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें शहरों की ओर पलायन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, ये प्रवासी अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद अक्सर अपने गाँवों की ओर लौटते नहीं हैं और वे खेतों की बजाय शहरों में सेवा क्षेत्रों में काम करना पसंद करते हैं, जिससे शिक्षित जनसंख्या के बीच पलायन की दर बढ़ जाती है (कुमार, 2015)।[12]

शैक्षिक प्रवासन की प्रक्रिया में छात्र शिक्षा के लिए अपने निवास स्थान से राजनीतिक और भौगोलिक

सीमाओं के पार प्रवास करते हैं। इस प्रक्रिया में अभिभावक, शैक्षणिक संस्थान और सरकार जैसे कई हितधारक शामिल होते हैं। शैक्षिक प्रवासन की संकल्पना के साथ समय, उम्र, लिंग, जाति और आय का स्तर जैसे कई सामाजिक-आर्थिक कारक जुड़े होते हैं जिनकी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सबसे अधिक 16 से 30 वर्ष की आयु के युवा वर्ग उच्च शिक्षा के लिए प्रवास करते हैं क्योंकि प्राथमिक शिक्षा कमोबेश देश के सभी क्षेत्रों में उपलब्ध है, जबकि 30 से अधिक उम्र के लोगों में इसकी संभावना कम होती है। धनबाद में ग्रामीण युवा लड़कियों के शैक्षिक प्रवासन की वर्तमान स्थिति पर चर्चा करते हुए, विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि ग्रामीण युवा लड़कियों का शिक्षा के लिए प्रवास आयु, लिंग, समुदाय, धर्म, क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, रोजगार के अवसर, उच्च शिक्षण संस्थानों की उपलब्धता, और स्थानीय स्तर पर शिक्षा प्राप्त करने के अवसरों पर निर्भर करता है। अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि बेहतर रोजगार के अवसर प्राप्त करने के लिए, झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों से हर साल हजारों ग्रामीण युवतियां शहरों की ओर पलायन करते हैं, जहाँ उच्च शिक्षा के अवसर और सुविधाएँ उपलब्ध हैं। हालांकि ग्रामीण क्षेत्रों की युवा लड़कियों का उच्च शिक्षा के लिए पलायन लड़कों की तुलना में कम है, इसके पीछे विवाह संबंधी कारक, समाज की रूढ़िवादी सोच, और सुरक्षा संबंधी चिंताएँ प्रमुख कारण हैं। फिर भी, पहले के मुकाबले ग्रामीण क्षेत्रों से लड़कियों के शिक्षा के लिए पलायन में वृद्धि हुई है। यह देखा गया है कि हाई स्कूल तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद, ग्रामीण क्षेत्रों की लड़कियाँ उच्च शिक्षा के लिए बाहर नहीं निकल पातीं, क्योंकि स्थानीय स्तर पर उच्च शिक्षण संस्थानों की कमी और परिवार की कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण वे आगे की पढ़ाई जारी नहीं रख पातीं (कुमार, 2015)।

ग्रामीण युवतियों का शिक्षा हेतु धनबाद शहर में पलायन के कारणों का विश्लेषण :

ग्रामीण युवतियों का शिक्षा हेतु धनबाद शहर में पलायन एक महत्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक प्रवृत्ति है, जो शैक्षणिक अवसरों और जीवन स्तर की बेहतर संभावनाओं की खोज में उत्पन्न होती है। झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता और संसाधनों की कमी के चलते, युवतियाँ बेहतर शैक्षणिक सुविधाओं और करियर संभावनाओं की तलाश में धनबाद जैसे शहरी केंद्रों की ओर पलायन करती हैं। धनबाद, जो एक प्रमुख औद्योगिक और शैक्षणिक केंद्र है, में उन्नत शिक्षण संस्थान, व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा के अवसर, और बेहतर जीवन स्तर की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं की कमी, उच्च शिक्षा संस्थानों की दूरी, और सांस्कृतिक अवरोध भी पलायन को प्रेरित करते हैं। इस प्रवृत्ति का अध्ययन करना यह समझने में सहायक होगा कि किस प्रकार ग्रामीण युवतियाँ शहरी जीवन के प्रति आकर्षित होती हैं और शिक्षा के लिए पलायन करती हैं। निम्नलिखित प्रमुख कारक धनबाद शहर में ग्रामीण युवतियों के पलायन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं -

- *उच्च शिक्षा का अभाव* : झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा की कमी मुख्य कारण है जो ग्रामीण युवतियों को धनबाद जैसे शहरी केंद्रों की ओर पलायन करने को मजबूर करती है। यहाँ उच्च शिक्षा के संस्थान कम हैं या गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की कमी है, जिससे छात्राएँ अच्छी शिक्षा प्राप्त करने के लिए शहरों की ओर रुख करती हैं। धनबाद में उच्च शिक्षा के संस्थानों की प्रचुरता और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की उपलब्धता ग्रामीण छात्राओं को आकर्षित करती है, जिससे वे पलायन करती हैं।

- व्यावसायिक शिक्षा का अभाव: ग्रामीण क्षेत्रों में व्यावसायिक शिक्षा की कमी के कारण युवतियों के पास नौकरी के योग्य कौशल विकसित करने के सीमित अवसर होते हैं। व्यावसायिक शिक्षा का अभाव उन्हें धनबाद जैसे शहरों में पलायन करने के लिए प्रेरित करता है, जहाँ वे कौशल आधारित कोर्स और प्रशिक्षण प्राप्त

कर सकती हैं। यह पलायन विशेष रूप से उन युवतियों के लिए महत्वपूर्ण होता है जो रोजगार के बेहतर अवसरों की तलाश में होती हैं।

- *तकनीकी शिक्षा का अभाव* : ग्रामीण इलाकों में तकनीकी शिक्षा की कमी से युवतियों को आधुनिक उद्योगों और तकनीकी क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धी बनने के अवसर नहीं मिलते। तकनीकी शिक्षा की अनुपलब्धता उन्हें शहरों में पलायन करने के लिए प्रेरित करती है, जहाँ उन्नत तकनीकी पाठ्यक्रम और प्रशिक्षण कार्यक्रम उपलब्ध होते हैं। इससे वे बेहतर करियर संभावनाओं की ओर बढ़ सकती हैं और अपने पेशेवर कौशल को उन्नत कर सकती हैं।

- *कोचिंग और शैक्षणिक संस्थानों की कमी* : ग्रामीण क्षेत्रों में कोचिंग और अन्य शैक्षणिक संस्थानों की कमी के कारण छात्राएं प्रतियोगी परीक्षाओं और उच्च शिक्षा के लिए आवश्यक तैयारी नहीं कर पातीं। यह कमी धनबाद जैसे शहरों की ओर पलायन को बढ़ावा देती है, जहाँ उन्हें विशेष कोचिंग क्लासेज और उन्नत शैक्षणिक संस्थान मिलते हैं। इससे वे अपनी परीक्षा में सफलता की संभावनाओं को बढ़ा सकती हैं और बेहतर शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं।

- *छात्राओं की उम्र* : छात्राओं की उम्र भी पलायन का एक महत्वपूर्ण कारण है। जैसे-जैसे युवतियाँ शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर पहुंचती हैं, वे उच्च शिक्षा के लिए शहरी क्षेत्रों की ओर बढ़ती हैं। 18-25 साल की आयु वर्ग की छात्राएं जब अपने करियर और शिक्षा के अगले चरण की योजना बनाती हैं, तो वे शहरों की ओर पलायन करती हैं जहाँ बेहतर शैक्षणिक अवसर और सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं।

- *परिवार की संरचना* : परिवार की संरचना, जैसे कि परिवार के सदस्य, आर्थिक स्थिति, और परिवार का समर्थन, पलायन के निर्णय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विस्तारित परिवार या आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों की युवतियाँ अधिकतर पलायन करती हैं क्योंकि उन्हें शहरी क्षेत्रों में बेहतर शिक्षा और रोजगार की संभावना दिखती है। इसके अलावा, परिवार के समर्थन की कमी भी पलायन को प्रभावित करती है, जिससे वे शहरी क्षेत्रों की ओर बढ़ती हैं।

- *परिवार की आय का स्रोत* : परिवार की आय का स्रोत भी पलायन के कारणों में शामिल है। जिन परिवारों की आय कम होती है, उनके लिए अपनी बेटियों को शिक्षा के लिए शहरों में भेजना कठिन होता है। इसके विपरीत, जिनके पास बेहतर आर्थिक संसाधन होते हैं, वे अपनी बेटियों को शिक्षा और रोजगार के बेहतर अवसरों के लिए शहरों में भेजने के लिए प्रेरित होते हैं। आर्थिक स्थिति पलायन के लिए एक प्रमुख प्रेरक होती है।

- *छात्राओं के रहन-सहन का स्तर* : छात्राओं के रहन-सहन का स्तर भी पलायन के एक कारण के रूप में देखा जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित सुविधाओं और बुनियादी सेवाओं के कारण छात्राएं बेहतर जीवन स्तर और आधुनिक सुविधाओं की खोज में शहरों की ओर पलायन करती हैं। धनबाद जैसे शहरों में बेहतर आवास, स्वास्थ्य सेवाएँ, और शिक्षा की सुविधाएं उन्हें आकर्षित करती हैं और पलायन को प्रोत्साहित करती हैं।

- *आधारभूत सुविधाओं की कमी* : ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं की कमी, जैसे कि अच्छे विद्यालय, पुस्तकालय, और इंटरनेट, पलायन को प्रेरित करती है। जब छात्राओं को बेहतर अध्ययन सामग्री और सुविधाओं की आवश्यकता होती है, तो वे धनबाद जैसे शहरी क्षेत्रों की ओर जाती हैं जहाँ ये सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। यह पलायन उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और बेहतर भविष्य की ओर ले जाता है।

- *शैक्षणिक संस्थानों की दूरी* : ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षणिक संस्थानों की दूरी भी पलायन का एक महत्वपूर्ण कारण है। यदि उच्च शिक्षा के संस्थान दूर स्थित होते हैं, तो छात्राओं को रोजाना यात्रा करने में कठिनाई होती है। इस दूरी के कारण, वे शहरों की ओर पलायन करती हैं जहाँ शैक्षणिक संस्थान नजदीक होते हैं और उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करने में सुविधा होती है। यह पलायन उन्हें शिक्षा के बेहतर अवसर प्रदान करता है।
- *स्थानीय सांस्कृतिक और सामाजिक अवरोध* : ग्रामीण क्षेत्रों में सांस्कृतिक और सामाजिक मानदंड युवतियों की शिक्षा और उनके भविष्य पर प्रभाव डालते हैं। पारंपरिक सोच और समाजिक दबाव की वजह से लड़कियों को शिक्षा में रुकावटें आती हैं। धनबाद जैसे शहरी केंद्रों में आधुनिक सोच और खुले माहौल की उपलब्धता उन्हें पलायन के लिए प्रेरित करती है। यहाँ वे स्वतंत्रता और समान अवसरों की खोज में आती हैं, जो उन्हें स्थानीय समुदाय में नहीं मिलते।
- *आर्थिक अवसरों की कमी* : ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित आर्थिक अवसरों और रोजगार की कमी युवतियों को धनबाद जैसे औद्योगिक और वाणिज्यिक केंद्रों की ओर पलायन करने के लिए प्रेरित करती है। धनबाद में रोजगार की अधिक संभावनाएं और औद्योगिक विकास के कारण, युवतियां यहाँ बेहतर करियर और आर्थिक स्थिरता की उम्मीद में आती हैं। यह पलायन उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने का अवसर प्रदान करता है।
- *परिवार की सामाजिक स्थिति और समर्थन की कमी* : परिवार की सामाजिक स्थिति और समर्थन की कमी भी पलायन के कारणों में शामिल होती है। गरीब या सामाजिक रूप से कमजोर परिवारों के लिए, अपनी बेटियों की उच्च शिक्षा का खर्च उठाना मुश्किल होता है। इसके अलावा, परिवार का समर्थन न मिलने की स्थिति में भी युवतियाँ शहरों में पलायन करती हैं जहाँ वे अधिक समर्थन और संसाधन प्राप्त कर सकती हैं। यह पलायन उन्हें बेहतर शिक्षा और सामाजिक स्थिरता की ओर ले जाता है।

धनबाद शहर में शिक्षा कारणों से आने वाले ग्रामीण युवतियों से जुड़ी चुनौतियाँ एवं समाधान :

- *आर्थिक चुनौतियाँ*

धनबाद में रहने की लागत ग्रामीण युवतियों के लिए एक प्रमुख आर्थिक चुनौती है। उच्च किराया और आवास की गुणवत्ता की कमी से वे उचित और सुरक्षित आवास ढूंढने में समस्याओं का सामना करती हैं। उच्च शहरी लागत उनके बजट पर प्रभाव डालती हैं। शहरी संस्थानों की उच्च फीस और अन्य शैक्षणिक खर्चे, जैसे किताबें और अध्ययन सामग्री, ग्रामीण परिवारों के लिए भारपूर्ण हो सकते हैं। यह आर्थिक बोझ छात्राओं के लिए वित्तीय तनाव का कारण बनता है। पढ़ाई के साथ-साथ अतिरिक्त आय अर्जित करने के लिए उपलब्ध रोजगार के अवसर सीमित हो सकते हैं। यह युवतियों को अपनी आर्थिक स्थिति को स्थिर करने में कठिनाई उत्पन्न करता है। खाने, कपड़े, और परिवहन जैसे रोजमर्रा के खर्चों की उच्च लागत भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। इन खर्चों को मैनेज करना ग्रामीण युवतियों के लिए मुश्किल हो सकता है। परिवार की आर्थिक स्थिति की कमी की वजह से छात्राओं को वित्तीय सहायता नहीं मिल पाती। इसके कारण उन्हें अपने शिक्षा और जीवन यापन की लागत को स्वयं ही उठाना पड़ता है।

- *सामाजिक चुनौतियाँ*

शहरी और ग्रामीण संस्कारों में भिन्नता के कारण युवतियों को सामाजिक अनुकूलन में कठिनाई होती है। नए माहौल में समायोजन के लिए उन्हें संघर्ष करना पड़ता है। धनबाद में नए दोस्त और सामाजिक नेटवर्क स्थापित करने में समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। ग्रामीण युवतियाँ नए सामाजिक दायरे में सहज महसूस करने

के लिए संघर्ष करती हैं। शहरी जीवन में सामाजिक अलगाव और अकेलापन भी एक चुनौती है। यह भावनात्मक तनाव और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डाल सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों से आये लोग अक्सर सामाजिक समर्थन के बिना होते हैं, जो उनकी शिक्षा और जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। शहरी और ग्रामीण संस्कृतियों के बीच भिन्नताएँ सामाजिक समस्याओं का कारण बन सकती हैं। ग्रामीण युवतियाँ नई सांस्कृतिक परंपराओं और सामाजिक प्रथाओं के साथ तालमेल बिठाने में कठिनाई महसूस कर सकती हैं।

- *सांस्कृतिक चुनौतियाँ*

धनबाद में स्थानीय भाषा और बोलचाल की आदतें ग्रामीण युवतियों के लिए एक सांस्कृतिक चुनौती हो सकती हैं। भाषा की समस्या संवाद और सामाजिक समावेशन को प्रभावित कर सकती है। ग्रामीण और शहरी संस्कृतियों में भिन्नताएँ सामाजिक और व्यक्तिगत समायोजन में बाधा डाल सकती हैं। नई सांस्कृतिक मान्यताओं के साथ सामंजस्य बैठाना कठिन हो सकता है। शहरी समाज की अपेक्षाएँ और जीवनशैली ग्रामीण युवतियों के लिए नई और अज्ञात हो सकती हैं, जिससे उन्हें सांस्कृतिक तनाव का सामना करना पड़ता है। शहरी जीवन की आधुनिकता और ग्रामीण परंपराओं के बीच संघर्ष भी एक समस्या है। युवतियाँ अक्सर इन परंपराओं के साथ शहरी जीवन के सामंजस्य को संतुलित करने में कठिनाई महसूस करती हैं। शहरी सामाजिक नियम और आदतें ग्रामीण युवतियों के लिए चुनौतीपूर्ण हो सकती हैं। उन्हें इन नए नियमों और आदतों के साथ अपने आप को ढालने में कठिनाई हो सकती है।

- *मनोवैज्ञानिक चुनौतियाँ*

शहरी जीवन की नई चुनौतियों, जैसे कि अकेलापन और अनिश्चितता, मानसिक तनाव और चिंता का कारण बन सकती हैं। यह तनाव शिक्षा और व्यक्तिगत विकास को प्रभावित कर सकता है। परिवार से दूर रहना और नए माहौल में अकेले रहना मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डाल सकता है। युवतियाँ अक्सर अकेलापन और भावनात्मक असुरक्षा का सामना करती हैं। नए माहौल में खुद को अनुकूलित करने की चुनौतियों के कारण स्व-संयम की कमी हो सकती है। यह समस्या मानसिक तनाव और आत्म-संवाद को प्रभावित कर सकती है। शहरी समाज में खुद को स्वीकार कराने की प्रक्रिया भी मानसिक दबाव का कारण बन सकती है। ग्रामीण युवतियों को समाज में अपनी पहचान स्थापित करने में कठिनाई हो सकती है। नए शहरी माहौल और शिक्षा प्रणाली के साथ सामंजस्य स्थापित करना मानसिक रूप से चुनौतीपूर्ण हो सकता है। युवतियों को नई परिस्थितियों के साथ तालमेल बैठाने में कठिनाई हो सकती है।

- *सुरक्षा चुनौतियाँ*

शहरी क्षेत्रों में व्यक्तिगत सुरक्षा एक प्रमुख चिंता हो सकती है। ग्रामीण युवतियाँ अपरिचित स्थानों और संभावित खतरों से सुरक्षा की चिंता करती हैं। धनबाद में यातायात और परिवहन की समस्याएँ भी सुरक्षा के मुद्दों को जन्म देती हैं। सुरक्षित और सुविधाजनक परिवहन विकल्पों की कमी युवतियों को चिंतित कर सकती है। शहरी अपराध और असुरक्षित इलाकों की वजह से सुरक्षा की चिंता बढ़ जाती है। युवतियाँ अपराध और उत्पीड़न के संभावित खतरों से चिंतित हो सकती हैं। सामाजिक शोषण और उत्पीड़न की संभावना भी एक सुरक्षा चिंता हो सकती है। शहरी परिवेश में नए और अपरिचित सामाजिक संपर्कों के कारण युवतियाँ असुरक्षित महसूस कर सकती हैं। स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और गुणवत्ता की कमी भी सुरक्षा की चिंता को प्रभावित कर सकती है। अप्रत्याशित स्वास्थ्य संकट और आपातकालीन सेवाओं की कमी सुरक्षा को एक चुनौती बना सकती है।

ग्रामीण युवतियों के धनबाद शहर में शिक्षा प्राप्त करने के दौरान आने वाली समस्याओं का समाधान बहुपरकारी दृष्टिकोण से किया जा सकता है। सबसे पहले, आर्थिक और आवासीय समस्याओं को हल करने के लिए सरकारी और निजी क्षेत्र की पहल की आवश्यकता है। शहरी क्षेत्रों में छात्रावासों की संख्या बढ़ाने और किराए में सब्सिडी देने से युवतियों को सुरक्षित और सस्ते आवास की सुविधा मिल सकती है। साथ ही, शैक्षणिक संस्थानों द्वारा छात्रवृत्तियों और आर्थिक सहायता योजनाओं को बढ़ावा देना आवश्यक है, ताकि शिक्षा की उच्च लागत को उठाने में मदद मिल सके। इसके अतिरिक्त, प्रोफेशनल कोचिंग और कैरियर काउंसलिंग सेवाओं का संचालन किया जाना चाहिए, ताकि ग्रामीण युवतियाँ अपने करियर विकल्पों को समझ सकें और रोजगार की दिशा में सही कदम उठा सकें। इन उपायों से आर्थिक बोझ कम होगा और युवतियों की शैक्षणिक सफलता सुनिश्चित की जा सकेगी। सामाजिक, सांस्कृतिक और सुरक्षा चुनौतियों का समाधान संवेदनशीलता और स्थानीय समर्थन के माध्यम से किया जा सकता है। शहरी समाज में संस्कृतिक संगम के कार्यक्रमों और समाजिक कार्यशालाओं का आयोजन किया जाना चाहिए, जिससे ग्रामीण युवतियाँ शहर के सांस्कृतिक माहौल में सहजता से समाहित हो सकें। स्थानीय समाजिक नेटवर्क और समर्थन समूहों की स्थापना भी आवश्यक है, जो युवतियों को सामाजिक सुरक्षा और भावनात्मक समर्थन प्रदान करें। इसके अतिरिक्त, सुरक्षा की दृष्टि से, शहर में सुरक्षित परिवहन व्यवस्था और निगरानी तंत्र की स्थापना की जानी चाहिए, ताकि युवतियाँ अपराध और असुरक्षित परिस्थितियों से बच सकें। इस प्रकार, इन विभिन्न पहलुओं पर ध्यान देने से ग्रामीण युवतियों की समस्याओं का प्रभावी समाधान संभव हो सकेगा और वे धनबाद में अपने शैक्षणिक और व्यक्तिगत जीवन को बेहतर ढंग से प्रबंधित कर सकेंगी।

निष्कर्ष :

ग्रामीण युवतियों की शिक्षा संबंधी समस्याओं का समाधान एक बहुपरकारी दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जो उनके समग्र विकास और समावेशी शिक्षा को सुनिश्चित कर सके। धनबाद शहर में उच्च शिक्षा के लिए आने वाली ग्रामीण युवतियों को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, और सुरक्षा संबंधित समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं को दूर करने के लिए, शैक्षणिक संस्थानों और सरकारी विभागों को आवश्यक कदम उठाने चाहिए। आर्थिक और आवासीय समस्याओं का समाधान सरकारी छात्रावासों की संख्या बढ़ाने, किराया सब्सिडी देने, और छात्रवृत्तियों की उपलब्धता को सुनिश्चित करने से किया जा सकता है। साथ ही, सामाजिक और सांस्कृतिक समावेशन को बढ़ावा देने के लिए कार्यशालाओं और सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रमों का आयोजन आवश्यक है। सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए, सुरक्षित परिवहन और निगरानी तंत्र की स्थापना करनी चाहिए। इन उपायों के माध्यम से, ग्रामीण युवतियों की समस्याओं का प्रभावी समाधान संभव होगा, जिससे वे शिक्षा के क्षेत्र में अपनी पूरी क्षमताओं को उजागर कर सकेंगी और एक सुरक्षित, समृद्ध, और सशक्त भविष्य की दिशा में अग्रसर हो सकेंगी

संदर्भ :

1. चंद्रा, एम. (2017). डॉ भीमराव अम्बेडकर एवं सामाजिक न्याय की अवधारणा. विक्टोरियस पब्लिशर्स (इंडिया), दिल्ली, पी.पी. 20-22.
2. एक्का, एम (2019). भारत में महिला सशक्तिकरण : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं डॉ अम्बेडकर का योगदान. इक्कसवीं सदी का भारत एवं डॉ भीमराव अम्बेडकर की प्रासंगिकता, मेश्राम एवं अन्य (सं), विक्टोरियस पब्लिशर्स (इंडिया) नई दिल्ली, पी.पी. 54-56.

3. सेन्सस ऑफ इंडिया(2011). ऑफिस ऑफ द रजिस्ट्रार जेनरल एंड सेन्सस कमिश्नर, इंडिया.
4. डिस्ट्रिक्ट सेन्सस हैंडबुक धनबाद (2014). सेन्सस ऑफ इंडिया, 2011, झारखण्ड, सीरीज- 21, पार्ट- XII. , भारत के रजिस्ट्रार जनरल एवं जनगणना आयुक्त का कार्यालय (ओआरजीआई). पृष्ठ : 04-29.
5. ऑफिसियल वेबसाइट, धनबाद, जिला प्रशासन, झारखण्ड सरकार. जिला के बारे में, इतिहास https://dhanbad.nic.in
6. ऑफिसियल वेबसाइट, धनबाद नगर निगम, झारखण्ड सरकार, परिचय https://udhd.jharkhand.gov.in/ulb/dhanbad/dhanbad.aspñ
7. भारत का जनगणना (2011). शहर, गांव और वार्ड स्तर पर प्राथमिक जनगणना सार, झारखंड - जिला ध नबाद - 2011. भारत के रजिस्ट्रार जनरल एवं जनगणना आयुक्त का कार्यालय, गृह मंत्रालय, भारत सरकार.
8. चौधरी, पी.सी.आर.(1964). बिहार जिला गजेटियर-धनबाद. अधीक्षक सचिवालय प्रेस, पटना, बिहार पृष्ठ : 196-309
9. अनंतरामु, वी., सिंह, जी. और रेड्डी, वेंकट (2010). एयर क्वालिटी इवैल्यूएशन इन इंडिया - अ केस स्टडी ऑफ धनबाद. इंटरनेशनल जर्नल इन अर्थ साइंस एंड इंजीनियरिंग. वॉल्यूम- 3, पृष्ठ- 409-415.
10. चंद्रा, एम. एवं कुमार, आर.(2019). कंटेम्पररी इंडिया ख़सम रिफ्लेकसन. नवयुग बुक इंटरनेशनल, गौतम विहार, दिल्ली, पृष्ठ : 179-190.
11. मिस्त्री, अविजीत और सरदार, सुदर्शन (2022). उत्तर-पूर्व भारत से छात्र प्रवासन: स्तर, प्रवृत्ति, पैटर्न और चुनौतियाँ. जनसांख्यिकी भारत. वॉल्यूम -51. पी.पी. 40-62.
12. कुमार, एस. (2015). उच्च शिक्षा में भारत का व्यापार. उच्च शिक्षा, 70(3), पी.पी. 441-467

●●●

पुरुष कहानीकारों की लेखनी में स्त्री : परंपरा से आधुनिकता की ओर

❍ श्रीजा. एम[1]
❍ डॉ. प्रीति के[2]

आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री की स्थिति का चित्रण विभिन्न रूपों में हुआ है, जो समाज में उसके बदलते स्थान और भूमिका को रेखांकित करता है। हिंदी साहित्य में कई प्रमुख पुरुष कहानीकार हैं जिन्होंने अपनी कहानियों में स्त्री पात्रों का सजीव और विविधतापूर्ण चित्रण किया है। ये कहानियाँ अक्सर समाज और संस्कृति में हो रहे परिवर्तनों का प्रतिबिंब होती हैं।

आधुनिक काल में भी कई पुरुष कहानीकारों की कहानियों में स्त्री को पारंपरिक भूमिकाओं में दिखाया गया है। इसमें स्त्री को घरेलू, समर्पित और त्याग की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ऐसे चित्रण में स्त्री का स्थान अक्सर परिवार और समाज के सीमित दायरे में ही होता है। वह पत्नी, माँ, बहन, बेटी जैसी भूमिकाओं में दिखाई देती हैं, जहाँ उसकी पहचान उसके रिश्तों के माध्यम से ही निर्धारित होती है। कुछ आधुनिक पुरुष कहानीकारों ने स्त्री पात्रों के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं, मनोविज्ञान और भावनाओं को गहराई से उकेरा है। ऐसे चित्रण में स्त्री को केवल एक सामाजिक भूमिका तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उसे एक स्वतंत्र, सोचने-समझने वाली व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है।[1] यहाँ स्त्री के भीतर चल रहे मानसिक संघर्ष, भावनात्मक उतार-चढ़ाव और उसके जीवन के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखा गया है।

प्रेमचंद की कहानियों में स्त्री पात्रों का चित्रण उनकी गहरी संवेदनशीलता और सामाजिक वास्तविकता के साथ किया गया है। उनके लेखन में स्त्री केवल एक घरेलू भूमिका निभाने वाली पात्र नहीं होती, बल्कि वह सामाजिक, आर्थिक और नैतिक संघर्षों का सामना करती हुई एक जीवंत व्यक्तित्व के रूप में उभरती है। "प्रेमचंद की कहानियों में स्त्री पात्रों के विभिन्न रूप और उनके संघर्षशील जीवन का विस्तार से चित्रण मिलता है। ये स्त्री पात्र समाज के विभिन्न पहलुओं और समस्याओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनके स्त्री पात्र न केवल

1. शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, कण्णूर विश्वविद्यालय, केरल।
2. एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभाग अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, कण्णूर विश्वविद्यालय, केरल।

भारतीय समाज की पारंपरिक धारणाओं को चुनौती देते हैं, बल्कि सामाजिक बदलाव के प्रतीक भी हैं।"[2]

निर्मल वर्मा की कहानियों में स्त्री पात्र आमतौर पर मनोवैज्ञानिक रूप से जटिल होते हैं। 'परिंदे' में स्त्री पात्र अपने अंदर की बेचैनी और जीवन की असंतुष्टि को अनुभव करती है, जिसे लेखक ने सूक्ष्मता से चित्रित किया है। राजेंद्र यादव की कहानियाँ समाज में हो रहे बदलाव और स्त्री के संघर्ष को चित्रित करती हैं। उनकी कहानियों में स्त्री अपने अस्तित्व और पहचान के लिए संघर्ष करती हैं। 'उखड़े हुए लोग' में स्त्री पात्र समाज के दबावों से जूझती हुई दिखाई देती है।

भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' में स्त्री पात्र घरेलू जीवन और उसके भीतर की सामाजिक गतिशीलता का प्रतीक है। कहानी में स्त्री का चित्रण उसकी व्यथा और संघर्ष के साथ होता है, जो समाज की पितृसत्तात्मक संरचना के खिलाफ एक मौन विद्रोह करती है। 'काली आँधी' कहानी में कमलेश्वर ने स्त्री पात्र को सामाजिक अन्याय और पितृसत्ता के खिलाफ संघर्षरत दिखाया है। यहाँ स्त्री का चित्रण साहसिक और आत्मनिर्भरता की भावना के साथ किया गया है। ज्ञानरंजन ने अपनी कहानियों में स्त्री के मनोविज्ञान और सामाजिक संदर्भों को गहराई से उकेरा है। उनकी 'पिता' शीर्षक कहानी में स्त्री को समाज की परंपराओं और दायित्वों के बीच संघर्षरत दिखाया गया है।

समाज में व्याप्त पितृसत्ता ने स्त्रियों के जीवन को नियंत्रित किया है, जहाँ उन्हें शिक्षा, रोजगार, और सामाजिक विकास के अवसरों से वंचित रखा गया। हालांकि, पिछले कुछ दशकों में इस स्थिति में काफी बदलाव आया है। महिलाओं ने शिक्षा, रोजगार, राजनीति, और सामाजिक सुधार आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी के माध्यम से अपनी स्थिति को सुधारने का प्रयास किया है। महिलाएँ अब अपनी आवाज उठाने, अधिकारों के लिए संघर्ष करने, और समाज में बराबरी का स्थान पाने के लिए प्रयासरत हैं। फिर भी, समाज के कई हिस्सों में पारंपरिक मानसिकता और भेदभावपूर्ण रवैया कायम है। महिलाओं को अब भी कई स्थानों पर समान अवसरों और अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ता है। नारी की उन्नति और समाज की उन्नति दोनों ही विकास के लिए अनिवार्य हैं। समाज की प्रगति का मार्ग नारी की प्रगति से होकर गुजरता है।

राज गोपाल की 'बेटी हो तो ऐसी' में नारियों के बीच जागरूकता और चेतना की गहरी झलक दिखाई देती है। परिवार को संभालने के लिए प्रत्येक सदस्य का जागरूक होना आवश्यक है। माता-पिता अपने बुढ़ापे में अपने घर पर ही रहना चाहते हैं, लेकिन दो बेटियों ने अपनी व्यस्तता के कारण उन्हें वृद्धाश्रम भेजने का फैसला किया। हालांकि, तीसरी बेटी, जो अमेरिका में रहती है, बीस सालों के बाद घर वापस आकर अपने माता-पिता की खुशी के लिए सभी बाधाओं को दूर कर देती है।

जसविंदर शर्मा की 'तेजाब' और एस.आर. हरनोट की 'एम.डॉट कोम' जैसी कहानियाँ नारी सशक्तीकरण के अद्‌भुत उदाहरण हैं, जहाँ तकनीक और शिक्षा के माध्यम से नारी ने अपने जीवन को नई दिशा दी है। 'तेजाब' कहानी में मुख्य पात्र के रूप में एक महिला को दिखाया गया है, जो अपने पति की शराब की लत और उसके हिंसक व्यवहार का शिकार होती है। उसका पति, जो मर्चेंट नेवी में काम करता है, अपनी आकर्षक और सुंदर छवि के बावजूद शराब की लत से ग्रस्त है। उसकी पत्नी, जो माँ बनने वाली होती है, इस डर और असुरक्षा के कारण अपने मायके लौट आती है। लेकिन एक रात, जब वह चुपचाप घर लौटती है, तो उसका पति उस पर तेजाब फेंक देता है, जिससे उसका चेहरा और शरीर गंभीर रूप से झुलस जाते हैं। इसके बावजूद, नारी ने हार नहीं मानी। उसने अपने जीवन को एक नई दिशा दी और अपनी अधूरी कानून की पढ़ाई पूरी की। इसके बाद, उसने 'तेजाब.कोम' नामक संस्था की स्थापना की, जो तेजाब हमलों से पीड़ित महिलाओं के लिए एक

आशा की किरण बन गई। इस संस्था के माध्यम से, वह न केवल पीड़ित महिलाओं को सहायता प्रदान करती है, बल्कि अनपढ़ लोगों के बीच जागरूकता भी फैलाती है ताकि वे भी अपने अधिकारों को पहचान सकें और उनका उपयोग कर सकें।

'एम.डॉट कोम' कहानी में, जानवरों के साथ जीवन बिताने वाली एक बूढ़ी माँ अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए अपने बल पर आगे बढ़कर सभी समस्याओं का समाधान करती है। वह अपनी मरी हुई भैंस को दफनाने के लिए उचित व्यवस्था करने में कठिनाई का सामना करती है। कहानी ग्रामीण भारत की पारंपरिक व्यवस्था और आधुनिकता के बीच के संघर्ष को प्रस्तुत करती है। उसके दो बेटे और उनके परिवार भी हैं, लेकिन गोबर की गंध के कारण बहुएँ बूढ़ी माँ के पास नहीं आतीं। एक दिन, माँ ने देखा कि उसका बैल मर गया है। बैल को बाहर निकालने के लिए वह पड़ोसियों से कुछ नहीं कहती, बल्कि अकेले ही जाकर कंप्यूटर तकनीक में सभी जानवरों का नाम पहले से रजिस्टर करती है और फिर मरे हुए बैल को हटाने का इंतजाम करती है। नई पीढ़ी के साथ आगे बढ़ने के लिए, बिना चप्पल पहने रहने वाली यह बूढ़ी माँ भी साइबर दुनिया में पहुँच गई। कहानीकार ने स्त्री चरित्र और उनके व्यक्तित्व को नए मोड़ देकर नारी प्रगति की ओर एक नई दिशा दी है। यह कहानी सामाजिक परिवर्तनों के प्रति एक संवेदनशील दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, जहाँ वृद्ध महिला की परेशानियों और उसकी पारंपरिक धारणाओं के टकराव को दर्शाया गया है।

'काला बाप गोरा बाप' कहानी में जमीला का सामाजिक और व्यक्तिगत विकास स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। दस वर्षों में जमीला ने न केवल अपनी आर्थिक स्थिति सुधारी है, बल्कि उसने एक नई पहचान भी बनाई है। जमीला का मातृत्व और पत्नीव्रत उसे नारी शक्ति का प्रतीक बनाता है। अपनी कठिनाइयों के बावजूद, जमीला अपने बच्चों को पालने-पोसने और उन्हें जीवन में आगे बढ़ाने में सफल होती है। यह उसका साहस और समर्पण है जो उसे समाज में एक मजबूत स्त्री के रूप में स्थापित करता है। उसने फिल्म उद्योग में अपनी जगह बनाई है और अपने संघर्ष और आत्म-संवर्धन के माध्यम से एक मजबूत और आत्मनिर्भर महिला के रूप में उभरी है। जमीला की बेटियाँ, शीरी और शहनाज, भी अपने-अपने क्षेत्रों में सफल हैं। शीरी फिल्म उद्योग में काम करती है, जबकि शहनाज नृत्य और अभिनय में सक्रिय है। यह दर्शाता है कि जमीला ने न केवल अपनी स्वायत्तता और सशक्तीकरण की दिशा में प्रयास किए, बल्कि अपनी बेटियों की भी। "स्त्री के सशक्तीकरण की दिशा में केवल आर्थिक स्वतंत्रता ही नहीं, बल्कि सामाजिक मान्यताओं को चुनौती देना और आत्म-सम्मान को बनाए रखना भी महत्वपूर्ण है"।[3] जमीला ने अपने प्रयासों और संघर्ष के माध्यम से यह साबित किया कि वह पारंपरिक बंधनों से मुक्त होकर अपनी पहचान बना सकती है। इस प्रकार, 'काला बाप गोरा बाप' कहानी स्त्री सशक्तीकरण के परिप्रेक्ष्य में समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती है और यह दिखाती है कि कैसे स्त्रियाँ अपने सामर्थ्य और संघर्ष के माध्यम से समाज में अपनी पहचान और अधिकारों को स्थापित कर सकती हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पुरुष कहानीकारों की कहानियों में स्त्री पात्रों का चित्रण केवल पारंपरिक भूमिकाओं में सीमित नहीं है, बल्कि वे अब स्वतंत्र, साहसी, और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व के रूप में उभर रही हैं। यहाँ स्त्री का चित्रण केवल पारंपरिक भूमिकाओं में सीमित नहीं है, बल्कि वह समाज, परिवार और स्वयं के भीतर संघर्षों के माध्यम से एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में उभरती हैं। आधुनिक स्त्री अब अपनी पहचान बनाने, सामाजिक बंधनों को तोड़ने और नए सिरे से अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए प्रतिबद्ध है। इन कहानियों के माध्यम से स्त्रियों की बढ़ती महत्वाकांक्षाएँ, उनके सामाजिक और व्यक्तिगत संघर्ष,

और उनकी पहचान की तलाश को प्रमुखता से उजागर किया गया है। यह बदलाव इस बात का प्रमाण है कि समाज की प्रगति स्त्रियों की उन्नति से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। यह परिवर्तन न केवल साहित्यिक क्षेत्र में, बल्कि व्यापक समाज में भी स्त्री सशक्तीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

संदर्भ :

1. मधुरेश, हिन्दी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, 2016, पृ. 23
2. हिन्दी कहानी शिल्प विकास, लोक भारती प्रकाशन, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 2018, पृ. 32
3. लक्ष्मीनारायण, हिन्दी कहानी शिल्प विकास, लोक भारती प्रकाशन, उत्तर प्रदेश, प्र.सं., 2018, पृ. 32

●●●

लोकनाट्य 'नाचा' : हबीब तनवीर

❍ रवीना कुमारी मीना[1]
❍ डॉ. नीतू शर्मा[2]

रंगकर्मी, नाटककार, गायक, निर्देशक, अलोचक, घुमक्कड़ और अभिनेता आदि शख्सियत के धनी हबीब तनवीर का जन्म 1 सितम्बर, 1923 में रायपुर में हुआ। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा रायपुर से और कॉलेज की शिक्षा नागपुर से की। हबीब तनवीर के घर का वतावरण पूर्णत: धार्मिक था। उनके पिता जी धार्मिक प्रवृत्ति के थे। लेकिन हबीब तनवीर का धर्म के प्रति इतना झुकाव नहीं था। वह तो अपनी ननिहाल के वातावरण से प्रभावित थे, और पिता जी से छुपकर नाटक देखते थे। उनका लगाव बचपन से ही कला के क्षेत्र में रहा। उनके इस व्यवहार को देखते हुए उनके शिक्षक उनके घर आकर नसीहत भी करते कि वह अपना भविष्य विज्ञान क्षेत्र में बनाए लेकिन हबीब तनवीर का झुकाव कला के प्रति रमता रहा। "सन 1940 में स्कूल के हेडमास्टर श्री मार्ढेकर सहित तमाम शिक्षक हबीब तनवीर के घर आए जिनका विचार था कि हबीब तनवीर को विज्ञान में जाना चाहिए क्योंकि हबीब एक जहीन विद्यार्थी था और विज्ञान में उनको ज्यादा अच्छे अंक मिलेंगे साथ ही उसमें बेहतर भविष्य की गुंजाइश थी, लेकिन हबीब तनवीर का झुकाव आर्ट्स की तरफ अधिक था।"[1]

नाट्य यात्रा में हबीब तनवीर ने अपनी खास पहचान बनाई है। "पिछली शताब्दी से वर्तमान शताब्दी तक, छ: दहाइयों से ज्यादा लंबे समय तक पूरे कमिटमेंट के साथ बा-मकसद रंगमंच को, जिंदगी का मकसद बनाने वाले और भारतीय रंगमंच को अंतरराष्ट्रीय रंगमंच तक ले जाने वाले इस अलबेले रंगकर्मी का नाम था हबीब तनवीर।"[2] बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। ऊपरी स्तर पर देखने से कोई भी उनकी प्रतिभा का आंकलन नहीं कर सकता था। ष्हबीब तनवीर अपने स्वभावानुसार अपने संपूर्ण व्यक्तित्व को एक छोटे-से पैराग्राफ में समेट लेते हैं, परन्तु जब हम उनके व्यक्तित्व की सीढ़ियों पर धीरे-धीरे उतरना शुरू करते हैं तो पता चलता है कि सीढ़ियाँ तो अनंत हैं।"[3] हबीब तनवीर को देखकर प्रतीत होता है कि इतना सहज, सरल व्यक्ति भी जिंदगी के

1. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
2. एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

सर्वोच्च शिखर पर पहुँच सकता है।

हबीब तनवीर एक सफल रंगकर्मी रहे। नाटक के प्रति उनके विचार और रंगकर्म के प्रति उनके रुझान ने भारतीय रंगमंच पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। अपने नाटकों द्वारा वह एक महत्वपूर्ण सन्देश अवश्य देते थे। वह एक विशेष नाट्य शैली में अपने नाटकों की प्रस्तुति करते थे, उनकी इस कला का कोई भी तोड़ नहीं कर सकता था। "सरकारी स्तर पर किसी भी कलाकार को मिलने वाला सम्मान उन्हें मिला, वह राज्यसभा के सदस्य बने, पद्मश्री और पद्मविभूषण से नवाजे गये। लेकिन हाव भाव से कभी यह महसूस नहीं होने देते कि वह कोई खास आदमी है।"[4]

लोकनाट्य एक ऐसी नाट्य विधा है जो ग्रामीण अंचलों में रहने वाले ग्रामवासियों द्वारा ही स्वयं प्रस्तुत किया जाता है। इस अभिनय को प्रस्तुत करने के लिए किसी खास तरह के रंगमंच की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस अभिनय के लिए लोगों का सामूहिक गठबंधन होना जरूरी है। "भारतीय लोक-नाट्य परंपरा की प्राचीनता, विविधता, शक्ति और समृद्धि निर्विवाद है।"[5] यह अभिनय लोकजीवन से सीधे जुड़े होने के कारण लोकभावनाओं से प्रत्यक्ष जुड़ता है। लोकनाट्य परम्परा युगों पुरानी है। इसके साथ मनुष्य जीवन की प्रत्येक गतिविधियाँ जुड़ी रहती हैं। "लोकभाषाएँ विविध जीवन प्रसंगों की रसपूर्ण अभिव्यक्ति लोकनाट्य के माध्यम से करती हैं। इनमें अभिनय के साथ-साथ संगीत और नृत्य का प्रयोग पूरी उन्मुक्तता के साथ होता है, जिससे वे सहज ग्राह्य होते हैं।"[6] अत: लोकनाट्य सामान्य जनता के काफी निकट होता है। इसमें लोकहित की भावना सामाहित होती है। लोकनाट्य शास्त्रीय नियमों में बंधे नहीं होते बल्कि लोक नाटकों में लोक के मनोभावों एवं प्रतिक्रियाओं का स्वतंत्र अवतरण होता है। लोकनाट्य एक खुले मंच पर मंचित हो जाता है, यह किसी भी गली-गलियारे अथवा खेत-खलिहान में आसानी से खेला जा सकता है। इसमें इतनी स्वतंत्रता होती है कि लोकनाट्य प्रस्तुति के समय कोई भी दर्शक उस प्रस्तुति में सहभागी बन सकता है। लोकनाट्य के बारे में जयदेव तनेजा अपने विचार प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि "समकालीन हिंदी रंगमंच के प्रसंग में यह एक रोचक तथ्य है कि लोकनाट्य परम्परा ने हमारे नाटककारों के मुकाबले निर्देशकों और अन्य रंगकर्मियों को बहुत दूर तक और गहराई तक प्रभावित किया। एक ओर हमारे अनेक रंगकर्मी 'आधुनिक भारतीय रंगमंच' और 'निजी रंगशैली' की तलाश के कारण सीधे अपने परंपराशील लोक-नाट्य रूपों की ओर उन्मुख हुए तो दूसरी पर कुछ तथाकथित आधुनिक फैशनेबल और पाश्चात्य-प्रेमी नाट्य निर्देशक नृत्य, गीत, संगीत और अभिनय से युक्त ब्रेख्त के 'एपिक थियेटर से अभिभूत होकर अपनी-लोक परम्परा की ओर मुड़े। कुछ ने ग्रोतोवस्की, कुछ ने शेखनर और कुछ ने बादल सरकार से प्रभावित होकर अब तक अपनी उपेक्षित किंतु समृद्ध, शक्तिशाली, रंग-बिरंगी और अमित संभावनापूर्ण लोकनाट्य परम्परा की ओर देखना और उसे स्वीकारना शुरू किया।"[7]

हबीब तनवीर साहब का लोक के प्रति स्नेह देखते ही बनता था। वह हमेशा ही भारतीय लोक परम्परा के समर्थक रहे, सही मायने में वह लोक प्रेमी थे। लोक के प्रति उनका लगाव इप्टा से हुआ। उन्होंने भारतीय संस्कृति की जमीं को पहचाना और उसी को अपने रंगकर्म का आधार बनाया। तनवीर साहब ने 'लोक' की पृष्ठभूमि को सार्थक एवं प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत करने की कोशिश की और इसमें वह सफल भी रहे, "भारतीय परम्परा में 'लोक' को प्रतिष्ठित करने के जिन उद्यमों की हम सराहना करते आए हैं, हबीब तनवीर का रंगकर्म आधुनिक नाट्य में उसका नेतृत्व करता रहा है।...'लोक' उनके यहाँ हाशिये का पर्याय नहीं है, वरन उस बहुलतावादी, बहुजन और अवाम का उदघोष है जो इस देश का मेरुदंड है। इस कारण तनवीर साहब का रंगकर्म केवल हिंदी का ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधि रंगकर्म है जिसमें हमें भारतीय जन की आस्था

भी दिखाई देती है तो आकांक्षा भी, संघर्ष भी दिखाई देता है तो सपना भी। हबीब तनवीर ने भारतीय रंगकर्म को देसी चेतना तथा संस्करों के साथ-साथ जनता की बोली में भी विन्यस्त किया है।"[8] हबीब तनवीर अपनी जड़ों से गहराई से जुड़े थे। वह अच्छे से जानते थे कि यदि सामान्य स्तर पर लोगों से जुड़ना है तो जमीन पर उतरना होगा और इसके लिए वह भारतीय संस्कृति को साथ लेकर चलने पर बल देते थे। वह जानते थे कि भारतीय संस्कृति का केंद्र ही 'लोक' है। इस 'लोक' के साथ जुड़कर ही सार्थक रंगमंच की तलाश संभव है। इसलिए अपनी बात को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने के लिए वह भारत की जड़ों से जुड़ा रहना चाहते थे। "आज भी गाँवों में भारत की नाट्य परम्परा अपने आदिम वैभव और समर्थता के साथ जिंदा है।"[9] हबीब तनवीर ने अपनी रंगयात्रा को मजबूती यूरोप से दी। वह दो वर्षों तक यूरोप में रहे, वहाँ नाटक की बारीकियों को सीख कर भारत लौटे और अपने अनुभव के आधार पर नाट्यकला को विकसित की। वह बर्तोल्त ब्रेख्त को अपना गुरु मानते थे। उन्होंने प्राचीन विचारधारा को नयेपन में ढ़ालकर अपने नाटकों में प्रस्तुत किया। उनकी इसी विशेषता के कायल रहे उनके दर्शक। उनके दर्शक आम ही नहीं खास भी थे। हबीब तनवीर द्वारा उनकी विशिष्ट लोक शैली और लोक बोली में दी गई प्रस्तुति से उनके दर्शक इस कदर प्रभावित हो जाते कि उन्हें दाद दिए बिना नहीं रह पाते थे। इसी कारण भारतीय जनता में उनके प्रति अटूट विश्वास और गहरी आस्था कायम हुई।

लोकनाट्य विधा की ही एक विकसित विधा है 'नाचा'। यह छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य है। इसके अभिनेता केवल पुरुष पात्र ही होते थे। यहाँ तक कि स्त्री की भूमिका भी पुरुष ही निभाते थे। 'नाचा' की रचना-प्रक्रिया बेहद आसान होती है। इसकी प्रस्तुति के लिए कोई खास प्रैक्टिस की आवश्यकता नहीं पड़ती। अभिनेता मंच पर जाते समय या मेकअप करते समय ही अपनी भूमिका तय कर लेते हैं कि किसे कौनसे पात्र की भूमिका निभानी है। 'नाचा' की खूबसूरती उसकी सीधी सरल प्रस्तुति में है। प्रस्तुति के दौरान पात्र जनता के बीच में से ही मंच पर प्रवेश करते हैं। उनमें मुख्य रूप से जोकर बना पात्र महत्वपूर्ण होता है, चूँकि प्रवेश करते समय सारे अभिनेताओं का केंद्र होता है 'जोकर'। उस समय जोकर हाथ में मशाल लेकर चलता है और अपनी भाव-भंगिमा से सभी दर्शकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। जोकर ही एक ऐसा पात्र है जिसे पुरी स्वतंत्रता होती है अपने अभिनय में जो मर्जी वो करे। नाचा में 'इम्प्रोवाइजेशन' महत्वपूर्ण होता है। इसके द्वारा ही 'नाचा' और उसके कलाकार क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर जाने जाते हैं।

हबीब तनवीर ने 'नाचा' को अपने रंगकर्म और चिंतन का माध्यम बनाया। 'नाचा' के माध्यम से नाटक को नई भंगिमा और गतिशीलता प्रदान की। "हबीब तनवीर, नाटक और लोकनाटक के मध्य एक सेतु बनकर आये। उन्होंने लोकनाटक की शक्ति को अच्छी तरह पहचाना और आधुनिक नाटक के साथ उसे समन्वित किया। उन्होंने अपने नाटकों में छत्तीसगढ़ी लोकनाटक के नाचा के पारंपरिक संगीत, वाद्य, नृत्य, गायन, अभिनय और मंच का अत्यंत कलात्मक एवं कल्पनाशील प्रयोग किया। इस प्रकार छत्तीसगढ़ी लोकनाटक के तत्वों के संयोजन से आधुनिक नाटक और रंगमंच की उन्होंने नयी परिभाषा गढ़ी और विश्व नाट्य-जगत में भारतीय रंगदृष्टि की विशिष्ट पहचान स्थापित की।"[10]

'नाचा' छत्तीसगढ़ी जन-जीवन से जुड़ा हुआ है। इसमें छत्तीसगढ़ी लोक-जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। श्नाचाश में व्यक्ति के सामान्य जन-जीवन के हर संघर्ष के दर्शन होते हैं। वह चाहें दु:ख हो या उल्लास हो पूरी स्वतंत्रता के साथ मुखरित होते हैं, जिस वजह से वह अधिक रूप से सामान्य जन से जुड़ जाता है। 'नाचा' शैली अपनी इस विशेषता के कारण ही सामान्य जन से स्वयं को जोड़ने में सफल है। हबीब तनवीर भी श्नाचाश

शैली के कारण ही अपने रंगकर्म की छाप दर्शकों पर छोड़ने में सफल हुए। 'नाचा' नृत्य और गीत का समन्वित रूप है। यह मात्र मनोरंजन के लिए ही नहीं खेला जाता बल्कि सामाजिक मूल्यों और सामाजिक स्तर पर जागृत करने के उद्देश्य से भी नाचा की प्रस्तुति की जाती है। "नाचा मंच से बाल-विवाह, सर्वहारा वर्ग का शोषण के खिलाफ आवाज बुलंद करने तथा छुआछूत, विधवा विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों के प्रति सजग रूप मंच पर आवाज उठाता है।"[11] अत: 'नाचा' सामाजिक स्तर पर जागृत करने का सन्देश देता है। 'नाचा' की कोई स्क्रिप्ट नहीं होती फिर भी छत्तीसगढ़ में इसकी प्रस्तुति क्रमबद्ध रूप से रात भर चलती है। इसके माध्यम से लोक जीवन की अभिव्यक्ति होती है। अपने विचारों को जनता के सामने प्रस्तुत करने का यह अच्छा माध्यम है। "कुछ लोगों का मानना है कि जमींदारों और मालगुजारों का खेतिहर किसानों तथा मजदूरों के ऊपर सामाजिक और आर्थिक दबाव रहा होगा, जिसके कारण अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता उनको नहीं रही होगी। तब उन्होंने अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए मनोरंजन के साधनों को माध्यम के रूप में उपयोग करके जमीदारों, साहूकारों और मालगुजारों पर सीधी चोट की होगी और तब कहीं जा कर नाचा का परिष्कृत स्वरूप सामने आया होगा।"[12] हबीब तनवीर ने 'नाचा' शैली में नाटक लिखे ही नहीं है बल्कि इनका मंचन भी 'नाचा' कलाकारों से ही कराया। वह भारतीय दर्शकों को नाट्य के माध्यम से उन्हें अपनी जड़ों से जोड़े रखना चाहते थे। वह पाश्चात्य नाटकों से शैली उधार लेना गलत समझते थे बल्कि उनका मानना था कि भारत में ही लोकनाट्य की एक पुरानी परम्परा रही है तो क्यूँ न यहीं से विषय वस्तु को चुनते हुए अपनी ही मिट्टी की सुगंध को समझा जाए। हबीब तनवीर का मत था कि, "मैं चाहता हूँ कि दिल्ली की सुरुचि-सम्पन्न दर्शक-मण्डली गाँव के सुरुचिविहीन कलाकारों के अनगढ़पन का अनुभव कर सके, उनकी सहज शक्ति और जीवंतता का स्पर्श पा सके। मैंने यह अनुभव किया है कि बहुत-सी स्थितियों को विशेषकर हास्य नाटक में, एक लोक कलाकार अपने अनगढ़ से जिस खूबसूरती और गहराई से पेश करता है, शहरी कलाकार नहीं कर पाते। नाटक देखने और उसके बारे में बात करने को फैशन मानकर जो लोग नाटक देखते और उसके बारे में बात करते हैं उन शहरी फैशनेबल लोगों के सामने मैं ग्रामीण कलाकारों और उनकी जीवंत कला को रखना चाहता हूँ जो पढ़े-लिखे न होते हुए भी कल्पनाशील हैं, कुशल हैं, प्रभावी हैं।"[13] हबीब तनवीर ने छत्तीसगढ़ के लोकनाट्य की शक्ति को पहचाना और आधुनिक नाटक के साथ समन्वित किया। 'नाचा' की शैली और तत्वों के आधार पर एक ऐसी रंगदृष्टि का विकास किया जिसे अपने ही देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी व्यापक स्तर पर स्वीकृति प्राप्त हुई। इस संदर्भ में विनोद शंकर शुक्ल जी लिखते हैं कि, "हबीब तनवीर के कारण छत्तीसगढ़ी लोकरंग को विश्व में पहचान मिली। छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य पर आधारित चरणदास चोर, गाँव का नाँव ससुराल मोर नाँव दामाद उनके अत्यंत लोकप्रिय एवं सदाबहार नाटक हैं।"[14] 'नाचा' की जान 'इंप्रोवाइजेशन' होती है, इसके कारण ही 'नाचा' और इसके कलाकारों को विश्व स्तर की ख्याति प्राप्त हुई। 'नाचा' के कलाकार अपनी जमीन अथवा संस्कृति से जुड़े रह कर अपने समय की धारा को अपने साथ लेकर चलते हैं और उसे अपने से जोड़े रखते है। छत्तीसगढ़ आँचल के हर गाँव में 'नाचा' कलाकार और उसकी मंडलियाँ मिल जाती हैं। 'नाचा' के द्वारा आज संपूर्ण विश्व में इसे जाना जाता है। हबीब तनवीर ने लोकनाट्य 'नाचा' की शैली को अपने नाटकों में प्रस्तुत किया लेकिन उनकी इस शैली की खासियत यह थी की यह परंपरागत रूप से चली आ रही 'नाचा' की शैली को नहीं अपनाया बल्कि इसमें उन्होंने अपने स्तर पर नए प्रयोग किये जिसे अपने नाटकों में शामिल किया।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हबीब तनवीर ने अपने जीवन के पच्चास वर्षों की इस जिंदगी में कई उतार-चढ़ाव देखे थे। बालपन में पैदा हुई उनकी जिद्द आखिरी समय तक बरकरार रही। वह लगातार नाट्य के

क्षेत्र में कार्य करते रहे और अपनी एक मजबूत जमीन तैयार करते चले। रायपुर के छोटे गाँव में पैदा होने वाला एक बच्चा अपनी मेहनत और लगन से इतना बड़ा रंगकर्मी बनेगा किसी ने सोचा भी नहीं था। हबीब तनवीर ने अपने रंगकर्म की दुनिया को देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी फैलाया। उन्होंने अपनी रंगकर्म की दुनिया को व्यापकता प्रादान की। हबीब तनवीर ही एक ऐसे लेखक और अभिनेता रहे जिन्होंने भारतीय रंगमंच को विश्व स्तर पर पहचान दिलाई है। छत्तीसगढ़ की लोकनाट्य 'नाचा' शैली उन्हीं के द्वारा पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। हबीब तनवीर का लोक के प्रति झुकाव हमेशा से रहा है। वह हमेशा भारतीय संस्कृति को ऊँचाइयों पर पहुंचाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने संगीत और नृत्य को मिला कर बनाए गए नाट्य 'नाचा' को अपने रंगकर्म का आधार बनाया। इसमें उन्होंने नए प्रयोग किये जिसमें वह तो सफल हुए ही साथ ही 'नाचा' के पिछड़े हुए कलाकारों को भी सफलता मिली। लेकिन भूमंडलीकरण के बढ़ते प्रभाव से 'नाचा' लोकनाट्य भी अछूता नहीं रहा। वर्तमान में 'नाचा' में परम्परागत रूप से विद्यमान संगीतों का स्थान फिल्मी गीतों ने ले लिया है। जिस नाट्य शैली को हबीब तनवीर ने विश्व स्तर पर पहचान दिलाई वही 'नाचा' आज संक्रमण काल से गुजर रहा है।

संदर्भ :

1. सं. प्रसाद, कमला, कलावार्ता, अंक-103, हबीब तनवीर के रंगमंचीय आयाम, पृ. 8-9, भोपाल
2. सं. शुक्ल, प्रयाग, रंग-प्रसंग, अंक-35, अनीस आजमी, पृ. 15, नई दिल्ली
3. सं. प्रसाद, कमला, कलावार्ता, अंक-103, हबीब तनवीर के रंगमंचीय आयाम, पृ. 154, भोपाल
4. आजकल, अंक फरवरी 2003, पृ. 30, दिल्ली
5. तनेजा, जयदेव, आधुनिक भारतीय नाट्य विमर्श, पृ. 65
6. डॉ. देवांगन, चंद्रशेखर, हबीब तनवीर की रंगदृष्टि, पृ. 58, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली
7. तनेजा, जयदेव, आधुनिक भारतीय नाट्य विमर्श, पृ. 69
8. जोशी, ज्योतिष, रंग प्रसंग, अंक अक्तूबर-दिसम्बर 2006, पृ. 124
9. तनवीर, हबीब, नटरंग अंक 08, पृ. 23
10. इप्टा, पत्रिका महत्व हबीब तनवीर,विनोद शंकर शुक्ल, हबीब तनवीर और उसके कलाकार, जनवरी, 2003, पृ. 07
11. डॉ. देवांगन, चंद्रशेखर, हबीब तनवीर की रंगदृष्टि, पृ. 74-75, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली
12. डॉ. देवांगन, चंद्रशेखर, हबीब तनवीर की रंगदृष्टि, पृ. 76, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली
13. सं. प्रसाद, कमला, कलावार्ता, अंक-103, हबीब तनवीर के रंगमंचीय आयाम, पृ. 150, भोपाल
14. सं. शर्मा, कुंजबिहारी, छत्तीसगढ़ हिंदी रंगमंच, विनोद शंकर शुक्ल, छत्तीसगढ़ में हिंदी रंगमंच की विकास यात्र, पृ. 26-27, रायपुर

●●●

स्त्री और प्रकृति का मिलन : नवजागरणकालीन कहानियों के प्ररिप्रेक्ष्य में

❍ जेस्ना रहीम[1]

समकालीन साहित्य के प्रमुख विमर्श हैं 'पारिस्थितिक विमर्श' और 'स्त्री विमर्श'। आधुनिक साहित्य के शुरुआती दौर में इन विषयों को किस प्रकार और क्यों प्रस्तुत किया गया है, यह जाने बिना समकालीन साहित्यिक विमर्श पर अध्ययन करना व्यर्थ होगा। क्योंकि इतिहास के बिना वर्तमान अधूरा है। एक राष्ट्र के रूप में भारत के विकास की प्रक्रिया में नवजागरणकालीन विभिन्न परिस्थितियाँ और साहित्य प्रेरणादायक बने हैं। देश की आजादी की उस लड़ाई में जिस राष्ट्र की संकल्पना की जा रही थी, उसमें सभी वर्ग, वर्ण, धर्म, लिंग और जाति के समन्वय मुखरित थे। इसी कारण नवजागरणकालीन साहित्य में दलित-ब्राह्मण, स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढे से लेकर पेड, पौधे, मिट्टी, नदी आदि की भी प्रधानता थी।

नवजागणकालीन साहित्य ने स्त्री और प्रकृति को एक साथ देखने का प्रयास किया गया है। इसलिए स्त्री और प्रकृति का यह अटूट रिश्ता नवजागरणकालीन साहित्य में मुखरित है। 'रंगभूमि' के 'सूरदास' के जरिए पारिस्थितिक सजगता की चर्चा बहुत हुई है। उसी प्रकार स्त्री को प्रमुखता देने वाली रचनाएँ जैसे 'भाग्यवती', 'कुंभ में छोटी बहु', 'दुलाईवाली' भी अधिक चर्चित है। लेकिन नवजागरणकालीन कहानियों में स्त्री और प्रकृति के रिश्ते को जिस मार्मिक ढंक से प्रस्तुत किया गया है, यह अल्पचर्चित रह गया। स्त्री और प्रकृति के बीच का रिश्ता, दोनों का एक दूसरे केलिए आश्रय बनना, मिट्टी के प्रति स्त्री का लगाव आदि नवजागरणकालीन कहानियों में अभिव्यक्त है ।

पुरातन काल से लेकर प्रकृति और मानव के बीच का यह चिर संबंध औद्योगिक पूँजीवाद तक आते आते नष्ट हो गया है। अपने उत्पादन बढाने केलिए जब से मानव प्रकृति को लूटने लगा तब से यह रिश्ता भी टूटने लगा। नवजागरणकालीन कहानियों में 'प्रकृति और मानव' के इस संबंध को प्रस्तुत करने का लक्ष्य उस परंपरा को मज्बूत बनाना था ।

नवजागरणकालीन हिन्दी कहानियों में मानव और प्रकृति का अटूट संबंध के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

---

1. सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, कण्णूर विश्वविद्यालय, केरल

माधवराव सप्रे की कहानी 'एक पथिक का स्वप्न' इस कोठी की कहानी है। तीन भागों में विभाजित इस ऐतिहासिक कहानी में तीन विभिन्न वातावरण से परिचय मिलता है और अंतिम भाग में कहानी का नायक बादशाह बन जाता है। प्रथम भाग का आरंभ नायक के कन्दहार के घने जंगलों से गुजरने से होता है। कन्दहार प्राचीन गान्धार का दूसरा नाम है। घने जंगल के चित्रण से स्वच्छंद वातावरण का भी परिचय मिलता है। जंगल का अपूर्व शोभा के कारण उसे भय नहीं, बल्कि शांति महसूस हो रही थी। "जंगल इतना घना था कि सूर्य की किरणें पृथ्वी पर पहूँच नहीं सकती थी। कई वृक्ष तो इतने ऊँचे दिखाई देते थे, मानो वे आकाश को भेदकर उस पार चले जाने की इच्छा कर रहे हो।" (माधवराव सप्रे की कहानियाँ, सं.देवी प्रसाद अर्मा, पृ. 36)। जंगल में भयानक शेर की आवाज से वह डरता है, लेकिन वह सुरक्षित रह जाता है। आगे रास्ते में हरिणी और उसके बच्चे के प्यार मार्मिक ढंग से लेखक प्रस्तुत करते हैं। सप्रे जी यहाँ टिप्पणी देता है, "जीव जैसी अमूल्य वस्तु दूसरी कोई नही है। क्या पशुओं की और क्या मनुष्यों को, जीव सभी को प्यारा है" (माधवराव सप्रे की कहानियाँ, सं.देवी प्रसाद अर्मा, पृ. 70)। इन दृश्यों की प्रस्तुतीकरन से लेखक एक ऐसी पारिस्थितिक व्यवस्था (म्बवैलेजमउ) प्रस्तुत करते हैं , जिसमें पृथ्वी के पेड, पौधे, वृक्ष, लता, प्राणी , जीव-जंतु, मानव सब शामिल है और इसके बिना पृथ्वी का अस्तित्व नहीं।

आगे नायक जंगल पार करके कुछ लोगों के पास पहूँचा और वे उसके साथ झगडते रहते हैं और पथिक घायल हो जाता है। यहाँ लेखक यह दिखाने की कोशिश करता है कि घने जंगल या प्रकृति उस आदमी का संरक्षक बना। किसी भी जानवर ने उसे घायल नहीं किया। तब वह घायल हो गया, जब मानव के संघ में आ गया। यहाँ प्रकृति और मानव का आपसी रिश्ता दिखाया गया है।

माधवराव सप्रे की कहानी 'आजम' में भी प्रकृति और मानव का परस्पर रिश्ता और दोनों एक दूसरे केलिए सहायक बनने की ओर संकेत किया गया है। इसका नायक 'आजम' अपनी संपन्नता की स्थिति में दूसरों की सहायता करता था। लेकिन जब वह गरीब हो गया तो इसकी सहायता केलिए सिर्फ प्रकृति ही थी। जब मालूम पड गया कि संपत्ति के बिना अब उसे कोई मान्यता नहीं देगी तो वह वनचरों का समागम श्रेष्ठ समझते थे। वह 'तारस' नामक पर्वत के गगन चुम्बी शिखर पर पहूँच गया। हिंस्र जंतु वास करने वाले एक घन वन में एक छोटी-सी गुफा में वह सुरक्षित था। कहानी के माध्यम से लेखक यहाँ स्पष्ट करते हैं, "मनुष्य के समान अन्य जीवों को भी यहाँ रहने का हक है। अन्य प्राणी और मनुष्य में जो संबंध हो, अब मनुष्य में क्या संबंध है, सो देखना चाहिए।" (माधवराव सप्रे की कहानियाँ, सं.देवी प्रसाद अर्मा, पृ. 69)। प्रकृति में हर जीव-जंतु को अपना मूल्य एवं स्थान है। मनुष्य और प्रकृति के आपसी लेन-देन का उदाहरण भी है यह कहानी । मानव और प्रकृति के रिश्ते के बारे में हरिश्चन्द्र व्यास का कथन है, "हमारे वेद, पुराण और सूफी साहित्य, कला, दर्शन और इतिहास, आचार, व्यवहार एवं विचार तथा लोक जीवन और संबंधों के समीकरण आदि सभी एक ही दिशा की ओर संकेत करते हैं और वह है मनुष्य और प्रकृति के बीच में गहरी आत्मीयता की दिशा।"(हरिश्चन्द्र व्यास, संस्कृति एवं पर्यावरण, पृ. 5,1993)

इसप्रकार मानव और प्रकृति के रिश्ता के साथ स्त्री और प्रकृति का रिश्ता भी नवजागरणकालीन कहानियों में देखा जा सकता है। स्त्री और प्रकृति में अनेक प्रकार की समानताएँ हैं। अनेक कार्यों को एक साथ करने की स्त्री का विशेष गुण संसार के अन्य प्राणियों या वर्गों में नहीं देखा जा सकता। उसी प्रकार संसार की हर धडकन प्रकृति पर निर्भर है। यही समानता स्त्री और प्रकृति को एक दूसरे के पास लाती है। प्रकृति के कण-कण जैसे मिट्टी, पत्थर, पेड, पौधे, पर्वत सब उनकेलिए आत्मरक्षा का मार्ग बनते हैं। माधवराव सप्रे की कहानी

' एक टोकरी भर मिट्टी' की बूढी ऐसी एक औरत है, जिसको अपनी मिट्टी के प्रति अधिक चाहत है। जब पड़ोसी जमीन्दार ने अपने अधिकार के जरिए बूढ़ी औरत की झोंपडी तक अपना हाता बढाना चाहा, तब उसे अपनी प्राणतुल्य झोंपडी छोड़कर जाना पड़ा। बूढ़ी औरत अपनी झोंपडी से एक टोकरी भर मिट्टी लेना चाहती है, ताकि उस मिट्टी से वह चूल्हा बनाकर अपनी पोती के लिए रोटी पका सके। टोकरी सिर तक उठाने के लिए जमींदार से सहायता माँगती है। लेकिन पूरी कोशिश करने पर भी वह टोकरी उठाने में असमर्थ हो जाता है। तब बूढ़ी ने कहा कि एक टोकरी भर मिट्टी न उठा पाने वाले, जमींदार, वहाँ पड़ी हजारों टोकरी भर मिट्टी कैसे उठा पाएगा। इस कथन से मनपरिवर्तित जमींदार बूढ़ी की झोंपड़ी वापस कर देता है। कहानी में अहिंसा भाव, तत्कालीन सामाजिक ऊँच-नीच भाव, जमींदारी व्यवस्था, देश प्रेम आदि अनेक मुद्दों की ओर ध्यान दिया जाता है, लेकिन इसमें अधिकांश आलोचकों या शोधकर्ताओं द्वारा ध्यान न देने वाली एक प्रमुख मुद्दा है, मिट्टी के प्रति उस औरत की गहरी चाह। इस चाह के दो रूप हैं। एक तो देशप्रेम की ओर इशारा करता है तो दूसरा प्रकृति से अटूट रिश्ता दिखाता है। बूढी औरत का कथन इस बात को स्पष्ट करती है, "जब से यह झोंपडी छुटी है, तब से मेरी पोती ने खाना पीना छोड दिया।.. अब मैं यह सोचा कि इस झोंपडी में से 'एक टोकरी भर मिट्टी' लेकर उसी का चूल्हा बनाकर रोटी पकाऊँगी"। यह सुनकर अपनी मिट्टी के प्रति उनका लागाव समझकर यानी उस औरत की घनी बातों ने जमींदार को टोकरी उठाने में असमर्थ बनाया। यहाँ लेखक यह दिखा रहे हैं कि औरत कहीं भी रहती हो, वहाँ की मिट्टी, पौधे, घास, वृक्ष, लता सब से एक आत्मीय रिश्ता बनाती है। इसी रिश्ते के कारण उन्होंने अपनी मिट्टी से चूल्हा बनाना चाहा और उससे बनी रोटी उन्हें उसी रिश्ते का ही एहसास दिलवाएगी।

शुक्ल जी की 'ग्यारह वर्ष का समय' ग्यारह वर्ष के बाद अपनी पत्नी के ढूँढने वाला एक पति की कहानी है, जिसका बालविवाह हुआ था। प्रकृति के मनोहर दृश्य की वर्णना करके आगे बढ़ाने वाला नायक और उसका दोस्त अंत में एक पहाड़ी प्रदेश के खंडहर मे आकर रुके। वहाँ वह अपनी पत्नी पायी जाती है। जिस प्रदेश में वह औरत ग्यारह वर्षों तक रहती थी, उस प्रदेश के बारे में कहानी में ऐसा परिचय दिया जाता है, "एक पगडण्डी के आश्रय अब तक हम लोग चल रहे थे, जिस पर उगी हुई घास इस बात की शपथ खा के साक्षी दे रही थी कि वर्षों से मनुष्यों के चरण इस ओर नहीं पडे हैं" (पृ. 2)। ऐसे घनघोर जंगल में अकेली रहती थी वह औरत और प्रकृति की गोद में अत्यधिक सुरक्षित थी। प्रकृति के साथ मिल जुलकर रहने की स्त्री के अपार प्राकृतिक गुण का अच्छा उदाहरण है यह कहानी। प्रकृति किसी के लिए भी हानिकारक नहीं बनती बल्कि वह सुरक्षा प्रदान करती है।

मास्टर भगवानदास की कहानी 'प्लेग की चुड़ैल' एक ऐसी औरत की कहानी है, जिसको प्लेग के कारण निर्जीव समझकर कफन बनाके नदी में फेंकता है। जिसे उसके पति और बाकी लोगों ने निर्जीव समझा था, उसके शरीर में जीव का अंश रह गया था। प्रकृति की गोद में आकर वह औरत किस प्रकार अपना प्राण वापस लेती है, इसका चित्रण लेखक कहानी में दिखाते हैं। स्त्री की निर्जीवता को जीवंत बनाने में नदी, पेड़, पौधे, चिड़ियाँ, फल-फूल सब सहायक बनते हैं। लेखक कहते हैं, "गंगाजल की शीतलता उस सोपान-स्थित शरीर के लिए, जिसे लोगों ने निर्जीव समझ लिया था, ऐसी उपकारी हुई कि जीव का जो अंश उसमें रह गया था, वह उठ गया" (मास्टर भगवानदास, 'प्लेग की चुड़ैल, पृ. 5), जब उसकी जान मिल गयी, तब उसे वापस जिन्दगी तक लाने के लिए प्रकृति कैसे सुरक्षा देते है, इस वर्णन यों दिया,".. वह बह्ते-बह्ते ऐसी जगह आ पहुँची जहाँ करौंदे का एक बड़ा भारी पेड़ तट पर खडा था और उसकी एक घनी डाली झुककर जल में स्नान

कर रही थी और अपने क्षीरमय फल-फूल गंगाजी को अर्पण कर रही थी। वह सीढ़ी जाकर डाली से टकराई और उसी में उझलकर रुक गई। उस डाली में एक काँटा बहू जी की गिल्टी में इस तरह चुभ गया जैसे किसी फोडे में नश्तर। गिल्टी के फूटते ही पीड़ाजनक रुधिर निकल गया और बहू जी को फिर चेत हुआ। झट उन्होंने अपना मुँह फेरकर देखा तो अपने को उस हरी शाखा की शीतल छाया में ऐसा स्थिर और सुखी पाया जैसे कोई श्रांतपथिक हिंडाले पर सोता हो " (मास्टर भगवानदास, 'प्लेग की चुड़ैल, पृ. 6)। आगे पक्षीगण के कलरव स्वर से वह अपने शरीर का दर्द भूल जाती है। यह अनुभूति उसे स्वर्गलोक की सी लग रही है। प्रकृति की इस सुन्दर वातावरण में वह सोचता है, " ..क्या मैं स्वर्गलोक में आ गई हूँ, या केवल स्वप्न अवस्था में हूँ, और यदि मैं मृत्युलोक ही में इस दशा को प्राप्त हुई हूँ तो भी परमेश्वर मुझे इसी सुखमय अवस्था में सर्वदा रहने दे" (मास्टर भगवानदास, 'प्लेग की चुडैल, पृ. 6)। उस औरत ने अपने पूरे जीवन में इतनी शांति और आनंद महसूस नहीं किया था, जितनी प्रकृति के निकट आकर उसको मिली थी। यहाँ सब प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों का परिचय मिलता है जैसे नदी, पेड़, लता, पक्षी, फूल, फल, सूर्य, हवा आदि सब। लेकिन जब वह औरत वापस लोगों के बीच आयी है, तब उसे चुडैल समझकर लोग भागे।

स्त्री और प्रकृति का यह रिश्ता अवर्णनीय है। आत्मीयता की यह दिशा नवजागरणलीन कहानियों के माध्यम से रचनाकार इसलिए अभिव्यक्त करते हैं कि वे जानते थे कि आने वाली पीढ़ी के लिए प्रकृति के स्थान पर बाजार और मानव के स्थान पर सिर्फ उपभोक्ता ही रहेगा। आज स्त्री और प्रकृति दोनों का अस्तित्व खतरे में है। इसी कारण समकालीन साहित्य में पारिस्थितिक विमर्श (Eco Criticism), पारिस्थितिक स्त्री विमर्श (Eco-Feminism), जैसे अनेक विमर्शों की चर्चायें हो रही हैं। आगे एक नया विमर्श भी आने की संभावना है। पारिस्थितिक आतंकवाद (Eco Terrorism) !! युद्ध के जरिए दूसरे देशों के पारिस्थितिक व्यवस्था (Eco system) यानी वहाँ की प्रकृति या प्राकृतिक संसाधनों का नाश करने की प्रक्रिया है यह। उन्नीसवीं शताब्दी में लिखित इन कहानियों में आने वाले जमाने की इन आपत्तियों से बचाने का मार्ग दिखाया गया है। प्रकृति और मानव के परस्पर संबंधों का यह मार्ग वास्तव में इन साहित्यकारों की दूरदर्शिता ही दिखा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. इको फेमिनिज्म, डॉ. के. वनजा, वाणी प्राकाशन, नई दिल्ली, सं. 2013
2. साहित्य का पारिस्थितिक दर्शन, डॉ. के. वनजा, वाणी प्राकाशन, नई दिल्ली. सं. 2020
3. साहित्य का समाजशास्त्र, बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 1997
4. हरित भाषा वैज्ञानिक विमर्श, डॉ. के. वनजा, वाणी प्राकाशन, नई दिल्ली, सं. 2015
5. हिन्दी नवजागरण और सांकृति, शंभूनाथ, आनंद प्रकाशन, कोलकत्ता, सं. 2004
6. स्त्री संघर्ष का इतिहास(1800-1990), राधा कुमार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2009
7. हमारी सांस्कृतिक एकता, रामधारी सिंह दिनकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, सं. 2006
8. राष्ट्रीयता की अवधारणा और भारतेन्दुयुगीन साहित्य, प्रमोद कुमार, अनुज्ञा बुक्स, नई दिल्ली, सं. 2014

●●●

उपभोक्ताओं की आय, शैक्षिक स्थिति एवं रोजगार का ऑनलाइन खरीददारी पर पड़ने वाले प्रभाव : धनबाद जिले के विशेष संदर्भ में

❍ श्रधा श्रीवास्तव[1]
❍ डॉ. रंजना श्रीवास्तव[2]

संक्षिप्ति :

सूचना एवं संचार तकनीकी के विकास ने अर्थव्यवस्था एवं व्यवसाय के भू-दृश्य को गहनता से प्रभावित किया है, आज लोग सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रमुखता से कर रहे हैं। अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में इसके प्रयोग ने अर्थशास्त्र के नए आयाम को जन्म दिया है जिसे हम इलेक्ट्रॉनिक कॉमर्स या इ-कॉमर्स के नाम से जानते हैं। आज उपभोक्ता अपनी रोजमर्रा की वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए परंपरागत तकनीकी पर निर्भर नहीं है बल्कि टेक्नोलॉजी के उपलब्धता के कारण वह घर बैठे अपनी जरूरत के वस्तुओं एवं सेवाओं को प्राप्त कर सकता है। यही कारण है कि हाल के वर्षों में ऑनलाइन खरीदारी आधुनिक अर्थव्यवस्था के एक प्रभावी विकल्प के रूप में विकसित हो रहा है। किसी क्षेत्र में निवास करने वाले उपभोक्ताओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का ऑनलाइन खरीदारी की स्थिति को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विभिन्न अध्ययनों में यह देखा गया है कि व्यक्तियों के आय शैक्षिक स्थिति आदि का ऑनलाइन खरीदारी के विकल्पों एवं सेवाओं के प्राप्त करने की प्रकृति पर गहरा असर पड़ता है। सामान्य अध्ययन यह बताते हैं कि ऐसे लोग जो ज्यादातर नौकरी पेशा में हैं, ऑनलाइन खरीदारी के विकल्पों को ज्यादा महत्व देते हैं जबकि असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले उपभोक्ताओं में संचार प्रौद्योगिकी संबंधी उपयोग के अभाव में ऑनलाइन खरीदारी तुलनात्मक रूप से कम प्रचलित है। निसंदेह यह विकल्प खुले समाज में अधिकतर लोगों के जीवन को सुव्यवस्थित बनाने में मदद करता है, क्योंकि यह सामग्री और सेवाओं को उपलब्ध कराने के

1. शोधछात्रा, अर्थशास्त्र विभाग, बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद (झारखण्ड)
2. विभागाध्यक्ष एवं सह-प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची (झारखण्ड)

लिए समय और श्रम की बचत करता है। इसके अलावा, ऑनलाइन खरीदारी समानता को बढ़ावा देता है, क्योंकि व्यक्ति इसे किसी भी स्थान और समय पर कर सकता है, जिससे लोगों के लिए व्यापक विकल्पों का विकास होता है। लेकिन ऑनलाइन खरीदारी की संभावनाओं के साथ, यह भी जोखिमों का सामना करता है, जैसे कि निश्चितता की कमी, गोपनीयता का संदेह, और ऑनलाइन धोखाधड़ी का खतरा। उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में यह शोध-पत्र धनबाद जिले के विशेष सन्दर्भ में व्यस्क उपभोक्ताओं के सामजिक-आर्थिक विशेषताओं का ऑनलाइन खरीदारी की स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव पर एक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द : ऑनलाइन खरीदारी, ई-कॉमर्स, उपभोक्ता व्यवहार, सामाजिक-आर्थिक स्थिति।

प्रस्तुत शोधपत्र में व्यस्क उपभोक्ताओं के सामाजिक-आर्थिक विशेषताओं विशेषकर रोजगार, आय एवं शिक्षा का ऑनलाइन खरीदारी की स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन धनबाद जिले केसंदर्भ में किया गया है। इसके लिए धनबाद शहर के विभिन्न वार्डो से चयनित कुल 240 प्रतिवादियो को यद्रिछिक तौर पर चार वार्डो- वार्ड संख्या 21, 24, 27 तथा 29 से चुना गया एवं इन सामाजिक-आर्थिक विशेषताओं (शैक्षिक स्थिति, आय, रोजगार की स्थिति) का खरीदारी के विभिन्न मदों से संबंध स्थापित किया गया है। खरीददारी के मदों के अंतर्गत 5 उत्पादों को लिया गया है- फैशन उत्पाद एवं सौंदर्य प्रसाधन (A), मोबाइल, इलेक्ट्रॉनिक्स एवं घरेलू उपकरण (B), खिलौने तथा बच्चों के उत्पाद, खेलने के समान, यात्रा सेवाएं, इंश्योरेंस एवं होटल (C), किराना का सामान, मेडिकल सामान एवं खाद्य पदार्थ (D) एवं गृह-सज्जा, फर्नीचर, भारतीय विरासत के समान, एवं अन्य (E). सामाजिक ख्रआर्थिक विशेषताओं से जुड़ी विभिन्न चरों का खरीदारी के मदों से सम्बन्ध एवं इसके प्रभाव के मूल्यांकन के लिए X^2 परीक्षण तकनीक का उपयोग किया गया है।

- ***आय एवं ऑनलाइन खरीदारी के मदों के बिच सम्बन्धः***

स्वयं की वार्षिक आय :

तालिका : 01

स्वयं की वार्षिक आय

क्रम संख्या	आय का अंतराल (हजार में)	आवृति
1.	0-500	54
2.	500-1000	57
3.	1000-1500	7
4.	1500-2000	0
5.	2000-2500	2

तालिका 01, में स्वयं की वार्षिक आय के विभिन्न अंतरालों के अनुसार आवृत्ति का विवरण दिया गया है। तालिका के अनुसार, 0-500 हजार रुपये के आय वर्ग में सबसे अधिक 54 लोगों की संख्या है, जबकि 500-1000 हजार रुपये के आय वर्ग में यह संख्या 57 है, जो सबसे अधिक है। 1000-1500 हजार रुपये के आय वर्ग में मात्र 7 लोग आते हैं। 1500-2000 हजार रुपये के आय वर्ग में कोई व्यक्ति नहीं है, जबकि

2000–2500 हजार रुपये के आय वर्ग में केवल 2 लोग शामिल हैं। इस तालिका से स्पष्ट है कि अधिकांश लोगों की आय 1000 हजार रुपये तक सीमित है।

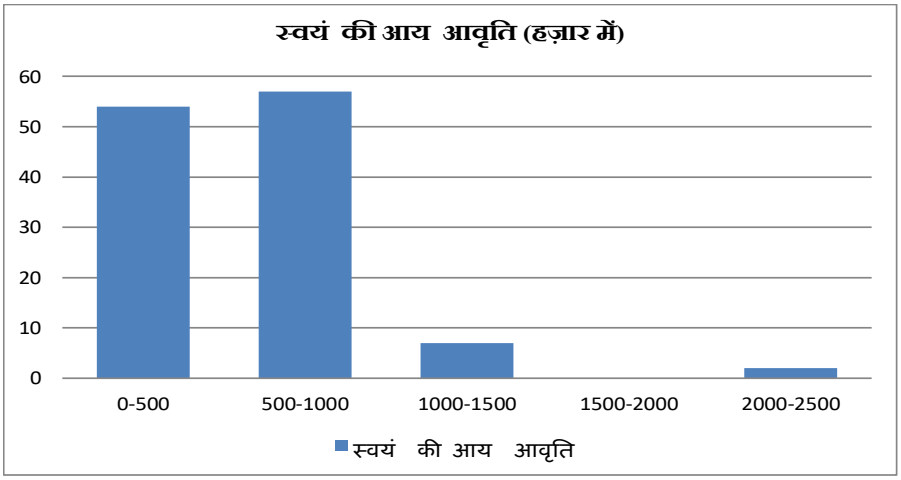

तालिका : 02

कामकाजी उपभोक्ताओ के स्वयं की आय तथा ऑनलाइन खरीददारी की मदों के बीच सम्बन्ध

आय का अंतराल (हज़ार में)	A		B		C		D		E		कुल आवृति
	अवलोकित आवृति	अपेक्षित आवृत्ति	अवलोकित आवृति	अपेक्षित आवृत्ति	अवलोकित आवृति	अपेक्षित आवृत्ति	अवलोकित आवृति	अपेक्षित आवृत्ति	अवलोकित आवृति	अपेक्षित आवृत्ति	
0-500	17	16.65	5	7.65	9	6.75	23	22.95	0	0	54
500-1000	18	17.575	11	8.075	5	7.125	23	24.225	0	0	57
1000-1500	1	2.158	1	0.992	0	0.875	5	2.975	0	0	7
1500-2000	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
2000-2500	1	0.617	0	0.283	1	0.25	0	0.85	0	0	2

X^2Calculeted= 9.937

D 0f f= (col-1)*(row-1)=16
significance level=0.05
X^2tabuleted=26.296
X2Calculeted < X2tabuleted

H0 : सामाजिक-आर्थिक विशेषता के अंतर्गत वयस्क कामकाजी उपभोक्ताओ के स्वयं की आय का ऑनलाइन खरीददारी की मद से कोई सम्बन्ध नहीं है।

H1 : सामाजिक-आर्थिक विशेषता के अंतर्गत वयस्क कामकाजी उपभोक्ताओ के स्वयं की आय का ऑनलाइन खरीददारी की मद से सम्बन्ध है। अर्थात शून्य परिकल्पना स्वकृत होती है अत: कहा जा सकता है की सामाजिक-आर्थिक विशेषता के अंतर्गत वयस्क कामकाजी उपभोक्ताओ में स्वयं की आय का ऑनलाइन खरीददारी की मद से कोई सम्बन्ध नहीं है।

तालिका 02, में कामकाजी उपभोक्ताओं की स्वयं की आय और ऑनलाइन खरीददारी की मदों के बीच संबंध का विश्लेषण किया गया है। विभिन्न आय अंतरालों (0-500, 500-1000, 1000-1500, 1500-2000, 2000-2500 हजार रुपये) में अवलोकित और अपेक्षित आवृत्ति की तुलना की गई है। यहाँ, विभिन्न मदों (A, B, C, D, E) के लिए अवलोकित और अपेक्षित आवृत्तियों को दर्शाया गया है। कुल X^2 सांख्यिकीय परीक्षण में गणना की गई X^2 (9.937) सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि यह तालिका में दी गई X^2 (26.296) से कम है। इस आधार पर शून्य परिकल्पना (H0) स्वीकृत होती है, जिसका अर्थ है कि कामकाजी उपभोक्ताओं की स्वयं की आय का ऑनलाइन खरीददारी की मदों से कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है। इसलिए, आय और ऑनलाइन खरीददारी के बीच कोई सीधा संबंध नहीं पाया गया है, जो दर्शाता है कि विभिन्न आय वर्ग के उपभोक्ता ऑनलाइन खरीददारी में समान रूप से संलग्न हो सकते हैं।

परिवार की आय

तालिका : 03

परिवार की आय एवं कुल आवृत्ति

क्रम संख्या	आय का अंतराल (हजार में)	कुल आवृति
1.	0-500	50
2.	500-1000	123
3.	1000-1500	45
4.	1500-2000	13
5.	2000-2500	3
6.	2500-3000	4
7.	3000-3500	2

तालिका 03, में परिवार की आय के विभिन्न अंतरालों के अनुसार कुल आवृत्ति का विवरण दिया

गया है। सबसे अधिक परिवार 500–1000 हजार रुपये के आय वर्ग में आते हैं, जिनकी संख्या 123 है। इसके बाद 0–500 हजार रुपये के आय वर्ग में 50 परिवार हैं। 1000–1500 हजार रुपये के आय वर्ग में 45 परिवार शामिल हैं। उच्च आय वर्ग (1500–3500 हजार रुपये) में परिवारों की संख्या क्रमशः 13, 3, 4, और 2 है। इससे स्पष्ट होता है कि अधिकतर परिवारों की आय 500–1000 हजार रुपये के बीच सीमित है, जबकि उच्च आय वर्ग में परिवारों की संख्या बहुत कम है।

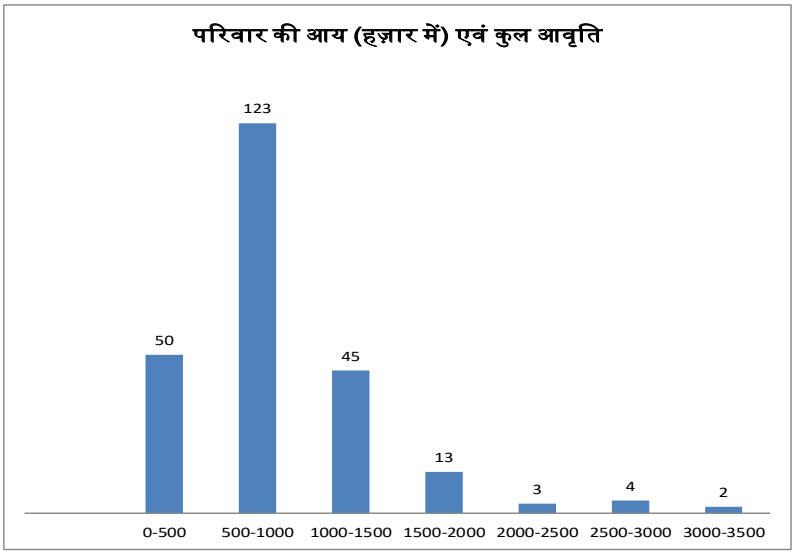

आय का अंतराल (हज़ार में)	A		B		C		D		E		कुल आवृति
	अवलोकित आवृति	अपेक्षित आवृति	अवलोकित आवृति	अपेक्षित आवृति	अवलोकित आवृति	अपेक्षित आवृति	अवलोकित आवृति	अपेक्षित आवृति	अवलोकित आवृति	अपेक्षित आवृति	
0-500	24	16.667	3	5.625	3	5.625	20	21.875	0	0.208	50
500-1000	34	41	15	13.838	18	13.838	55	53.813	1	0.513	123
1000-1500	14	15	7	5.063	3	5.063	21	19.688	0	0.188	45
1500-2000	4	4.333	1	1.463	1	1.463	7	5.688	0	0.054	13
2000-2500	1	1	0	0.338	1	0.338	1	1.313	0	0.013	3
2500-3000	2	1.333	1	0.45	0	0.45	1	1.75	0	0.017	4
3000-3500	1	0.667	0	0.225	1	0.225	0	0.875	0	0.008	2

X^2Calculeted= 19.143
D 0f f= (col-1)*(row-1)=24
significance level=0.05
X^2tabuleted=36.415
X2Calculeted < X2tabuleted

H0: सामाजिक-आर्थिक विशेषता के अंतर्गत वयस्क उपभोक्ताओ में उनके परिवार की आय एवं ऑनलाइन खरीददारी की मद से कोई सम्बन्ध नहीं है।

H1: सामाजिक-आर्थिक विशेषता के अंतर्गत वयस्क उपभोक्ताओ में उनके परिवार की आय एवं ऑनलाइन खरीददारी की मद से सम्बन्ध है। अर्थात शून्य परिकल्पना स्वकृत होती है। अत: कहा जा सकता है कि सामाजिक-आर्थिक विशेषता के अंतर्गत वयस्क उपभोक्ताओ में परिवार की आय एवं ऑनलाइन खरीदारी कि मद में कोई सम्बन्ध नहीं है।

तालिका 04, में परिवार की आय और ऑनलाइन खरीदारी के विभिन्न मदों (A, B, C, D, E) के बीच संबंध का विश्लेषण किया गया है। यहाँ अवलोकित और अपेक्षित आवृत्तियों की तुलना की गई है। कुल X^2 (19.143) सांख्यिकीय परीक्षण में पाया गया कि यह तालिका में दी गई X^2 (36.415) से कम है, जिससे शून्य परिकल्पना (H0) स्वीकृत होती है। इसका अर्थ है कि सामाजिक-आर्थिक विशेषता के अंतर्गत वयस्क उपभोक्ताओं में उनके परिवार की आय और ऑनलाइन खरीदारी के मदों के बीच कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि परिवार की आय का ऑनलाइन खरीदारी की विभिन्न मदों पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता।

- शैक्षिक स्थिति तथा ऑनलाइन खरीददारी की मदों के बीच सम्बन्ध :

तालिका : 05

प्रतिवादियों की शैक्षिक स्थिति

क्रम संख्या	प्रतिवादियों की शैक्षिक स्थिति	आवृत्ति
1.	मैट्रिक से नीचे	62
2.	मैट्रिक	27
3.	इंटर	21
4.	स्नातक	72
5.	परा स्नातक	25
6.	व्यावसायिक/ पेशेवर	33

तालिका 05, में प्रतिवादियों की शैक्षिक स्थिति के आधार पर आवृत्ति का विवरण दिया गया है। सबसे अधिक 72 प्रतिवादी स्नातक हैं, जबकि 62 प्रतिवादी मैट्रिक से नीचे की शिक्षा प्राप्त किए हुए हैं। 33 प्रतिवादी व्यावसायिक या पेशेवर शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं, और 27 प्रतिवादी मैट्रिक पास हैं। इंटरमीडिएट तक पढ़े प्रतिवादियों की संख्या 21 है, जबकि 25 प्रतिवादी परास्नातक हैं। इस तालिका से यह निष्कर्ष निकलता है कि

प्रतिवादियों में स्नातक शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या सबसे अधिक है, जबकि अन्य शैक्षिक स्तरों पर भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व है।

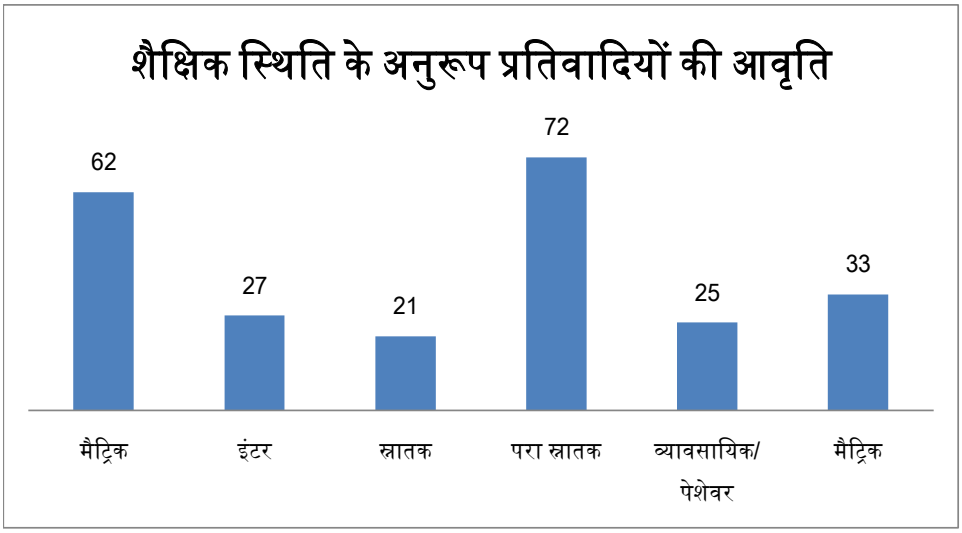

तालिका : 06

शैक्षिक स्थिति तथा ऑनलाइन खरीददारी की मदों के बीच सम्बन्ध

शैक्षिक स्थिति	A		B		C		D		E		कुल आवृति
	अवलोकित आवृति	अपेक्षित आवृत्ति	अवलोकित आवृति	अपेक्षित आवृत्ति	अवलोकित आवृति	अपेक्षित आवृत्ति	अवलोकित आवृति	अपेक्षित आवृत्ति	अवलोकित आवृति	अपेक्षित आवृत्ति	
मैट्रिक से निचे	24	20.667	6	6.975	6	6.975	26	27.125	0	0.258	62
मैट्रिक	9	9	3	3.038	5	3.038	10	11.813	0	0.113	27
इंटर	8	7	3	2.363	2	2.363	7	9.188	1	0.088	21
स्नातक	19	24	5	8.1	7	8.1	41	31.5	0	0.3	72
परा स्नातक	10	8.333	4	2.813	1	2.813	10	10.938	0	0.104	25
व्यावसायिक/ पेशेवर	10	11	6	3.713	6	3.713	11	14.438	0	0.138	33

X^2Calculeted= 24.775
D 0f f= (col-1)*(row-1)=20
significance level=0.05
X^2tabuleted=31.410
X2Calculeted < X2tabuleted

H0 : सामाजिक-आर्थिक विशेषता के अंतर्गत वयस्क उपभोक्ताओ में शैक्षिक स्थिति (X7) का ऑनलाइन खरीददारी की मद से कोई सम्बन्ध नहीं है

H1 : सामाजिक-आर्थिक विशेषता के अंतर्गत वयस्क उपभोक्ताओ में शैक्षिक स्थिति (X7) का ऑनलाइन खरीददारी की मद से सम्बन्ध है

अर्थात शून्य परिकल्पना स्वकृत होती है अत: कहा जा सकता है की सामाजिक-आर्थिक विशेषता के अंतर्गत वयस्क उपभोक्ताओ में शैक्षिक स्थिति (X7) का ऑनलाइन खरीददारी की मद से कोई सम्बन्ध नहीं है।

तालिका 06, में शैक्षिक स्थिति और ऑनलाइन खरीददारी की विभिन्न मदों (A, B, C, D, E) के बीच संबंध का विश्लेषण किया गया है। यहाँ अवलोकित और अपेक्षित आवृत्तियों की तुलना की गई है। कुल X^2 (24.775) का परीक्षण बताता है कि यह तालिका में दी गई X^2 (31.410) से कम है, जिससे शून्य परिकल्पना (H0) स्वीकृत होती है। इसका अर्थ है कि सामाजिक-आर्थिक विशेषताओं के अंतर्गत वयस्क उपभोक्ताओं की शैक्षिक स्थिति का ऑनलाइन खरीददारी की विभिन्न मदों से कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है। इसलिए, शैक्षिक स्थिति और ऑनलाइन खरीददारी के बीच कोई स्पष्ट संबंध स्थापित नहीं होता है।

- **रोजगार एवं खरीदारी के मदों में सम्बन्ध :**

तालिका : 07

प्रतिवादियों की रोजगार की स्थिति

क्रम संख्या	रोजगार की प्रकृति	आवृति
1.	नौकरी	62
2.	व्यवसाय	58
3.	अन्य	120

तालिका 07 में प्रतिवादियों की रोजगार की स्थिति के अनुसार आवृत्ति का विवरण दिया गया है। नौकरी करने वाले प्रतिवादियों की संख्या 62 है। व्यवसाय से जुड़े 58 प्रतिवादी हैं। अन्य श्रेणी, जिसमें नौकरी और व्यवसाय के अलावा अन्य प्रकार के रोजगार आते हैं, में सबसे अधिक 120 प्रतिवादी शामिल हैं। इस तालिका से यह स्पष्ट होता है कि ष्अन्यष श्रेणी में सबसे अधिक प्रतिवादी आते हैं, जबकि नौकरी और व्यवसाय से जुड़े लोगों की संख्या लगभग समान है।

तालिका : 08

कामकाजी उपभोक्ताओ का पेशा तथा ऑनलाइन खरीददारी की मदों के बीच सम्बन्ध

पेशा	A		B		C		D		E		कुल आवृत्ति
	अवलोकित आवृत्ति	अपेक्षित आवृत्ति	अवलोकित आवृत्ति	अपेक्षित आवृत्ति	अवलोकित आवृत्ति	अपेक्षित आवृत्ति	अवलोकित आवृत्ति	अपेक्षित आवृत्ति	अवलोकित आवृत्ति	अपेक्षित आवृत्ति	
नौकरी	18	19.117	5	8.783	9	7.75	30	26.35	0	0	62
व्यवसाय	19	17.883	12	8.217	6	7.25	21	24.65	0	0	58

X^2Calculeted= 4.971

D 0f f= (col-1)*(row-1)=4

significance level=0.05

X^2tabuleted=9.488

X2Calculeted < X2tabuleted

H0 : सामाजिक-आर्थिक विशेषता के अंतर्गत वयस्क कामकाजी उपभोक्ताओ की पेशा का ऑनलाइन खरीददारी की मद से कोई सम्बन्ध नहीं है।

H1 : सामाजिक-आर्थिक विशेषता के अंतर्गत वयस्क कामकाजी उपभोक्ताओ की पेशा का ऑनलाइन खरीददारी की मद से सम्बन्ध है।

अर्थात शून्य परिकल्पना स्वकृत होती है। अत: कहा जा सकता है की सामाजिक-आर्थिक विशेषता के अंतर्गत वयस्क कामकाजी उपभोक्ताओ के पेशा का ऑनलाइन खरीददारी की मद से कोई सम्बन्ध नहीं है।

तालिका 08, में कामकाजी उपभोक्ताओं के पेशे (नौकरी और व्यवसाय) और ऑनलाइन खरीदारी की विभिन्न मदों (A, B, C, D, E) के बीच संबंध का विश्लेषण किया गया है। अवलोकित और अपेक्षित आवृत्तियों की तुलना से पता चलता है कि कुल X^2 (4.971) का मान तालिका में दिए गए X^2 (9.488) से कम है। इसलिए, शून्य परिकल्पना (H0) स्वीकृत होती है। इसका अर्थ है कि वयस्क कामकाजी उपभोक्ताओं के पेशे और ऑनलाइन खरीदारी की विभिन्न मदों के बीच कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है। अत: कहा जा सकता है कि पेशा और ऑनलाइन खरीदारी के बीच कोई सीधा संबंध स्थापित नहीं होता।

- उपभोक्ताओं के आय, शैक्षिक स्थिति एवं रोजगार का ऑनलाइन खरीदारी पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या :

उपभोक्ताओं की आय स्तर ऑनलाइन खरीदारी की प्रवृत्तियों पर गहरा प्रभाव डालता है। आमतौर पर, उच्च

आय वर्ग के उपभोक्ताओं की ऑनलाइन खरीदारी की प्रवृत्ति अधिक होती है क्योंकि उनके पास अतिरिक्त खर्च की अधिक संभावना होती है। इसके विपरीत, निम्न आय वर्ग के उपभोक्ताओं के लिए, ऑनलाइन खरीदारी अधिक बजट-सीमित होती है और वे लागत-कुशल विकल्पों की खोज में रहते हैं। अध्ययन में यह स्पष्ट होता है कि धनबाद जिले में अधिकतर उपभोक्ताओं की आय मध्यम से निम्न स्तर की है, जिससे उनके ऑनलाइन खरीदारी के पैटर्न में सीमित विविधता देखी जाती है। इस अध्ययन में पाया गया है कि उपभोक्ताओं के स्वयं की आय एवं परिवार की वार्षिक आय और ऑनलाइन खरीददारी के बीच कोई सीधा संबंध नहीं पाया गया है, जो दर्शाता है कि विभिन्न आय वर्ग के उपभोक्ता ऑनलाइन खरीददारी में समान रूप से संलग्न हो सकते हैं।

उपभोक्ताओं की शैक्षिक पृष्ठभूमि भी ऑनलाइन खरीदारी की आदतों को प्रभावित करती है। अधिक शिक्षित उपभोक्ता ऑनलाइन प्लेटफार्मों का बेहतर उपयोग कर सकते हैं और उनके पास उत्पादों की तुलना, समीक्षा पढ़ने, और मूल्य संविदान की क्षमता होती है। धनबाद जिले में, उच्च शैक्षिक स्तर वाले उपभोक्ता ऑनलाइन खरीदारी की विविधता और गुणवत्ता को बेहतर ढंग से समझते हैं, जबकि कम शिक्षित उपभोक्ताओं के लिए ऑनलाइन खरीददारी प्रक्रिया में कुछ हिचकिचाहट हो सकती है। यद्यपि इसका धनबाद जिले अंतर्गत वयस्क उपभोक्ताओं की शैक्षिक स्थिति का ऑनलाइन खरीददारी की विभिन्न मदों से कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है। इसलिए, शैक्षिक स्थिति और ऑनलाइन खरीददारी के बीच कोई स्पष्ट संबंध स्थापित नहीं होता है।

उपभोक्ताओं की रोजगार की स्थिति उनकी खरीदारी की आदतों को प्रभावित करती है। नौकरी पेशा लोग स्थिर आय और बेहतर वित्तीय सुरक्षा के कारण नियमित ऑनलाइन खरीदारी कर सकते हैं, जबकि व्यवसायी और स्वतंत्र पेशेवरों की आय में अस्थिरता हो सकती है, जिससे वे ऑनलाइन खर्चों पर सावधानी बरतते हैं। धनबाद जिले में, व्यवसाय और अन्य रोजगार वाले उपभोक्ताओं की ऑनलाइन खरीदारी के रुझान नौकरी पेशा लोगों की तुलना में भिन्न हो सकते हैं, जिससे ऑनलाइन प्लेटफार्मों पर उनकी भागीदारी में भिन्नता देखी जाती है। यद्यपि धनबाद जिले के वयस्क कामकाजी उपभोक्ताओं के पेशे और ऑनलाइन खरीदारी की विभिन्न मदों के बीच कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं पाया गया। अत: कहा जा सकता है कि पेशा और ऑनलाइन खरीदारी के बीच कोई सीधा संबंध स्थापित नहीं होता।

निष्कर्ष :

धनबाद जिले में उपभोक्ताओं का आय स्तर, शैक्षिक स्थिति, और रोजगार की प्रकृति का ऑनलाइन खरीदारी पर प्रभाव का अध्ययन कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। आय स्तर के अनुसार, अध्ययन में पाया गया है कि उपभोक्ताओं की स्वयं की आय और परिवार की वार्षिक आय का ऑनलाइन खरीदारी के साथ कोई स्पष्ट संबंध नहीं है। यह दर्शाता है कि विभिन्न आय वर्ग के उपभोक्ता समान रूप से ऑनलाइन खरीदारी में संलग्न हो सकते हैं, हालांकि उच्च आय वर्ग की अपेक्षाकृत अधिक ऑनलाइन खरीदारी की प्रवृत्ति का सामान्य अवलोकन है। शैक्षिक स्थिति का भी ऑनलाइन खरीदारी पर प्रभाव स्पष्ट नहीं हुआ है। यद्यपि उच्च शिक्षित उपभोक्ता बेहतर ऑनलाइन खरीदारी की क्षमता रखते हैं, धनबाद जिले में शैक्षिक स्थिति और खरीदारी के बीच कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं पाया गया है। इसी प्रकार, रोजगार की स्थिति के संदर्भ में, नौकरी पेशा और अन्य रोजगार वाले उपभोक्ताओं के बीच भी ऑनलाइन खरीदारी में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं देखा गया है। ऑनलाइन रिटेलर्स विभिन्न आय वर्ग के उपभोक्ताओं के लिए विशेष ऑफर और छूट प्रदान कर सकते हैं ताकि सभी वर्गों के उपभोक्ताओं को आकर्षित किया जा सके। ऑनलाइन खरीदारी की प्रक्रिया और लाभों के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए शैक्षिक अभियान चलाए जा सकते हैं, जो कम शिक्षित उपभोक्ताओं की ऑनलाइन खरीदारी में

वृद्धि कर सकते हैं। विभिन्न रोजगार की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए विशेष योजनाएं और भुगतान विकल्प प्रदान किए जा सकते हैं, ताकि व्यवसायी और स्वतंत्र पेशेवर भी ऑनलाइन खरीदारी में सहजता महसूस करें। इन सुझावों को लागू करने से ऑनलाइन खरीदारी के अनुभव को समृद्ध और समावेशी बनाया जा सकता है।

संदर्भ :

1. शांडिल्य, ए. के. (2014). अर्बन कंस्यूमर्स श्परेफरेंस फॉर ऑर्गनाइज एंड अनऑर्गनाइज फूड रिटेलिंग इन द स्टेट ऑफ झारखण्ड, इंडिया. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हॉस्पिटैलिटी एंड टूरिज्म सिस्टम्स, 7(2).
2. कुमार, एम., एंड सिंह, एस. (2020). इफेक्टिवनेस ऑफ सोशल मीडिया मार्केटिंग एंड पब्लिक रिलेशन ऑफ सनीटॉयजर मनुफक्चरर्स ऑन परसेप्शन ऑफ कस्टमर्स : अ स्टडी ऑफ झारखण्ड (इंडिया). सुमेधा जर्नल ऑफ मैनेजमेंट, 9(3), 40-48.
3. सिंह, ए. के., एंड साइलो, एम. (2013). कंस्यूमर बिहेवियर इन ऑनलाइन शॉपिंग : अ स्टडी ऑफ ऐजौल. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ बिजनेस एंड मैनेजमेंट रिसर्च, 1(3), 45-49.
4. विद्या, एम., एंड सेल्वमानी, पी. (2019). कंस्यूमर बेहेवियर टुवर्ड्स ऑनलाइन शॉपिंग -अन एनालिसिस विथ प्रोडक्ट डाइमेंशन्स. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इनोवेटिव टेक्नोलॉजी एंड एक्सप्लोरिंग इंजीनियरिंग, 8(12), 511-514.
5. मुंतखिम, एम., एंड रैकेर, एस. डी. (2019). अ स्टडी ऑन कंस्यूमर बेहेवियर टुवर्ड्स ऑनलाइन एंड ऑफलाइन शॉपिंग. आई आर ई जर्नल्स, 3(4), 56-62.
6. जावा, एच. ए., एंड चेची, के. (2015). फैक्टर्स इन्फ्लुएंसिंग कंस्यूमर बिहेवियर टुवर्ड्स ऑनलाइन शॉपिंग इन सऊदी अरबिया. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीकल्चरल एंड मल्टी रिलीजियस अंडरस्टैंडिंग, 2(4), 1-10.
7. कौर, एच., एंड कोचर, आर. (2018). अ रिव्यु ऑफ फैक्टर्स अफ्फेक्टिंग कंस्यूमर बिहेवियर टुवर्ड्स ऑनलाइन शॉपिंग. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंजीनियरिंग एंड मैनेजमेंट रिसर्च. 8(4), 54-58.
8. लिम, वाई.जे., उस्मान, ए., सलाउद्दीन, एस.एन., रोमले, ए.आर., और अब्दुल्ला, एस. (2016) फैक्टर्स इन्फ्लुएंसिंग ऑनलाइन शॉपिंग बिहेवियर : द मेडिएटिंग रोल ऑफ परचेस इंटेंशन. प्रोसडीए इकोनॉमिक्स एंड फाइनेंस, 35, 401-410.
9. गोंग, डब्ल्यू., स्टंप, आर.एल., और मैडॉक्स, एल.एम. (2013). फैक्टर्स इन्फ्लुएंसिंग कंस्यूमर्स 'ऑनलाइन शॉपिंग इन चीन. जर्नल ऑफ एशिया बिजनेस स्टडीज, 7(3), 214-230.
10. बाउबोनिने, जेड., और गुलेविसिटि, जी. (2015) इ -कॉमर्स फैक्टर्स इन्फ्लुएंसिंग कंस्यूमर्स 'ऑनलाइन शॉपिंग डिसिशन. सोशल टेक्नोलॉजीज, 5(1), 62-73.

●●●

झारखंड में लैंगिक न्याय : निष्पक्ष, शैक्षणिक एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

❍ अनिता रंजन[1]

1. परिचय

शैक्षणिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय की परिभाषा

नैन्सी फ्रेजर (1997) और मार्था नुसबाम (2000) द्वारा चर्चा किए गए लैंगिक न्याय की अवधारणा केवल लैंगिक समानता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह विभिन्न लिंगों के बीच शक्ति और अवसरों के न्यायसंगत वितरण पर केंद्रित है। फ्रेजर की जस्टिस इंटरप्टस में उन सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाओं को ध्वस्त करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है जो हाशिए पर रखते हैं, जबकि नुसबाम के क्षमताओं के दृष्टिकोण (ब्ंचंइपसपजपमे ।चचतवंबी) में व्यक्तियों को पर्याप्त स्वतंत्रताएँ प्राप्त करने में सक्षम बनाने की महत्ता पर बल दिया गया है। शैक्षणिक क्षेत्र में इसका अर्थ है संस्थागत बाधाओं को तोड़ना, जो महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों की भागीदारी को सीमित करती हैं, और ज्ञान सृजन के लिए समावेशी वातावरण बनाना।

भारत में, उमा चक्रवर्ती (1998) जैसे विद्वान यह बताते हैं कि जाति, वर्ग और लैंगिक किस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों, जैसे झारखंड में, शिक्षा तक पहुँच को प्रभावित करते हैं। शैक्षणिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय के लिए आवश्यक है कि उन सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं को तोड़ा जाए जो न्यायसंगत भागीदारी में बाधक हैं।

सशक्तीकरण और शैक्षणिक क्षेत्र में इसकी भूमिका

शैक्षणिक क्षेत्र में सशक्तिकरण एक सक्रिय प्रक्रिया है, जैसा कि पाउलो फ्रेरे (1970) की पेडागॉजी ऑफ द ऑपरेस्ट में वर्णित है, जो हाशिए पर रखे गए समूहों को संलग्न होने और नेतृत्व करने में सक्षम बनाता है। अमर्त्य सेन (1999) का तर्क है कि सच्चा सशक्तिकरण उन स्वतंत्रताओं का विस्तार करना चाहिए, विशेष रूप

1. सहायक प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, गोस्सनर कॉलेज, रांची विश्वविद्यालय, रांची

से महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों के लिए, जो झारखंड जैसे क्षेत्रों में सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाओं का सामना करते हैं। सशक्तिकरण नवाचार को प्रोत्साहित करता है, रूढ़िवादिता को तोड़ता है और समावेशी शोध और नेतृत्व को बढ़ावा देता है, जैसा कि अग्रवाल (2020) द्वारा रेखांकित किया गया है।

उद्देश्य और डेटा

यह अध्ययन रांची विश्वविद्यालय के 2023 के शोध पर आधारित है, जिसमें झारखंड के उच्च शिक्षा क्षेत्र में लैंगिक असमानताओं की जांच की गई है। अध्ययन से पता चलता है कि महिलाओं की नामांकन दर 20% कम है, जिसका कारण पितृसत्तात्मक मान्यताओं और आर्थिक बाधाओं को माना गया है। ट्रो (1974) और राज एवं सेन (2021) जैसे विद्वानों का जोर है कि लैंगिक समानता प्राप्त करने के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन आवश्यक है।

तालिका 1: उच्च शिक्षा और शोध में पुरुषों और महिलाओं की नामांकन प्रवृत्तियाँ

सूचक	पुरुष (%)	महिला (%)
उच्च शिक्षा में नामांकन	65	45
शैक्षणिक शोध में भागीदारी	55	35

आकृति 1: उच्च शिक्षा और शोध में पुरुषों और महिलाओं की नामांकन प्रवृत्तियाँ

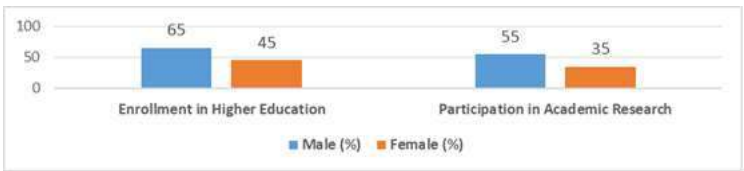

2. शैक्षणिक क्षेत्र में लैंगिक असमानताओं का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: वैश्विक और भारतीय दृष्टिकोण

वैश्विक स्तर पर, महिलाएँ और लैंगिक अल्पसंख्यक अकादमिक स्थानों से लगातार बाहर रखे गए हैं। नारीवादी विद्वानों जैसे सिमोन दे ब्यूवार (1949) और वर्जीनिया वूल्फ (1929) ने उन सामाजिक संरचनाओं की आलोचना की, जो महिलाओं को घरेलू भूमिकाओं तक सीमित कर देती थीं और उनकी शैक्षणिक भागीदारी को बाधित करती थीं। वूल्फ का ष्अपना एक कमराष (। त्ववउ वि व्दमश्े व्द्र) का विचार महिलाओं विद्वानों के लिए वित्तीय स्वतंत्रता और संस्थागत पहुंच के महत्व को उजागर करता है। महिलाओं को उच्च शिक्षा से बड़े पैमाने पर 1800 के दशक के मध्य तक बाहर रखा गया, जब अमेरिका में ओबर्लिन कॉलेज जैसे संस्थानों ने सीमित शर्तों के तहत महिलाओं को प्रवेश देना शुरू किया। जैसा कि जोन वालाच स्कॉट (1999) ने कहा है, शैक्षणिक संस्थानों में पुरुष-प्रधान व्यवस्थाओं ने ज्ञान निर्माण और नेतृत्व में पक्षपाती आख्यानों को कायम रखा।

भारत में, शिक्षा में लैंगिक असमानताओं की गहरी सामाजिक-सांस्कृतिक जड़ें हैं। सावित्रीबाई फुले जैसे अग्रणियों ने जाति और लैंगिक असमानताओं को खत्म करने के लिए महिला शिक्षा की वकालत की, फिर भी

औपनिवेशिक और स्वतंत्रता के बाद के कालों में शिक्षा तक पहुँच सीमित रही। उमा चक्रवर्ती (1998) और मैरी जॉन (2012) जैसे विद्वानों ने बताया कि जाति, वर्ग, और लैंगिक आज भी शिक्षा तक पहुँच को प्रतिबंधित करते हैं, खासकर हाशिए की महिलाओं के लिए। झारखंड में, आदिवासी और ग्रामीण समुदायों को आर्थिक और पितृसत्तात्मक बाधाओं के कारण गहन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं का नामांकन कम और नेतृत्व के अवसर सीमित होते हैं। महिलाओं की भागीदारी बढ़ने के बावजूद, वे नेतृत्व में कम प्रतिनिधित्व रखती हैं, और शीर्ष पदों पर 10% से भी कम महिलाएँ हैं।

तालिका 2: लैंगिक के आधार पर शैक्षणिक नेतृत्व में असमानता

शैक्षणिक भूमिका	पुरुष (%)	महिला (%)
प्रोफेसरशिप	80	20
नेतृत्व पद	90	10
शैक्षणिक प्रकाशन	70	30

आकृति 2: लैंगिक के आधार पर शैक्षणिक नेतृत्व में असमानता

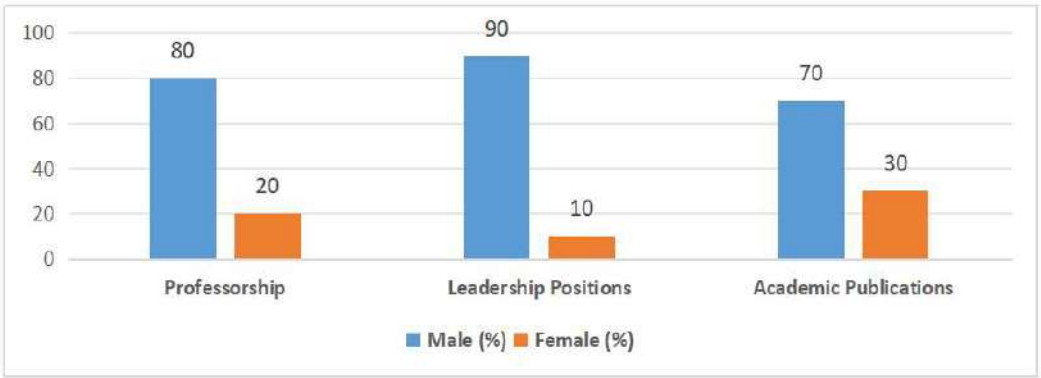

3. शैक्षणिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय की प्रमुख चुनौतियाँ: झारखंड परिप्रेक्ष्य

झारखंड के शैक्षणिक संस्थानों में लैंगिक न्याय प्राप्त करना गहरे सामाजिक और सांस्कृतिक ढांचों के कारण चुनौतीपूर्ण है। नैला कबीर (1999) का तर्क है कि लैंगिक असमानता संस्थागत और सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताओं से उत्पन्न होती है, जो शिक्षा, नेतृत्व, और रोजगार तक पहुँच को प्रभावित करती है। प्रमुख चुनौतियों में लैंगिक पूर्वाग्रह, STEMड (विज्ञान, प्रौद्योगिकी, अभियांत्रिकी, और गणित) में कम प्रतिनिधित्व, नेतृत्व बाधाएँ, कार्य-जीवन संतुलन, और लैंगिक-आधारित हिंसा शामिल हैं।

लैंगिक पूर्वाग्रह और रूढ़िवादिता

शैक्षणिक क्षेत्र में लैंगिक पूर्वाग्रह बुरदिउ (1977) के सामाजिक पुनरुत्पादन सिद्धांत को दर्शाता है, जहाँ शैक्षिक प्रणालियाँ मौजूदा शक्ति गतिशीलताओं को बनाए रखती हैं। झारखंड में, महिलाओं से अक्सर घरेलू कार्यों का प्रबंधन करने की अपेक्षा की जाती है, जिससे उनकी शैक्षणिक अवसर सीमित हो जाते हैं। गुप्ता (2017)

द्वारा किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि महिलाएँ अक्सर निचले शैक्षणिक पदों तक ही सीमित रहती हैं, जो पितृसत्तात्मक मानदंडों को मजबूत करता है।

STEM में कम प्रतिनिधित्व

STEM क्षेत्रों में महिलाएँ काफी कम प्रतिनिधित्व में हैं, जहाँ भारत में 30% से भी कम STEM छात्राएँ महिलाएँ हैं (De & Nagarajan, 2018)। झारखंड में यह प्रवृत्ति पितृसत्तात्मक अपेक्षाओं के कारण और भी बढ़ जाती है। महिला मार्गदर्शकों की अनुपस्थिति महिलाओं को STEM करियर में आगे बढ़ने से और हतोत्साहित करती है (Schiebinger, 2008)।

नेतृत्व में बाधाएँ

झारखंड के शैक्षणिक संस्थानों में 10% से भी कम नेतृत्व पद महिलाओं द्वारा संभाले जाते हैं, जो नेतृत्व के रास्ते में लैंगिक आधारित बाधाओं को दर्शाता है (Morley, 2014)। इस प्रतिनिधित्व की कमी संस्थागत नीतियों पर महिलाओं के प्रभाव को सीमित करती है और मौजूदा शक्ति असंतुलनों को मजबूत करती है (ल्वनदह, 1990)।

कार्य-जीवन संतुलन और लैंगिक-आधारित हिंसा

शैक्षणिक क्षेत्र में महिलाएँ 'दूसरी शिफ्ट' का सामना करती हैं, जिसमें उन्हें घरेलू और पेशेवर जिम्मेदारियों को संतुलित करना पड़ता है (Hochschild, 1989), और यह अपर्याप्त संस्थागत समर्थन से और जटिल हो जाता है। लैंगिक-आधारित हिंसा व्यापक बनी हुई है, जिसमें झारखंड के शैक्षणिक संस्थानों में 40% से अधिक महिलाएँ उत्पीड़न की रिपोर्ट करती हैं, जिससे असुरक्षित वातावरण बनते हैं (झंसचंदं, 2019)।

तालिका 3: शैक्षणिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय की चुनौतियाँ

चुनौती	प्रभाव का प्रतिशत
लैंगिक पूर्वाग्रह और रूढ़िवादिता	35%
STEM में कम प्रतिनिधित्व	25%
नेतृत्व में बाधाएँ	20%
कार्य-जीवन संतुलन	15%
लैंगिक-आधारित हिंसा और उत्पीड़न	40%

आकृति 3 - शैक्षणिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय की चुनौतियाँ

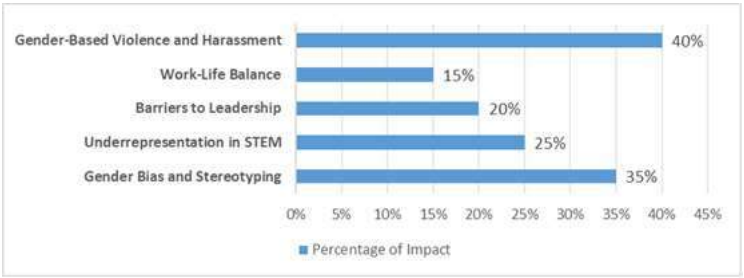

4. लैंगिक-न्यायपूर्ण नीतियों के माध्यम से अकादमिक सशक्तीकरण: झारखंड पर केंद्रित

शैक्षणिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय प्राप्त करने के लिए ऐसी परिवर्तनकारी नीतियों की आवश्यकता है जो हाशिए पर पड़े लिंगों को सशक्त बनाएं। अमर्त्य सेन (1999) और नैला कबीर (1999) का तर्क है कि नीतियों को स्वतंत्रताओं का विस्तार करना चाहिए, जिससे व्यक्तियों को अपनी पूरी क्षमता तक पहुंचने का अवसर मिल सके। झारखंड में विशेष रूप से, प्रमुख हस्तक्षेपों में सकारात्मक कार्रवाई, लैंगिक-संवेदनशील पाठ्यक्रम, परामर्श, और संस्थागत समर्थन शामिल हैं।

सकारात्मक कार्रवाई और कोटा

सकारात्मक कार्रवाई, जैसे लैंगिक आधारित कोटा, अकादमिक क्षेत्र में ऐतिहासिक बहिष्कार को संबोधित करती है। जोशी और श्रीवास्तव (2020) के अनुसार, ये कोटा फ्ज्म्ड क्षेत्रों में विशेष रूप से प्रतिनिधित्व बढ़ाते हैं। हालांकि, जैसा कि बुरदिउ (1977) ने बताया, केवल कोटा ही पर्याप्त नहीं हैं, जब तक कि महिलाओं की भागीदारी को सीमित करने वाली सामाजिक-आर्थिक बाधाओं को दूर करने के लिए संरचनात्मक परिवर्तन न किए जाएँ।

लैंगिक-संवेदनशील पाठ्यक्रम

एक लैंगिक-संवेदनशील पाठ्यक्रम समावेशिता को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है। बेल हुक्स (1994) और पाउलो फ्रेरे (1970) के दृष्टिकोण से, ऐसे पाठ्यक्रम पितृसत्तात्मक मान्यताओं को चुनौती देते हैं और लैंगिक अध्ययन को व्यापक विषयों में शामिल करते हैं। जैसा कि मेहता (2018) का तर्क है, यह दृष्टिकोण लैंगिक मुद्दों की समग्र समझ को सुनिश्चित करता है।

परामर्श कार्यक्रम

परामर्श नेतृत्व में अंतर को पाटने में सहायक हो सकता है। कुमार (2020) बताते हैं कि प्रभावी परामर्श अकादमिक क्षेत्रों में मार्गदर्शन प्रदान करता है, खासकर झारखंड में, जहाँ महिलाएँ नेतृत्व में कम प्रतिनिधित्व रखती हैं। कैरल गिलिगन (1982) जोर देती हैं कि संबंधपरक समर्थन हाशिए के समूहों को सफल होने में मदद करता है।

कार्य-जीवन संतुलन और यौन उत्पीड़न

कार्य-जीवन संतुलन नीतियाँ, जिनमें मातृत्व अवकाश और लचीला कार्य शामिल हैं, महिलाओं को अकादमिक क्षेत्र में बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण हैं (भ्वबीबीपसक, 1989)। कैथरीन मैककिनन (1979) के अनुसार, यौन उत्पीड़न को संबोधित करने के लिए मजबूत संस्थागत तंत्र, पारदर्शिता, और जवाबदेही आवश्यक हैं ताकि सभी के लिए सुरक्षित अकादमिक स्थान बनाए जा सकें।

तालिका 4: लैंगिक अन्याय को संबोधित करने के लिए संस्थागत समर्थन

नीति हस्तक्षेप	सशक्तिकरण पर प्रभाव (%)
सकारात्मक कार्रवाई और कोटा	40%
लैंगिक-संवेदनशील पाठ्यक्रम	25%
परामर्श और समर्थन नेटवर्क	15%
मातृत्व अवकाश और लचीला कार्य	10%
यौन उत्पीड़न का समाधान	10%

आकृति 4 - लैंगिक अन्याय को संबोधित करने के लिए संस्थागत समर्थन

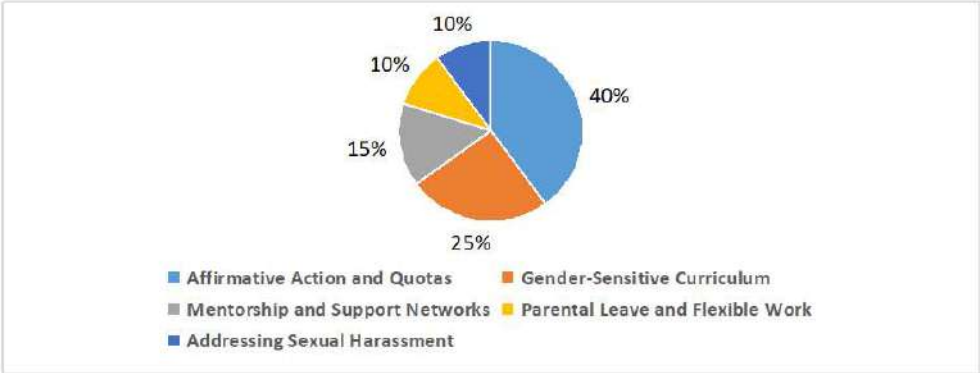

5. अकादमिक क्षेत्र पर लैंगिक न्याय का परिवर्तनकारी प्रभाव: झारखंड पर केंद्रित अध्ययन

अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय का अर्थ है समावेशिता, विविधता, और सहयोग को बढ़ावा देना। जूडिथ बटलर (1990) और किम्बर्ले क्रेंशॉ (1991) जैसे विद्वानों का मानना है कि सच्ची समानता के लिए जाति और वर्ग जैसे परस्पर जुड़ी हुई पहचानों के साथ-साथ लैंगिक को भी संबोधित करने की आवश्यकता है। झारखंड में, जहाँ सामाजिक-आर्थिक बाधाएँ शैक्षिक भागीदारी को सीमित करती हैं, लैंगिक न्याय शोध, नेतृत्व, और छात्र अनुभवों में व्यापक परिवर्तन ला सकता है, जिससे व्यापक सामाजिक विकास में योगदान होगा।

समावेशी अनुसंधान एजेंडा

लैंगिक न्याय हाशिए पर पड़े दृष्टिकोणों को शामिल कर शोध में विविधता लाता है। क्रेंशॉ (1991) का इंटरसेक्शनैलिटी सिद्धांत यह बताता है कि कैसे लैंगिक, जाति, और वर्ग अनुभवों को आकार देते हैं। झारखंड में, समावेशी नीतियाँ महिलाओं के स्वास्थ्य और लैंगिक आधारित हिंसा जैसे मुद्दों पर गंभीर रूप से ध्यान देती हैं, जिससे शैक्षिक उत्पादन में समृद्धि आती है और सामाजिक न्याय को बढ़ावा मिलता है।

सहयोगी नेतृत्व

समावेशी नेतृत्व सहयोग और समानता को बढ़ावा देता है। आयरिस मैरियन यंग (1990) का तर्क है कि विविध नेतृत्व अधिक लोकतांत्रिक निर्णय लेने की प्रक्रियाओं की ओर ले जाता है। झारखंड में, जहाँ बहुत कम महिलाएँ नेतृत्व भूमिकाओं में हैं, विविधता को बढ़ावा देने वाले सुधार शासन में परिवर्तन ला सकते हैं और पितृसत्तात्मक ढाँचों को चुनौती दे सकते हैं।

छात्र अनुभवों को बेहतर बनाना

लैंगिक-न्यायपूर्ण वातावरण सीखने की समता का समर्थन करता है। बेल हुक्स (1994) के सिद्धांतों के अनुसार, समावेशी कक्षाएँ बेहतर शैक्षिक परिणाम उत्पन्न करती हैं। झारखंड में, लैंगिक-संवेदनशील नीतियाँ, परामर्श, और सुरक्षित स्थान हाशिए पर पड़े छात्रों को सफल होने में मदद करते हैं, जिससे छात्र प्रतिधारण और कल्याण में सुधार होता है।

आर्थिक और सामाजिक लाभ

अमर्त्य सेन (1999) शिक्षा के सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता में योगदान को महत्व देते हैं। झारखंड के अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक समानता कार्यबल की भागीदारी, नवाचार और दीर्घकालिक आर्थिक वृद्धि को बढ़ावा

देती है। लैंगिक न्याय न केवल नैतिक है बल्कि व्यापक सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक है।

तालिका 5: अकादमिक स्थानों पर लैंगिक न्याय का परिवर्तनकारी प्रभाव

प्रभाव क्षेत्र	प्रभावशीलता (%)
समावेशी और विविध शोध	35%
सहयोगी और समावेशी नेतृत्व	25%
छात्र अनुभवों को बेहतर बनाना	20%
दीर्घकालिक सामाजिक और आर्थिक लाभ	20%

आकृति 5 – अकादमिक स्थानों पर लैंगिक न्याय का परिवर्तनकारी प्रभाव

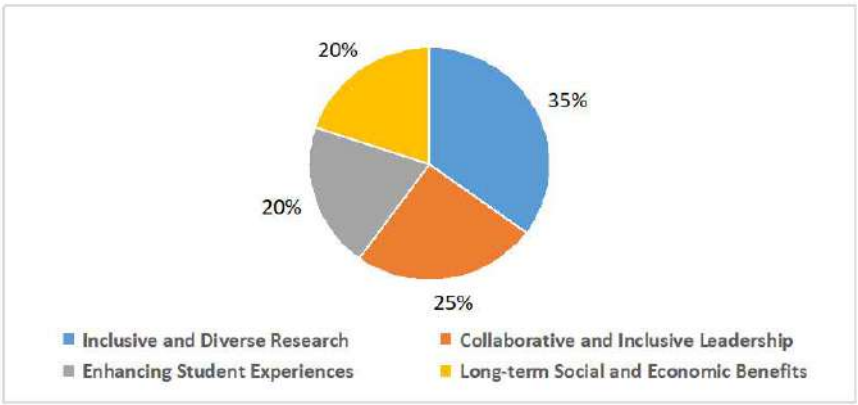

6. केस स्टडीज और उदाहरण: अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय

अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय को लेकर वैश्विक स्तर पर कई सफल कहानियाँ उभरकर सामने आई हैं, जिन्होंने पारंपरिक लैंगिक मानदंडों को तोड़ते हुए महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों को सशक्त किया है। नारीवादी विद्वानों जैसे गायत्री स्पिवाक (1988) और वंदना शिवा (1989) का मानना है कि ये उदाहरण महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों को सशक्त करने के लिए महत्वपूर्ण खाका प्रदान करते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय सफलताएँ

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय और हार्वर्ड विश्वविद्यालय जैसी संस्थानों ने ऑक्सफोर्ड वीमेन लीडरशिप इनिशिएटिव और वीमेन एंड पब्लिक पॉलिसी प्रोग्राम जैसी पहलों को लागू किया है। ये कार्यक्रम परामर्श, शोध , और नेतृत्व के अवसरों के माध्यम से लैंगिक समानता को बढ़ावा देते हैं, विशेष रूप से पारंपरिक रूप से पुरुष-प्रधान क्षेत्रों में महिलाओं के लिए। कैप टाउन विश्वविद्यालय, जिसे महमूद ममदानी (2004) द्वारा संचालित किया गया, समावेशी शिक्षा नीतियों के माध्यम से व्यापक सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देने और महिलाओं के प्रतिनिधित्व और शोध उत्पादन में वृद्धि करने का एक उदाहरण है।

भारतीय अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय

भारतीय विश्वविद्यालयों ने भी लैंगिक समानता की दिशा में उल्लेखनीय कदम उठाए हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय ने लैंगिक-संवेदनशीलता कार्यशालाओं और ैज्म्ड क्षेत्रों में छात्रवृत्तियों की शुरुआत की, जिससे महिलाओं के प्रतिनिधित्व में वृद्धि हुई। टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज (ज्ै) ने अपने पाठ्यक्रम में नारीवादी दृष्टिकोण को एकीकृत किया, जिससे लैंगिक-न्याय शोध को प्रोत्साहन मिला। इसी तरह, प्प्ज् ने महिलाओं को इंजीनियरिंग के क्षेत्र में प्रोत्साहित करने के लिए लैंगिक आधारित आरक्षण की शुरुआत की है।

झारखंड में सफलता

रांची की डॉ. नेहा कुमारी ने सामाजिक बाधाओं को पार करते हुए पर्यावरण विज्ञान में उत्कृष्टता हासिल की, जिसमें उन्हें परामर्श और लैंगिक-समावेशी नीतियों का लाभ मिला। झारखंड में 2023 के अध्ययनों से पता चलता है कि परामर्श और संस्थागत समर्थन हाशिए पर पड़े समुदायों की महिलाओं को अकादमिक क्षेत्र में सफलता दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

तालिका 6: महिला सशक्तिकरण पर लैंगिक न्याय पहलों का प्रभाव

सूचक	प्रतिशत
महिला नामांकन में वृद्धि (IITs)	15%
STEM क्षेत्रों में महिलाओं की सफलता दर	20%
परामर्श कार्यक्रमों का प्रभाव	30%

आकृति 6 - महिला सशक्तिकरण पर लैंगिक न्याय पहलों का प्रभाव

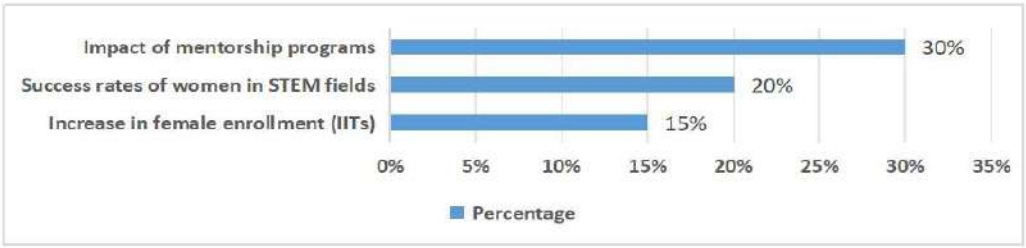

7. भविष्य की दिशा और सिफारिशें: अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय

अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयास, नवाचारात्मक रणनीतियाँ, और प्रभावी नीतियों का कार्यान्वयन आवश्यक है जो समावेशिता और समानता को बढ़ावा दें। मार्था नुसबाम (2000) और अमर्त्य सेन (1999) जैसे विद्वान यह तर्क करते हैं कि लैंगिक समानता को केवल औपचारिक समानता से परे जाना चाहिए और महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों की भागीदारी को सीमित करने वाली संरचनात्मक और सांस्कृतिक बाधाओं को सक्रिय रूप से संबोधित करना चाहिए। इस अनुभाग में झारखंड और भारतीय संदर्भ पर विशेष ध्यान देते हुए लैंगिक न्याय को आगे बढ़ाने के लिए भविष्य की दिशाएँ और मुख्य सिफारिशें प्रस्तुत की गई हैं।

लैंगिक-संवेदनशील नीतियों को मजबूत करना

सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र लैंगिक-संवेदनशील नीतियों का विकास और प्रवर्तन है। जैसा कि नायला कबीर (1999) द्वारा सुझाव दिया गया है, इन नीतियों को केवल शिक्षा तक पहुँच प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित नहीं करना चाहिए, बल्कि हाशिए पर पड़े समूहों की क्षमताओं को भी विस्तारित करना चाहिए। अकादमिक क्षेत्र में, इसका तात्पर्य दोनों संरचनात्मक और सांस्कृतिक बाधाओं को संबोधित करने से है।

झारखंड और पूरे भारत में संस्थानों को नेतृत्व पदों जैसे डीन, विभागाध्यक्ष और कुलपति के लिए लैंगिक कोटा पेश करना चाहिए। मोर्ले (2014) द्वारा किए गए अनुसंधान से पता चलता है कि कोटा विविधता को बढ़ावा देने के लिए एक प्रभावी उपकरण हो सकता है, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ पितृसत्तात्मक मानक प्रबल हैं। इसके अलावा, लचीले कार्य घंटे, सभी लिंगों के लिए पेरेंटल लीव, और हाशिए पर पड़े समूहों के लिए सुरक्षित स्थान जैसी नीतियाँ संरचनात्मक बाधाओं को कम करने के लिए आवश्यक हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (न्ळब) की लैंगिक समानता पर दिशानिर्देशों को छोटे संस्थानों तक विस्तारित किया जाना चाहिए, विशेषकर झारखंड जैसे ग्रामीण क्षेत्रों में। इन नीतियों को उन विशेष सांस्कृतिक और सामाजिक चुनौतियों को संबोधित करने के लिए तैयार किया जाना चाहिए जिनका सामना महिलाओं को आदिवासी और ग्रामीण समुदायों में करना पड़ता है, जहाँ उच्च शिक्षा तक पहुँच अक्सर पितृसत्तात्मक मानकों, आर्थिक बाधाओं और सीमित बुनियादी ढांचे द्वारा सीमित होती है।

पुरुषों को सहयोगी के रूप में शामिल करना

लैंगिक न्याय प्राप्त करने के लिए पुरुषों की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है, विशेषकर जो शक्तिशाली पदों पर हैं। माइकल किमेल (1993) जैसे विद्वानों ने लैंगिक समानता को बढ़ावा देने में पुरुषों को सहयोगी के रूप में शामिल करने के महत्व पर जोर दिया है, यह तर्क करते हुए कि पुरुषों को लैंगिक न्याय के संघर्ष में सक्रिय प्रतिभागी होना चाहिए, न कि केवल दर्शक।

अकादमिक संस्थानों में, पुरुष लैंगिक समानता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, जैसे कि मेंटर के रूप में सेवा करना, समावेशी नीतियों का समर्थन करना, और भेदभावपूर्ण प्रथाओं को चुनौती देना। संस्थान पुरुष फैकल्टी और स्टाफ के लिए लैंगिक पूर्वाग्रहों और समावेशी अकादमिक स्थानों के महत्व के बारे में शिक्षा देने वाले वर्कशॉप और प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित कर सकते हैं। पुरुष फैकल्टी सदस्यों को महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों के लिए मेंटर के रूप में प्रोत्साहित करना एक अधिक समावेशी और सहायक वातावरण को बढ़ावा दे सकता है, जो अंततः पूरे अकादमिक समुदाय को लाभान्वित करेगा।

इसके अतिरिक्त, पुरुषों को सहयोगी के रूप में शामिल करने की पहल को छात्र स्तर पर भी बढ़ावा देना चाहिए। छात्र संगठनों को लैंगिक न्याय के लिए प्रभावी वकालत करने, जागरूकता बढ़ाने, और लैंगिक पूर्वाग्रहों को चुनौती देने वाली पहलों का नेतृत्व करने में शक्तिशाली भूमिका निभा सकते हैं। पुरुष छात्रों को लैंगिक समानता पहलों में शामिल करके, संस्थान एक नई पीढ़ी के नेताओं को तैयार कर सकते हैं जो अकादमिक और पेशेवर स्थानों में लैंगिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

निगरानी और उत्तरदायित्व तंत्र

लैंगिक-संवेदनशील नीतियों की प्रभावशीलता के लिए, संस्थानों को पारदर्शी निगरानी और उत्तरदायित्व तंत्र स्थापित करना चाहिए। मोर्ले और क्रॉसार्ड (2016) द्वारा किए गए अनुसंधान से पता चलता है कि नियमित लैंगिक ऑडिट, सर्वेक्षण और रिपोर्टिंग सिस्टम नीति के कार्यान्वयन की प्रगति को ट्रैक करने के लिए महत्वपूर्ण

हैं। ये तंत्र सुनिश्चित करते हैं कि नीतियाँ केवल थ्योरी में न रहें बल्कि सक्रिय रूप से लागू और प्रवर्तन की जाएं।

झारखंड में, अकादमिक संस्थान स्थानीय सरकारों और गैर-सरकारी संगठनों (छळठे) के साथ मिलकर काम कर सकते हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि लैंगिक समानता पहलों को स्थानीय संदर्भ में प्रासंगिक और प्रभावी ढंग से निगरानी की जाए। लैंगिक ऑडिट नियमित रूप से किए जाने चाहिए ताकि नेतृत्व, अनुसंधान, और छात्र निकायों में महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व मूल्यांकन किया जा सके। इसके अतिरिक्त, सर्वेक्षण का उपयोग महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों के अकादमिक अनुभवों के डेटा को एकत्रित करने के लिए किया जा सकता है, जिससे आगे की हस्तक्षेप की जरूरत वाले क्षेत्रों की पहचान की जा सके।

नीतियों के कार्यान्वयन की निगरानी के लिए संस्थागत लैंगिक-समता परिषदों को विकसित करना एक अन्य महत्वपूर्ण सिफारिश है। इन परिषदों में सभी स्तरों के अकादमिक समुदाय के प्रतिनिधि शामिल होने चाहिए, जिसमें छात्र, फैकल्टी, और प्रशासन शामिल हैं, ताकि नीतियाँ सभी हितधारकों की आवश्यकताओं के प्रति उत्तरदायी हो सकें। एक उत्तरदायित्व ढांचा स्थापित किया जाना चाहिए ताकि संस्थानों को लैंगिक समानता लक्ष्यों को पूरा करने में विफल रहने के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सके, यह सुनिश्चित करते हुए कि प्रगति मापनीय और टिकाऊ हो।

मेंटरशिप और समर्थन नेटवर्क में निवेश

अकादमिक क्षेत्र में महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों को सशक्त बनाने के लिए मेंटरशिप और समर्थन नेटवर्क महत्वपूर्ण हैं। जॉनसन और स्मिथ (2020) द्वारा किए गए अनुसंधान से पता चलता है कि मेंटरशिप कार्यक्रम महिलाओं की संधारण और सफलता दर को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ाते हैं। झारखंड में, जहाँ आदिवासी और ग्रामीण समुदायों से महिलाओं को अक्सर अतिरिक्त बाधाओं का सामना करना पड़ता है, मेंटरशिप मार्गदर्शन और समर्थन प्रदान कर सकती है जो अकादमिक स्थानों में नेविगेट करने और सामाजिक बाधाओं को पार करने में मदद कर सकती है।

संस्थान को औपचारिक मेंटरशिप कार्यक्रमों में निवेश करना चाहिए जो जूनियर महिला अकादमिक और छात्रों को सीनियर मेंटर्स के साथ जोड़ते हैं, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ महिलाओं की कमी है, जैसे ैज्म्ड। ये कार्यक्रम केवल अकादमिक मार्गदर्शन ही नहीं बल्कि भावनात्मक और पेशेवर समर्थन भी प्रदान करने के लिए डिजाइन किए जाने चाहिए, जिससे महिलाओं को अकादमिक सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक नेटवर्क और आत्म-विश्वास प्राप्त हो सके। इसके अतिरिक्त, मेंटरशिप कार्यक्रमों में पुरुष और महिला मेंटर्स दोनों को शामिल किया जाना चाहिए ताकि एक अधिक समावेशी और सहयोगात्मक अकादमिक वातावरण को बढ़ावा दिया जा सके।

भविष्य के अनुसंधान में इंटरसेक्शनैलिटी की खोज

अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय के अनुसंधान के लिए एक सबसे आशाजनक भविष्य की दिशा इंटरसेक्शनैलिटी की खोज है। किम्बरले क्रेन्सहॉ (1991) की अवधारणा इंटरसेक्शनैलिटी दर्शाती है कि कैसे लैंगिक अन्य पहचान जैसे जाति, वर्ग, और जातीयता के साथ मिलकर असमानता की अधिक जटिल प्रणालियाँ उत्पन्न करती है। झारखंड में, जहाँ सामाजिक-आर्थिक विषमताएँ स्पष्ट हैं, भविष्य के अनुसंधान में यह पता लगाया जा सकता है कि ये मिलती-जुलती पहचान महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों के अकादमिक अनुभवों

को कैसे आकार देती हैं।

अनुसंधान यह भी देख सकता है कि भारत के अकादमिक संस्थानों में सकारात्मक कार्रवाई नीतियों और लैंगिक-संवेदनशील सुधारों का दीर्घकालिक प्रभाव क्या है, विशेषकर ैज्म्ड क्षेत्रों में जहाँ कमी बनी रहती है। इसके अतिरिक्त, मेंटरशिप कार्यक्रमों की प्रभावशीलता और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने में पुरुष सहयोगियों की भूमिका पर अनुसंधान से संस्थानों को लैंगिक न्याय में सुधार के लिए व्यवहारिक अंतर्दृष्टि प्राप्त हो सकती है।

लैंगिक आधारित हिंसा और उत्पीड़न के मनोवैज्ञानिक प्रभावों की भी गहराई से जांच की जानी चाहिए। अनुसंधान यह देख सकता है कि ये अनुभव मानसिक स्वास्थ्य, करियर प्रगति, और अकादमिक परिणामों को कैसे प्रभावित करते हैं, विशेषकर हाशिए पर पड़े समूहों के संदर्भ में। प्रौद्योगिकी नवाचार, जैसे ।प् का उपयोग सीखने में और लैंगिक-संवेदनशील शैक्षणिक विधियाँ, भी समावेशी अकादमिक स्थानों को बढ़ावा देने की संभावनाओं की जांच की जा सकती है।

तालिका 7: अकादमिक संस्थानों में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए सिफारिशें

सिफारिश संभावित प्रभाव	(%)
लैंगिक-संवेदनशील नीतियों को मजबूत करना	30%
पुरुषों को सहयोगी के रूप में शामिल करना	20%
निगरानी और उत्तरदायित्व	25%
मेंटरशिप कार्यक्रमों में निवेश	15%
अनुसंधान में इंटरसेक्शनैलिटी की खोज	10%

8. निष्कर्ष: अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय की आवश्यकता की पुष्टि

इस पेपर में किए गए विश्लेषण के अनुसार, अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय की खोज केवल महिला नामांकन बढ़ाने या सतही विषमताओं को संबोधित करने का मामला नहीं है; यह अकादमिक संस्थानों के मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता है ताकि अकादमिक जीवन के सभी पहलुओं में समावेशिता, समानता और विविधता को बढ़ावा दिया जा सके। नैन्सी फ्रेजर (1997) और नायला कबीयर (1999) जैसे विद्वानों के कार्यों को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि लैंगिक न्याय प्राप्त करने के लिए वितरणात्मक असमानताओं और गहरे जड़ें जमा चुकी सांस्कृतिक मानदंडों को संबोधित करना आवश्यक है जो लैंगिक पदानुक्रमों को बनाए रखते हैं।

झारखंड के संदर्भ में, जहाँ पारंपरिक लैंगिक भूमिकाएँ और सामाजिक-आर्थिक चुनौतियाँ अकादमिक भागीदारी को सीमित करती हैं, लैंगिक-न्यायकारी नीतियों की आवश्यकता और भी अधिक तीव्र है। इस पेपर ने अकादमिक परिदृश्यों को पुनः आकार देने, अनुसंधान उत्पादन को बढ़ाने, समावेशी नेतृत्व को बढ़ावा देने, और छात्र अनुभवों में सुधार के लिए लैंगिक-संवेदनशील सुधारों की रूपांतरणकारी संभावनाओं को उजागर किया है। महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों को सशक्त करके, झारखंड के अकादमिक संस्थान न केवल व्यक्तिगत विकास में योगदान कर सकते हैं बल्कि व्यापक सामाजिक प्रगति को भी प्रेरित कर सकते हैं, जो राष्ट्रीय और वैश्विक लैंगिक समानता लक्ष्यों के साथ मेल खाता है।

कार्यवाही की अपील

अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय की खोज के लिए सभी हितधारकोंख्रअकादमिक, छात्र, प्रशासनिक अधिकारी, और नीति निर्माताख्रकी सक्रिय भागीदारी की आवश्यकता है। प्रत्येक का लैंगिक समानता में बाधाओं को हटाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका है। अकादमिक को लैंगिक-संवेदनशील अनुसंधान के लिए वकालत करनी चाहिए, विविध छात्रों को मेंटर करना चाहिए, और अपनी संस्थाओं में भेदभावपूर्ण प्रथाओं को चुनौती देनी चाहिए। छात्रों को लैंगिक समानता को बढ़ावा देने वाली पहलों में सक्रिय रूप से शामिल होना चाहिए और उन साथियों का समर्थन करना चाहिए जो अकादमिक भागीदारी में बाधाओं का सामना कर रहे हैं।

प्रशासक, विशेष रूप से झारखंड जैसे क्षेत्रों में, लैंगिक-न्यायकारी नीतियों को लागू और प्रवर्तित करना चाहिए, इन नीतियों की पारदर्शी निगरानी और मूल्यांकन सुनिश्चित करना चाहिए, और सभी व्यक्तियों के लिए सुरक्षित और समावेशी वातावरण को बढ़ावा देना चाहिए। नीति निर्माताओं को, राज्य और राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर, ऐसे नियम और विनियम डिजाइन और लागू करने चाहिए जो लैंगिक समानता का समर्थन करें, विशेषकर उन कम सेवा प्राप्त क्षेत्रों जैसे झारखंड में, जहाँ ग्रामीण और आदिवासी जनसंख्या शिक्षा में बड़ी बाधाओं का सामना करती है।

जैसा कि अमर्त्य सेन (1999) और मार्था नुसबाम (2000) जैसे विद्वानों ने तर्क किया है, शिक्षा में लैंगिक समानता न केवल मानव अधिकारों की आवश्यकता है बल्कि सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण चालक भी है। झारखंड के लिए, अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय को बढ़ावा देना राज्य की पूरी क्षमता को खोलने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है, दोनों बौद्धिक विकास और सामाजिक प्रगति के संदर्भ में।

भविष्य के अनुसंधान संभावनाएँ

अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय के भविष्य में कई आशाजनक अनुसंधान की दिशाएँ हैं। विद्वानों को यह अन्वेषण जारी रखना चाहिए कि कैसे लैंगिक अन्य पहचान जैसे जाति, वर्ग, और जातीयता के साथ मिलकर क्रॉस-कटिंग सिस्टम बनाता है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जैसे झारखंड जहाँ सामाजिक-आर्थिक विषमताएँ स्पष्ट हैं। इसके अतिरिक्त, सकारात्मक कार्रवाई नीतियों और लैंगिक-संवेदनशील सुधारों के दीर्घकालिक प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिए आगे अनुसंधान की आवश्यकता है, विशेषकर पारंपरिक पुरुष-प्रभुत्व वाले क्षेत्रों जैसे STEM में।

महिलाओं और लैंगिक अल्पसंख्यकों के लिए मेंटरशिप कार्यक्रमों की प्रभावशीलता, साथ ही लैंगिक समानता को बढ़ावा देने में पुरुष सहयोगियों की भूमिका को भी अधिक गहराई से अन्वेषण किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, अकादमिक सेटिंग्स में लैंगिक आधारित हिंसा और उत्पीड़न के मनोवैज्ञानिक प्रभावों की भी गहन जांच की जानी चाहिए, विशेष रूप से मानसिक स्वास्थ्य और करियर परिणामों के संदर्भ में। जैसे-जैसे अकादमिक संस्थान प्रौद्योगिकी को अपनाते हैं, शोधकर्ताओं को ।ण् और लैंगिक-संवेदनशील शैक्षणिक विधियों के समावेशी अकादमिक स्थानों को बढ़ावा देने की संभावनाओं की भी जांच करनी चाहिए।

तालिका 8: अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय के लिए मुख्य सिफारिशों का संक्षिप्त सारांश

मुख्य सिफारिश	फोकस क्षेत्र
लैंगिक-संवेदनशील नीतियों को मजबूत करना	संस्थागत सुधार
पुरुषों को सहयोगी के रूप में शामिल करना	नेतृत्व और समर्थन
निगरानी और उत्तरदायित्व	नीति कार्यान्वयन

मेंटरशिप कार्यक्रमों में निवेश — पेशेवर विकास
अनुसंधान में इंटरसेक्शनैलिटी की खोज — अकादमिक अनुसंधान

अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय की यात्रा एक सतत प्रक्रिया है जो निरंतर प्रयास, नवाचारात्मक सोच, और सहयोगात्मक क्रियावली की आवश्यकता है। एक समावेशी, समान और सहायक अकादमिक वातावरण को बढ़ावा देकर, झारखंड और वैश्विक स्तर पर संस्थान उन परिस्थितियों को उत्पन्न कर सकते हैं जो सभी व्यक्तियों को, लैंगिक की परवाह किए बिना, सफल होने के लिए आवश्यक हैं।

अंततः, अकादमिक क्षेत्र में लैंगिक न्याय प्राप्त करना एक समावेशी, समान और प्रगतिशील अकादमिक वातावरण को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण है। प्रणालीगत बाधाओं को संबोधित करके और लैंगिक-संवेदनशील नीतियों को लागू करके, अकादमिक संस्थान हाशिए पर पड़े लिंगों को सशक्त बना सकते हैं और ऐसे स्थान बना सकते हैं जहाँ विविध दृष्टिकोणों की सराहना की जाती है। झारखंड में, लैंगिक न्याय न केवल अकादमिक परिदृश्यों को रूपांतरित करने की क्षमता रखता है बल्कि व्यापक सामाजिक-आर्थिक विकास में भी योगदान कर सकता है। लैंगिक समानता की यात्रा सभी हितधारकों से निरंतर प्रयास की मांग करती है, यह सुनिश्चित करते हुए कि अकादमिक क्षेत्र व्यक्तिगत और सामाजिक विकास के लिए एक उत्प्रेरक बने।

संदर्भ

- Agarwal, P. (2020). Higher education in India: Growth, challenges, and opportunities. Oxford University Press.
- Bhattacharjee, A. (2019). Gender inequality in higher education: Barriers to leadership roles in India. Journal of Gender Studies, 28(3), 345-361.
- Chatterjee, P. (2021). Gender equity in Indian academia: Struggles and reforms. Routledge.
- De, R., & Nagarajan, R. (2018). Representation of women in STEM fields: An Indian perspective. Current Science, 114(3), 602-609.
- Government of Jharkhand. (2021). Jharkhand socio-economic profile 2021. Department of Statistics, Government of Jharkhand.
- Gupta, N. (2017). Gender and academic leadership in India: Case studies from higher education institutions. Indian Journal of Gender Studies, 24(2), 234-252.
- International Labour Organization. (2020). Work-life balance and gender equality: Policy frameworks in India. ILO Publications.
- Joshi, S., & Srivastava, M. (2020). Affirmative action and gender quotas in Indian universities. Equality, Diversity, and Inclusion: An International Journal, 39(5), 453-467.
- Kalpana, S. (2019). Gender-based violence in Indian universities: A case study of Jharkhand institutions. Journal of Applied Social Psychology, 49(6), 780-791.
- Kumar, S. (2020). Mentoring women in academia: Pathways to leadership and success. Springer.
- Mehta, A. (2018). Gender-sensitive curriculum reforms in India: A review of progress and gaps. Educational Research Association of India.
- Ministry of Human Resource Development. (2019). All India Survey on Higher Education 2019-2020. Government of India.
- Raj, A., & Sen, G. (2021). Gender justice and educational equity: Lessons from Jharkhand. Economic and Political Weekly, 56(11), 23-29.
- Saha, S., & Mishra, S. (2020). Gender gaps in academic publications in Indian universities.

Higher Education Journal of India, 12(4), 301-315.
- Singh, R., & Verma, P. (2018). Gender dynamics in academic leadership: Evidence from Indian higher education. Leadership & Policy in Higher Education, 41(2), 128-145.

●●●

स्त्री रचनात्मकता का आरंभिक स्वर

❍ सुधांशु कुमार[1]

मनुष्य की रचनात्मकता ने सभ्यता को आकार दिया। सभ्यता के विकास में मानव मस्तिष्क के रचनात्मक उपयोग की बड़ी भूमिका रही है। जिज्ञासु मस्तिष्क ने ऐसी-ऐसी खोजें की जिसने कालांतर में मानव जाति को एक विजेता प्रजाति के रूप में स्थापित किया। इस महान विजय में स्त्री और पुरुष दोनों की समान भूमिका रही है। संभव है सभ्यता को नई दिशा देने वाली उस चिंगारी को पहले पहल किसी स्त्री ने ही देखा हो। पचास प्रतिशत संभावना इस बात की भी है कि धरती को आसानी से माप लेने वाले पहिये के पहले मॉडल का ढाँचा किसी स्त्री-मस्तिष्क में ही कौंधा हो। मानव इतिहास के सबसे युगांतकारी खोज कृषि को लेकर प्राचीन इतिहासविदों का मानना है कि इस खोज में स्त्रियों की बड़ी भूमिका रही। हम जानते हैं कि मानव जीवन को स्थायित्व प्रदान करने में कृषि और पशुपालन की महती भूमिका रही है। प्राचीन इतिहासकारों में एक मजबूत धारणा है कि मानव सभ्यता के कृषि कर्म की दिशा में संक्रमण का श्रेय स्त्रियों को जाता है। रोमिला थापर लिखती हैं, "एक राय यह है कि कृषि-कर्म की दिशा में संक्रमण का श्रेय स्त्रियों को है, क्योंकि पुरुष शिकार पर निकल जाते थे लेकिन वे घरों में रह जातीं थीं। इससे उन्हें बुवाई का और जो-कुछ वे बोती थीं उसकी देख-रेख का अवसर मिल जाता था।"[1] यह अकारण नहीं है कि प्राचीन विकसित सभ्यताओं में स्त्री को उर्वरता की देवी[2] के रूप में अंकित किया जाने लगा। कृषि की शुरुआत के साथ ही मातृदेवी की वंदना का आरंभ होता है।

प्रौद्योगिक एवं तकनीकी विकास के बाद पुरुषों ने न सिर्फ इस क्षेत्र पर एकाधिकार जमाया बल्कि धीरे-धीरे स्त्रियों को चहारदीवारी के भीतर कैद करना शुरू किया। सभ्यता के विकासक्रम में आधी आबादी को उपेक्षा का शिकार होना पड़ा। साहित्येतिहास में इस उपेक्षा को जगह-जगह महसूस किया जा सकता है। भारतीय वांग्मय की पहली स्त्री रचनाकार अपनी पहली कविता में पुरुष द्वारा की जाने वाली उपेक्षा को ही दर्ज करती है। ऋग्वेद की ऋषिका रोमशा कहती है कि मुझे छोटा मत समझो। मैं रोमशा हूँ। विचारवान एवं प्रबुद्ध। तुम मुझसे गूढ़

1. *अतिथि शिक्षक, हिंदी विभाग, पटना कॉलेज, पटना।*
7839114692; Email: sudhanshuchaudhary1991@gmail.com

विषयों पर भी विचार कर सकते हो। रोमशा बृहस्पति की पुत्री है। उनका विवाह सिंधु देश के यशस्वी शासक स्वनय भावयव्य से हुआ था। राजा यज्ञ और दान-पुण्य में रुचि लेने वाला व्यक्ति था। ऋषि कक्षीवान् ने ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 126 वें सूक्त में स्वनय भावयव्य की प्रशंसा की है। सूक्त का शुरुआती पाँच स्तोत्र ऋषि काक्षीवान् का है, छठा स्तोत्र भावयव्य का है और आखिरी सातवाँ रोमशा का। वह लिखती हैं कि,

"उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविकाः।।"[3] (१/१२६/७)

रोमशा की अपरिपक्व अवस्था की वजह से पति उनकी अवहेलना करता था। इसलिए वह बल देकर कहती हैं कि मैं रोमों वाली हूँ। अर्थात् मैं परिपक्व हूँ। कई व्याख्याकार रोमशा की उपेक्षा को उसकी अपरिपक्व अवस्था से जोड़ते हैं। 'युवती होते हुए भी रोमशा के शरीर में यौवन की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हुई थी। अतः स्वनय भावयव्य रोमशा को बालिका समझते हुए उसे गृहस्थ धर्म का पालन करने योग्य नहीं समझते थे। पति की उपेक्षा से आहत होकर रोमशा अपनी अस्मिता की तलाश करती है। अपनी योग्यता को साबित करते हुए वह कहती हैं कि मेरे समीप आकर मुझसे परामर्श लो। मेरे कार्यों और विचारों को छोटा मत समझो। मैं अपरिपक्व बुद्धि वाली नहीं हूँ। मैं गंधार देश की भेड़ के समान सर्वत्र रोम वाली अर्थात् पूर्ण विकसित बुद्धि और परिपक्व विचारों वाली हूँ।'[4] रोमशा का स्पष्ट कथन है- 'मा मे दभ्राणि मन्यथाः', मुझे छोटा मत समझना। 'अहमस्मि रोमशा', मैं रोमशा हूँ। रोमशा का कथन स्त्री जाति की उपेक्षा का भाष्य प्रस्तुत करता है।

यही बोध माता अदिति के यहाँ भी देखने को मिलता है। जब पितृसत्ता का एजेंट वामदेव माँ की सत्ता को ही नकार रहा होता है तो माता वामदेव को फटकार लगाती हैं। ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल के 'इंद्र-वामदेव-अदिति संवाद' है। इस संवाद में माता अदिति की छोटी सी टिप्पणी बच्चों के जीवन में माँ की महत्ता को रेखांकित करने वाली है। ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल के सूक्तद्रष्टा हैं वामदेव। ये गौतम ऋषि के पुत्र हैं। इन्हें जन्मत्रयी के तत्ववेत्ता के रूप में भी जाना जाता है। वेद के अनुसार सामान्य मनुष्यों की भाँति जन्म न लेने की इच्छा से इन्होंने माता का उदर फाड़कर उत्पन्न होने का निश्चय किया। माता द्वारा अदिति का आह्वान करने पर, इंद्र से तत्वज्ञान की चर्चा होने पर वे वैसा न कर सके। तब वे श्येन पक्षी के रूप में गर्भ से बाहर आए। कथा संकेतों में है जिसे खोलने की जरूरत है। इस संवाद में अदिति का जवाब एक श्लोक का उत्तरार्द्ध भर है लेकिन उसकी गूँज बहुत दूर तक जाती है। बस जरूरत है उसे सूक्ष्मता से नई रोशनी में समझने और विश्लेषण करने की। संवाद कुछ इस प्रकार है-

"इंद्र बोले- योनि से जन्म लेने का मार्ग परंपरागत एवं सनातन है। समस्त देव एवं मनुष्य उसी मार्ग से निकले हैं। गर्भ में वृद्धि प्राप्त करने वाले तुम भी इसी मार्ग से जन्म लो। दूसरा मार्ग अपना कर माता की मृत्यु का कारण मत बनो।

वामदेव ने कहा- हम इस दुगर्म योनि मार्ग से जन्म नहीं लेंगे। हम तिरछे होकर बगल से निकलेंगे। हमें बहुत से बिना किए हुए काम करने हैं- किसी के साथ युद्ध एवं किसी के साथ वाद-विवाद।

इंद्र बोले- यदि हम पुरातन योनि-मार्ग से नहीं निकलेंगे तो हमारी माता मर जाएगी। इस प्रकार शीघ्र बाहर निकलेंगे।

वामदेव कहने लगे- इंद्र ने त्वष्टा के घर में पत्थरों द्वारा निचोड़े गए एवं सैकड़ों रत्नों के मूल्य वाले सोमरस को पिया। अदिति इंद्र को सैकड़ों मासों और वर्षों तक गर्भ में रखे रही। इंद्र ने यह नियम के प्रतिकूल कार्य क्यों किया?

इसे सुनकर अदिति ने उत्तर दिया- हे वामदेव! जो लोग उत्पन्न हो चुके हैं अथवा भविष्य में होंगे, उनमें से किसी के भी साथ इंद्र की समानता नहीं हो सकती।"[5] (४/१८/१-४)

उपरोक्त संवाद को आधुनिक संदर्भों में देखने से बात स्पष्ट होगी। यहाँ हम वामदेव को पितृसत्ता के उस एजेंट के रूप देख सकते हैं जो बच्चों के विकास में माँ की भूमिका को नजरअंदाज करता है। वह जन्म के ठीक बाद ही माँ के खात्मे की बात करता है। उसका मानना है कि चूँकि बच्चों की परवरिश में माँ की कोई विशेष भूमिका नहीं होती, अत: प्रसव के उपरांत अगर माँ का खात्मा भी हो जाए तो कोई विशेष हानि नहीं। वह जल्द से जल्द सूतिका गृह से मुक्त होकर पुरुषों द्वारा बनाई गई व्यवस्था में शामिल होना चाहता है। उपरोक्त संवाद में हम पाते हैं कि वामदेव माँ के गर्भ/सूतिका गृह से शीघ्र इसलिए निकलना चाहता है क्योंकि उसे बाहर आकर कई युद्ध लड़ने हैं, वाद-विवाद करना है। यानी उसे जल्द से जल्द शारीरिक और मानसिक रूप से बलवान बनना है। आधुनिककाल में पुरुष मनोविश्लेषणवादियों ने भी कमोबेश यही किया। उन्होंने भी बच्चों के विकास में माँ की भूमिका को नजरअंदाज किया। पितृसत्ता के एजेंट वामदेव के अनुसार माँ अगर ज्यादा दिनों तक बच्चों को अपने पास रखती है तो वह नियम विरुद्ध कार्य कर रही होती है। यही वजह है कि वामदेव इंद्र के वर्षों सूतिका गृह में रहने पर प्रश्नाकुल भाव से आरोप की शक्ल में संवाद को आगे बढ़ाते हैं।

उपरोक्त संवाद का उन्वान वहाँ दिखता है जहाँ अदिति वामदेव के आख्यान का प्रतिपक्ष रचती हैं। वामदेव के इस आरोप पर कि माता अदिति ने इंद्र को वर्षों अपने पास रखकर प्रतिकूल कार्य किया है, अदिति बिफरते हुए संवाद को बीच में काटती है। अदिति ने संवाद के बीच में टोका है इसलिए उनका कथन श्लोक का उत्तरार्द्ध है। वह कहती हैं कि जिसे तुम प्रतिकूल कार्य कह रहे हो, उसी प्रतिकूल कार्य की वजह से आज इंद्र इतना शक्तिशाली और सामर्थ्यवान बन पाया। यहाँ अदिति माँ की भूमिका को रेखांकित कर रही हैं। पश्चिमी स्त्रीवादियों ने बाद में इसका सैद्धांतिक स्वरूप दुनिया के सामने रखा। उपरोक्त संवाद के आगे के श्लोकों में इंद्र के शक्तिशाली स्वरूप को दिखाया गया है। गौरतलब है कि इन श्लोकों में यह बात अनुस्यूत है कि इंद्र के शारीरिक और मानसिक विकास में माँ की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पाँचवें श्लोक में कहा गया है कि 'अँधेरे सूतिका गृह में पैदा होने वाले अपेक्षाकृत कमजोर और निंदनीय इंद्र को माता अदिति ने परम शक्तिशाली बनाया। इतना सामर्थ्यवान बनाया कि उसकी आभा पृथ्वी और आकाश तक फैल गई।'[6] (४/१८/५) इंद्र की शक्ति और उसके सामर्थ्य के क्रमिक विकास को श्लोक संख्या आठ और नौ से समझा जा सकता है जिसमें सूतिका गृह में इंद्र पर हुए हमलों का जिक्र है। श्लोक संख्या नौ के अनुसार तो बालपन में 'व्यंस' नामक राक्षस ने इंद्र की नाक और ठोड़ी पर चोट की थी। ऐसा मालूम पड़ता है कि इन घटनाओं के बाद अदिति ने इंद्र के शारीरिक और मानसिक विकास हेतु और अधिक प्रयास किए। उपरोक्त सूक्त के तमाम श्लोक इंद्र की शक्ति और सामर्थ्य के विकास में माता अदिति की भूमिका की कथा कहते हैं। ऐसी भूमिका जिस पर प्रशिक्षण देने वाली माँ गर्व महसूस कर सके। श्लोक संख्या सात में अदिति के इस गर्व को देखा जा सकता है-

"किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्तेद्रस्यावद्यं दिधिषन्त आप:।
ममैतान्पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ।।"

इंद्र को जो ब्रह्महत्या का पाप लगा है, उस संबंध में विद्वानों का क्या कहना है? यह पाप जल में फेन रूप से उपस्थित है। मेरे पुत्र इंद्र ने बलपूर्वक वज्र चलाकर वृत्र को मारा। इसके बाद नदियों को बहाया।"[7] (४/१८/७)

प्रथम द्रष्टया यह श्लोक एक माँ का अपने पुत्र के प्रति प्रेम और स्नेह का सामान्य प्रदर्शन मालूम पड़ता

है। लेकिन जब हम इस श्लोक को 'वामदेव-इंद्र-अदिति संवाद' और बाद के श्लोकों के साथ देखते हैं तो यह उस माँ की गर्वोक्ति मालूम पड़ती है जिसने स्वतंत्र रूप से अपनी संतान का पालन पोषण किया। प्रशिक्षित किया। उसे इतना बलवान और प्रभावशाली बनाया कि ब्रह्म हत्या जैसे जघन्य अपराध भी उसके कृत्यों के सामने तुच्छ जान पड़ते हैं। वैदिक ऋषिका अदिति की यह गर्वोक्ति सिर्फ उन्हीं तक सीमित नहीं है बल्कि इसका जुड़ाव संपूर्ण स्त्री-जाति के आत्मविश्वास से है। अपने पुरखिनों के इसी आत्मविश्वास के सहारे थेरी सोमा पितृसत्ता के एजेंट मार को फटकार लगाती है। मार थेरी सोमा को दो-अंगुल प्रज्ञा वाली कहकर उसकी उपेक्षा करते हुए टिप्पणी करता है कि तुम मुक्ति को कैसे पा सकती हो। मार और थेरी सोमा का संवाद द्रष्टव्य है-

"यं तं इसीहि पत्तब्बं, ठानं दुरभिसम्भवं।
न तं द्वङ्गुलपञ्ञय, सक्का पप्पोतुमित्थिया ति।।
इत्थिभावो नो किं कयिरा, चित्तम्हि सुसमाहिते।
ञाणम्हि वत्तमानम्हि, सम्मा धम्मं विपस्सतो।।
सब्बत्थ विहता नन्दी, तमोक्खन्धो पदालितो।
एवं जानाहि पापिम, निहतो त्वमसि अन्तका ति।।

जो स्थान ऋषियों के द्वारा भी प्राप्त करने में अत्यन्त कठिन है, उसे दो अंगुलि-मात्र[8] प्रज्ञा वाली स्त्री प्राप्त कर लेगी, यह कभी सम्भव नहीं। भिक्षुणी ने मार को फटकारते हुए कहा: जब चित्त अच्छी प्रकार समाधि में स्थित है, ज्ञान नित्य विद्यमान है और अन्तर्ज्ञानपूर्वक धर्म का सम्यक् दर्शन कर लिया गया है, तो स्त्रीत्व इसमें हमारा क्या करेगा? देख ! मैंने सभी जगह से अपनी वासना की तृष्णा का संपूर्ण विनाश कर दिया है ! अज्ञानांधकार को विदीर्ण कर दिया है ! पापी मार ! प्राणियों का अन्त करने वाले ! समझ ले ! आज तेरा ही अन्त कर दिया गया ! तू मार दिया गया !"[9]

थेरी सोमा 'मार' को फटकारते हुए, अपनी तार्किक बुद्धि का परिचय देते हुए कहती है कि जब मैं स्त्री होते हुए ऋषि की तरह धम्म का सम्यक् अध्ययन कर सकती हूँ, तृष्णा का नाश कर सकती हूँ, अपनी दुर्बलताओं पर विजय पा सकती हूँ तो फिर वह स्थान क्यों नहीं पा सकती जो ऋषि पा सकते हैं। स्त्रीत्व इसमें मेरा क्या बिगाड़ेगा?? दिलचस्प है कि जिस स्त्री ने काव्य-पुरुष को जना है उसी स्त्री और उसकी रचनात्मकता को स्त्रीत्व की वजह से उपेक्षा का दंश झेलना पड़ रहा है। साहित्य के इतिहास से सायास स्त्री रचनात्मकता को दरकिनार किया गया।

वैदिक साहित्य दुनिया के सबसे प्राचीन साहित्य के रूप में जाना जाता है। इसी प्राचीन साहित्य से भारतीय काव्य का उदय हुआ। ब्राह्मणग्रंथ, स्मृतिग्रंथ एवं पुराण आदि में काव्यपुरुष के उदय को लेकर कई कथाएँ चलती हैं। उन कथाओं की बुनावट भले ही अलग-अलग प्रकार की हो लेकिन उन सबमें यह देखने को मिलता है कि ब्रह्मा के आशीर्वाद से सरस्वती द्वारा काव्यपुरुष का उदय होता है। वेदों में 'माता' सरस्वती के योगदान को जगह-जगह रेखांकित किया गया है। कृष्णयजुर्वेदीय परंपरा से संबंधित उपनिषद 'सरस्वतीरहस्योपनिषद' सरस्वती की महिमा पर विस्तार से प्रकाश डालता है। 'कवि-रहस्य' में महामहोपाध्याय गंगानाथ झा एक कथा का जिक्र करते हैं- "पुत्र की कामना से सरस्वती जी हिमालय में तपस्या कर रही थीं। ब्रह्मा जी के वरदान से उन्हें एक पुत्र हुआ- जिसका नाम 'काव्यपुरुष' हुआ (अर्थात् पुरुष के रूप में काव्य)। जन्म लेते ही उस पुत्र ने यह श्लोक पढ़कर माता को प्रणाम किया-

यदे तद्वाङ्मयं विश्वमथ मूर्त्या विवर्तते।

सोऽस्मि काव्यपुमानम्ब पादौ वन्देय तावकौ।

अर्थात्- 'जो वाङ्मयविश्व (शब्दरूपी संसार) मूर्तिधारण करके विवर्तमान हो रहा है सो ही काव्यपुरुष मैं हूँ। हे माता तेरे चरणों को प्रणाम करता हूँ।' इस पद्य को सुनकर सरस्वती माता प्रसन्न हुई और कहा- 'वत्स, अब तक विद्वान् गद्य ही बोलते आए आज तूने पद्य का उच्चारण किया है। तू बड़ा प्रशंसनीय है। अब से शब्द-अर्थमय तेरा शरीर है- संस्कृत तेरा मुख- प्राकृत बाहु- अपभ्रंश जाँघ- पैशाचभाषा पैर- मिश्रभाषा वक्षःस्थल- रस आत्मा- छंद लोम- प्रश्नोत्तर, पहेली इत्यादि तेरा खेल- अनुप्रास उपमा इत्यादि तेरे गहने हैं।"[10]

सवाल उठता है कि पद्य के आगमन के पीछे क्या कारण थे? काव्यपुरुष के उदय से पहले अगर विद्वानों के पास गद्य के रूप में अपनी बात रखने की एक शैली थी तो फिर पद्य की जरूरत क्यों आन पड़ी? विचारक इसके पीछे के कई कारणों को गिना सकते हैं। मैं यहाँ सिर्फ उस कारण को रखूँगी जिसका संबंध स्त्री-अभिव्यक्ति से है। पितृसत्ताक सामंती समाज में परिधि पर धकेल दिया गया कोई भी समाज अपने अनुभवों को भाषा की सामान्य तार्किक प्रक्रिया में व्यक्त नहीं कर पाता है। बावजूद इसके यह समुदाय अपने अनुभवों को भाषा के भीतर रचना चाहता है, खुद को भाषा में अभिव्यक्त करना चाहता है। इस स्थिति में यह समुदाय भाषा के उस रूप की तलाश में होता है जहाँ शब्दों का अर्थ व्यंजना में हो। जहाँ लिखा कुछ और जाए, पढ़ा कुछ और। जहाँ अंतर्विरोधी और अतार्किक हुआ जा सकता हो। जहाँ तार्किकता और ऐतिहासिकता का विरोध होता हो। अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में इस कसौटी पर पद्य खरा उतरता है। काव्य तार्किक न्याय और दर्शन से अलग है। इसलिए परिधि पर खड़ी स्त्री जाति ने खुद को पद्य में व्यक्त करने का निर्णय लिया।

हम जानते हैं कि गद्य का वाचक खुद को तर्कपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करता है। उसे अपनी बात को सीधे सरल ढंग से रखनी होती है जबकि पद्य में अतार्किक होने की गुंजाइश होती है। उपरोक्त कथा में 'प्रश्नोत्तर, पहेली इत्यादि तेरा खेल' इस ओर इशारा करता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था की तरफ बढ़ रहे समाज में स्त्री की अभिव्यक्ति हेतु पद्य एक उपयुक्त विधा थी। इसी कारण कथाओं में पद्य के लिए एक स्त्री कठोर तपस्या करती दिखती है। वह स्त्री कोई सामान्य स्त्री नहीं है। वह सरस्वती है। स्त्रीवादी लेखिका मृणाल पांडे अपनी पुस्तक 'देवी' में सरस्वती का परिचय कुछ इस प्रकार करवाती हैं- "तीनों महादेवियों में से सरस्वती ही ऐसी है जिसका एक ज्ञात जनक है और जिसे अपनी अनूठी स्वतंत्रता के लिए लगातार अपने जनक-तत्त्व से लड़ना पड़ा। अपनी बेड़ियाँ तोड़ने के क्रम में उसके मन-मस्तिष्क ने अँधेरे पातालों की वे अतल गहराइयाँ नापीं जो अन्य देवियों ने छुई तक नहीं। समय से पहले छिना लड़कपन, पिता का दुर्व्यवहार, भंग विवाह, सरस्वती सबसे गुजरी। लेकिन वह न तो कमर कसकर मुकाबला करती है और न ही छल-छद्म से काम लेती है। वह तो अपनी इच्छाशक्ति के एक विराट झटके से कीचड़ पर खिले कमल की तरह परिस्थितियों से ऊपर उठकर एक-एक घटना, एक-एक क्षण याद करती हैं और उन्हें उनके पूरे विस्तारों के साथ अपनी स्मृति में दर्ज करती चली जाती हैं।"[11] अपनी स्मृति को दर्ज करने के लिए, स्त्री-स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ने के लिए सरस्वती ने श्रमपूर्वक ऐसी विधा ईजाद की जिसके माध्यम से स्त्री-जाति मजबूत होती पितृसत्ता के सामने खुद को खुलकर अभिव्यक्त कर सके। इस विधा में वह न सिर्फ अपनी दमित इच्छा, आकांक्षा, कामना आदि को व्यक्त कर सकती थीं बल्कि प्रश्नोत्तर, पहेलीनुमा शैली में पितृसत्ताक व्यवस्था के सामने चुनौती भी पेश कर सकती थीं। पितृसत्ता के सामने यह चुनौती उन्होंने समय समय पर पेश भी किया किन्तु साहित्य के इतिहास ने इस चुनौती को दर्ज करना उचित नहीं समझा।

कला और साहित्य की पितृसत्ताक दुनिया में स्त्री-रचनात्मकता को कमतर आँका जाता रहा। प्रायः साहित्येतिहास में स्त्री रचनात्मकता के साथ दो तरह का व्यवहार देखने को मिलता है- पहला, साहित्येतिहास से उनका बहिष्करण; दूसरा, उन्हें पुरुषों का अनुकर्ता मान लिया जाता है। हिंदी साहित्य के हिंदी साहित्य के

इतिहास की सबसे प्रामाणिक इतिहास ग्रंथ में हम पहली प्रवृत्ति को देख सकते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (1929) में स्त्री रचनाकारों का बहिष्करण सायास मालूम पड़ता है। सायास कहने के पीछे मेरा तर्क है कि उनके साहित्येतिहास से 25 वर्ष पूर्व 'महिला मृदुवाणी' का प्रकाशन हो चुका था। 'महिला मृदुवाणी' के संकलनकर्ता मुंशी देवीप्रसाद ने करीब 40 कवयित्रियों के जीवन और उनके साहित्य का संक्षिप्त परिचय इस टिप्पणी के साथ प्रस्तुत किया- "भारतवर्ष की पुण्य भूमि में अकेले पुरुष ही चौदह विद्या निधान नहीं हुए हैं बरन स्त्रियाँ भी समय-समय में ऐसी होती रही हैं जो सोने चाँदी और रत्न जड़ित आभूषणों के अतिरिक्त विद्या बुद्धि और काव्य कला के दिव्य भूषणों से भी भूषित थीं और अब भी हैं जिनके बखान अनेक पुस्तकों और जनश्रुतियों में विद्यमान हैं।"[12]

भूमिका में स्त्री-रचनात्मकता को रेखांकित करते हुए मुंशी देवीप्रसाद ने आगे आने वाले विद्वानों से इस ओर कार्य करने की अपेक्षा रखी। 25 वर्ष बाद जब आचार्य शुक्ल हिंदी साहित्य का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करते हैं तो मुंशी जी के श्रमसाध्य कार्य को अनदेखा करते हुए सिर्फ एक स्त्री रचनाकार को अपने इतिहास में स्थान देते हैं, वह भी अपनी प्रकृति के खिलाफ बहुत ही चलताऊ ढंग से। 1931 में जब ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' ने 'स्त्री-कवि कौमुदी' निकालकर इसकी भरपाई का प्रयास किया तब उसकी भूमिका में रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने स्त्री रचनाकारों को पुरुषों का अनुकर्ता बताने में अपनी सारी बौद्धिक ऊर्जा झोंक दी। रामचंद्र शुक्ल के यहाँ हमें पहली प्रवृत्ति दिखती है तो 'रसाल' के यहाँ दूसरी प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। रामशंकर शुक्ल 'रसाल' की दृढ़ मान्यता है कि स्त्री-रचनाकार प्रायः भावुक और अबौद्धिक होती हैं। उनके अनुसार मध्यकालीन कवयित्री शेख के पद आलम ने लिखे हैं। वे लिखते हैं "शेख-स्नेहासव-पान से मदोन्मत-भावुक आलम ने प्रेम-प्रमाद में आकर शेख नाम से रचना की।"[13]

स्त्री-कविता का तुलनात्मक विवेचन करते हुए रामशंकर शुक्ल 'रसाल' इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मीराबाई के कई पद देव जैसे पुरुष कवियों के रचे हुए मालूम पड़ते हैं।[14] आगे वे लिखते हैं "मीरा के जितने भी पद मिलते हैं उन सबके भावों पर दृष्टि डाली जाये तो कबीर, सूरदास, तुलसी, देव तथा जायसी आदि पुरुष महाकवियों के भावों का प्रतिबिम्ब पूर्ण रूप से मिलता है और इस आधार पर मीरा की तुलना न्यूनाधिक रूप से इनके साथ की जा सकती है। हाँ यह अवश्य है कि इन महाकवियों के समान न तो मीरा में भावोत्कर्ष ही है, न काव्य-कौशल है और न भाषा आदि का सौष्ठव ही। भाव-साम्य अवश्य है और यही हो भी सकता था।"[15] रामशंकर शुक्ल 'रसाल' तुलनात्मक विवेचन के माध्यम से कहना चाह रहे हैं कि स्त्री रचनाकार पुरुष रचनाकारों से भाषायी कौशल में काफी पीछे हैं। उनके निष्कर्ष में यह बात अंतर्निहित है कि स्त्री रचनाकार अपनी भावुकता के कारण काव्य में भाव का अनुवाद तो प्रस्तुत कर देती है लेकिन काव्य-कौशल और भाषा-सौष्ठव उसकी परिधि से बाहर की चीज है। ऐसे में रचनात्मक स्तर पर स्त्री रचनाकार अनुकर्ता ही साबित होती हैं। स्त्री रचनात्मकता को हमेशा पितृसत्ताक विमर्शों में कमतर ही आंका गया। स्त्री रचनाकारों ने इस मूल्यांकन की परवाह किए वगैर अपनी रचनात्मकता को नित नई ऊँचाई देती रही हैं।

संदर्भ :

1. रोमिला थापर, अनु.-आदित्य नारायण सिंह, पूर्वकालीन भारत, पृ. 106
2. भारतीय उपमहाद्वीप में ताम्रपाषाण युग से ही उर्वरता से संबंधित प्रतीक और कर्मकांड का चलन देखने को मिलता है। धरती की उर्वरता को ध्यान में रखकर ही वैदिक सूक्तों में पृथ्वी को माता की तरह प्रस्तुत किया गया. देखें- रोमिला थापर, अनु.-आदित्य नारायण सिंह, पूर्वकालीन भारत, पृ. 118 / रामशरण शर्मा, प्रारंभिक भारत का

परिचय, पृ.-83
3. गंगा सहाय शर्मा (सं.), ऋग्वेद
4. sanskritbhasi.blogspot.com/2017/08/blog-post.html
5. गंगा सहाय शर्मा (सं.), ऋग्वेद, पृ. 707-708
6. गंगा सहाय शर्मा (सं.), ऋग्वेद, पृ. 708
7. गंगा सहाय शर्मा (सं.), ऋग्वेद, पृ. 708
8. सात-आठ वर्ष की अवस्था से ही स्त्रियाँ भात पकाना शुरू कर देती हैं, किंतु भात कब पक गया, इसका वे ठीक निर्णय तब तक नहीं कर सकतीं, जब तक एक-दो चावल उठा कर वे अपनी दो उंगलियों से दबा कर नहीं देख लेतीं. इसीलिए उनकी प्रज्ञा दो अंगुलि-मात्र परिमित कही गई है.
9. भरत सिंह उपाध्याय (सं.), थेरीगाथा, पृ.. 26-27
10. गंगानाथ झा, कवि-रहस्य, पृ.-13-14
11. मृणाल पांडे, देवी समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की, पृ. 72
12. मुंशी देवीप्रसाद (सं.), भूमिका एवं प्रस्तुति-गरिमा श्रीवास्तव, महिला मृदुवाणी, पृ. 37
13. ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' (सं.), प्रस्तुति-बलवंत कौर, स्त्री-कवि कौमुदी, पृ. 332
14. ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' (सं.), प्रस्तुति-बलवंत कौर, स्त्री-कवि कौमुदी, पृ. 329
15. ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' (सं.), प्रस्तुति-बलवंत कौर, स्त्री-कवि कौमुदी, पृ. 331

●●●

सत्राची फाउंडेशन, पटना

शोध, शिक्षा एवं प्रकाशन की समाजसेवी संस्था

यह संस्था –

– साहित्यिक सम्मान देती है।

– शोध पत्रिकाएँ प्रकाशित करती है।

– पुस्तकें प्रकाशित करती है।

– सेमिनार आयोजित करती है।

– राजभाषा/राष्ट्रभाषा सेवियों को प्रोत्साहित करती है।

– शोधकर्ताओं को स्तरीय शोध के लिए प्रोत्साहित करती है।

– नेट/जे.आर.एफ. के अभ्यर्थियों को निःशुल्क मार्गदर्शन देती है।

– हिन्दी साहित्य के शिक्षार्थियों को प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए तैयार करती है।